प्रकाशक
श्री जैन श्वेताम्बर नाकोडा पार्श्वनाथ तीर्थ
मेवानगर वाया बालोतरा (राज०)

•

प्रथम संस्करण
१९७८
मूल्य [illegible] रुपये
५०)

प्रकाशकीय

भगवान् पार्श्वनाथ के अनेक नाम हैं, अनेक तीर्थ है। उनके गुण अनन्त हैं, उनकी महिमा अपार है, जिनका वर्णन करना कठिन है। नाकोडा पार्श्वनाथ तीर्थ, राजस्थान का सर्वाधिक प्रसिद्ध तीर्थ है। यहाँ भगवान् पार्श्वनाथ की सेवा मे भैरवजी सदा जागृत हैं जिनके चमत्कारो से प्रतिदिन तीर्थ पर मेला लगा रहता है। जगल में मगल हो रहा है। इस तीर्थ पर वहुत ही सुन्दर व कलापूर्ण मन्दिर एव पटशालाएँ वनी हुई हैं जो यात्रियो को दिनोदिन अधिकाधिक सख्या मे आकर्षित करती हैं। यात्रियो के ठहरने के लिए विशाल धर्मशाला भी वनी हुई है। पहाडियो के वीच स्थित होने से यह तीर्थ और भी रमणीक बन गया है।

वीकानेरके जैन साहित्य सेवी श्री अगरचन्द नाहटा के सुझाव पर तीर्थ की ट्रस्ट कमेटी ने अपनी आमदनी का कुछ अश ज्ञान वृद्धि और ग्रन्थ प्रकाशन मे खर्च करने का तय किया है। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु तीर्थ पर एक अच्छा ग्रन्थालय भी स्थापित किया जा चुका है जिसको शनै शनै एक वृहद् शोध सस्थान का रूप देने की भावना है।

चौदहवी शताव्दी के शासन प्रभावक और महान् विद्वान् वादशाह मोहम्मद तुगलक के प्रतिशोधक श्री जिनप्रभसूरि जी ने अनेक जैन तीर्थों के सम्बन्ध में समय-समय पर जो कल्प रचे उनका एक सग्रह ग्रन्थ "विविध तीर्थ कल्प" के नाम से प्रसिद्ध है जो मूल रूप मे तो प्रकाशित हो चुका है परन्तु वह प्राकृत सस्कृत मे होने से जन साधारण उससे वाछित लाभ नही उठा पाता है।

इसलिए इसका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया जाना बहुत आवश्यक था।

बड़े हर्ष का विषय है कि श्री अगरचन्द जी नाहटा के साहित्य सहयोगी उनके भतीजे श्री भवरलाल जी नाहटा ने उक्त ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद कडी मेहनत व लग्न के साथ कर उस तीर्थ को प्रकाशन का अवसर दिया जिसके लिए हम उनके बहुत आभारी हैं। इस ग्रन्थ की भूमिका तैयार करने व परिशिष्टों की सामग्री जुटाने मे श्री अगरचन्द जी नाहटा का प्रशसनीय सहयोग रहा है। ग्रन्थ की प्रस्तावना लिखने मे डाक्टर ज्योतिप्रसाद जी जैन का भी सराहनीय कार्य रहा है। इस ग्रन्थ मे छपे चित्रो के लिए ब्लाक उपलब्ध करवाने मे श्री गणेश ललवाणी (जैन भवन कलकत्ता) एव श्री महेन्द्र कुमार सिन्धी, कलकत्ता का भी सराहनीय सहयोग रहा है। तीर्थ की ट्रस्ट कमेटी इन सभी महानुभावो के प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट करती है।

विविध तीर्थकल्प अपने ढग का एक ही ग्रन्थ है। इसको सुसम्पादित करके गुजराती भाषा मे प्रकाशित करवाने वाले मुनि श्री जिनविजय जी ने इसके महत्त्व पर अच्छा प्रकाश डाला है। उनके वक्तव्य का आवश्यक अंश इस ग्रन्थ मे अन्यत्र उद्धृत किया गया है।

तीर्थ की ट्रस्ट कमेटी शीघ्र ही "जैन कथा सचय" नाम का एक और प्रकाशन करने जा रही है जिसका सम्पादन स्वय श्री अगरचन्द जी नाहटा कर रहे हैं।

नाकोडा तीर्थ के सम्बन्ध मे एक प्रामाणिक सचित्र इतिहास की भी माग श्रद्धालुओ की ओर से काफी समय से आ रही थी। इस सम्बन्ध मे भी महोपाध्याय विनयसागर जी से नाकोडा तीर्थ का इतिहास लिखवाया जा रहा है।

भगवान् श्री पार्श्वनाथ जी की पूर्ण कृपा से ट्रस्ट कमेटी के मनोरथ सफल होगे। उनके परमभक्त भैरव जी महाराज हमे सदा ही इस तीर्थ क्षेत्र की नानाविध उन्नति में निरन्तर प्रेरणा व उत्साह देते रहे है और हमे पूर्ण आशा है कि भविष्य मे भी वे हमारे प्रयत्नो को सफलीभूत करेंगे।

सुल्तानमल जैन
अध्यक्ष
श्री जैन श्वेताम्बर नाकोडा पार्श्वनाथ तीर्थ
मेवानगर (राजस्थान)

वाडमेर,
दिनाक २-९-७८

भगवान् पार्श्वनाथ, नाकोड़ा तीर्थ

श्री भैरूजी नाकोडा तीर्थ

श्री जैन श्वेताम्बर नाकोडा पार्श्वनाथ तीर्थ
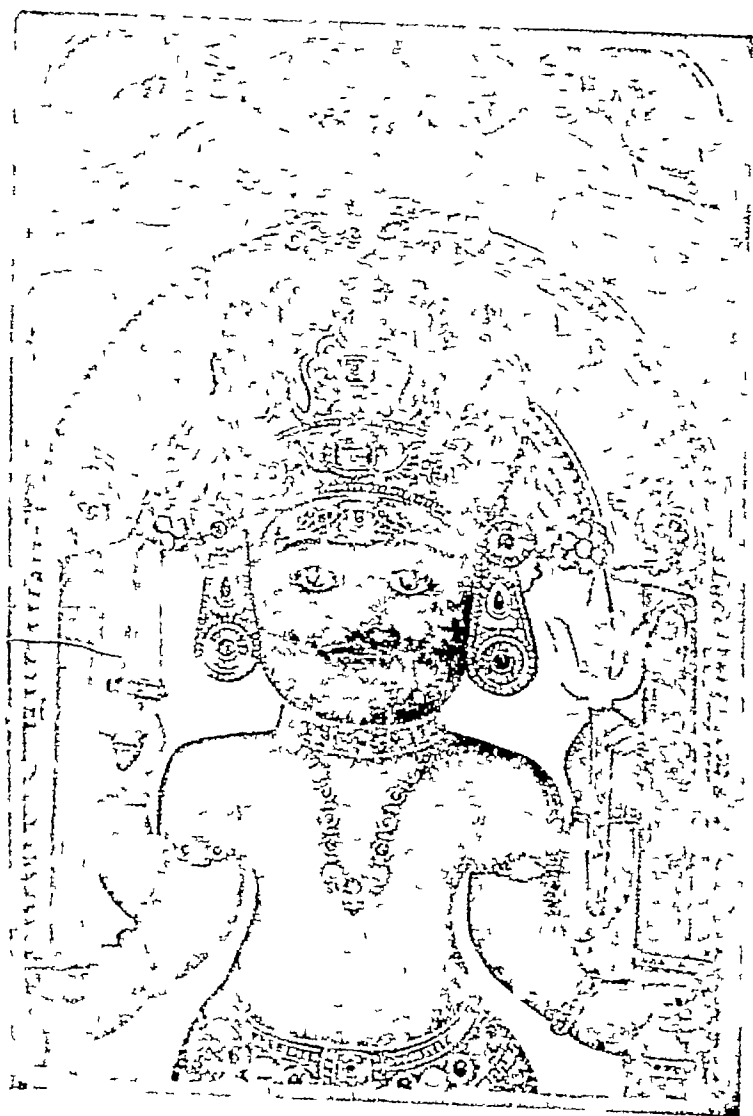
जैनमंदिर शत्रुञ्जय महातीर्थ, पालीताना (सौराष्ट्र)
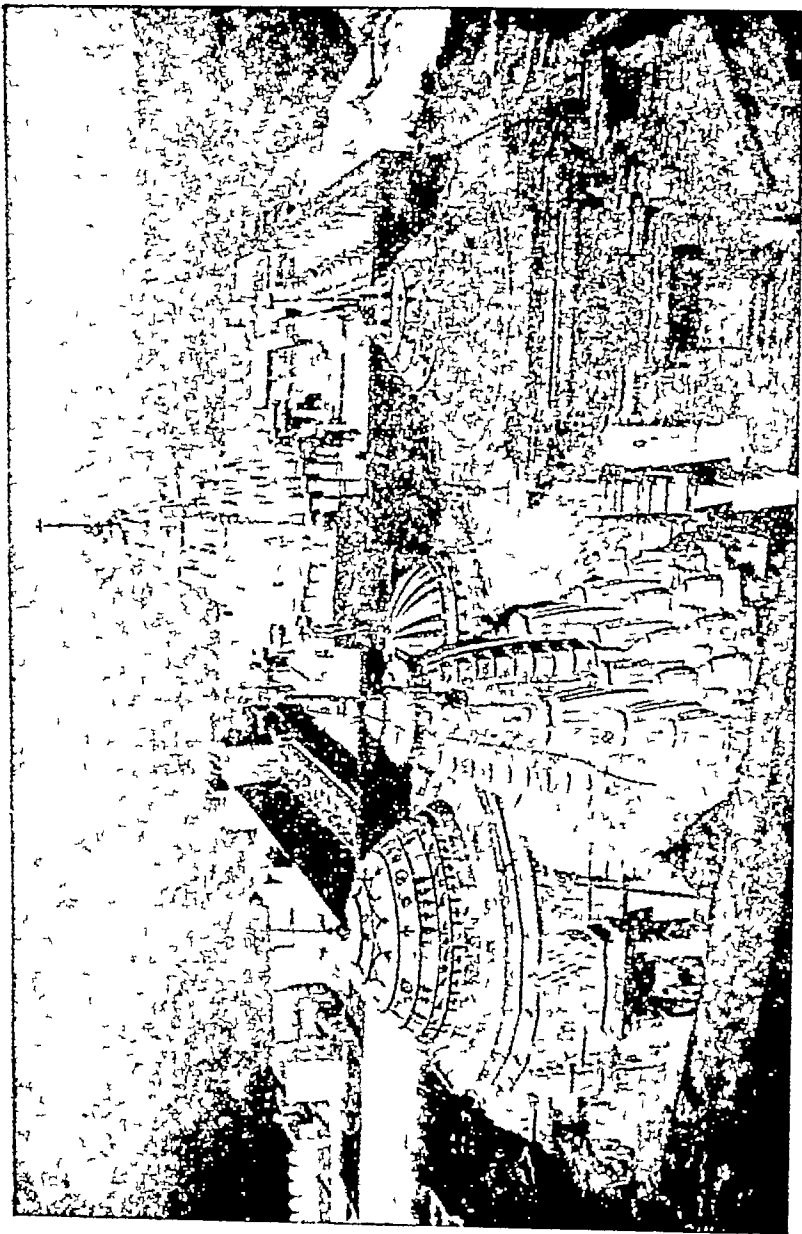
(जैन भवन, कलकत्ता के सौजन्य से)

जैनमदिर गिरनार महातीर्थ, जूनागढ (सौराष्ट्र)

(जैन भवन, कलकत्ता के सौजन्य से)
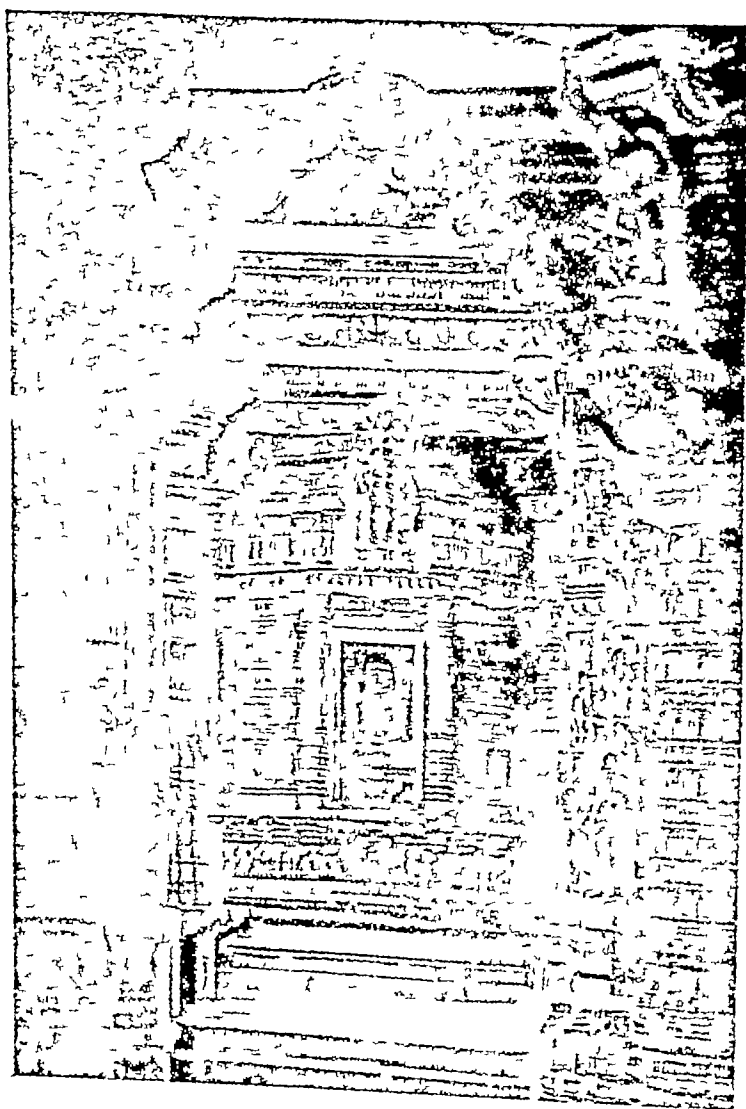
लूणिगवसही—तेजपाल वस्तुपाल जिनालय, आबू (राजस्थान)
(जैन भवन, कलकत्ता के सौजन्य से)
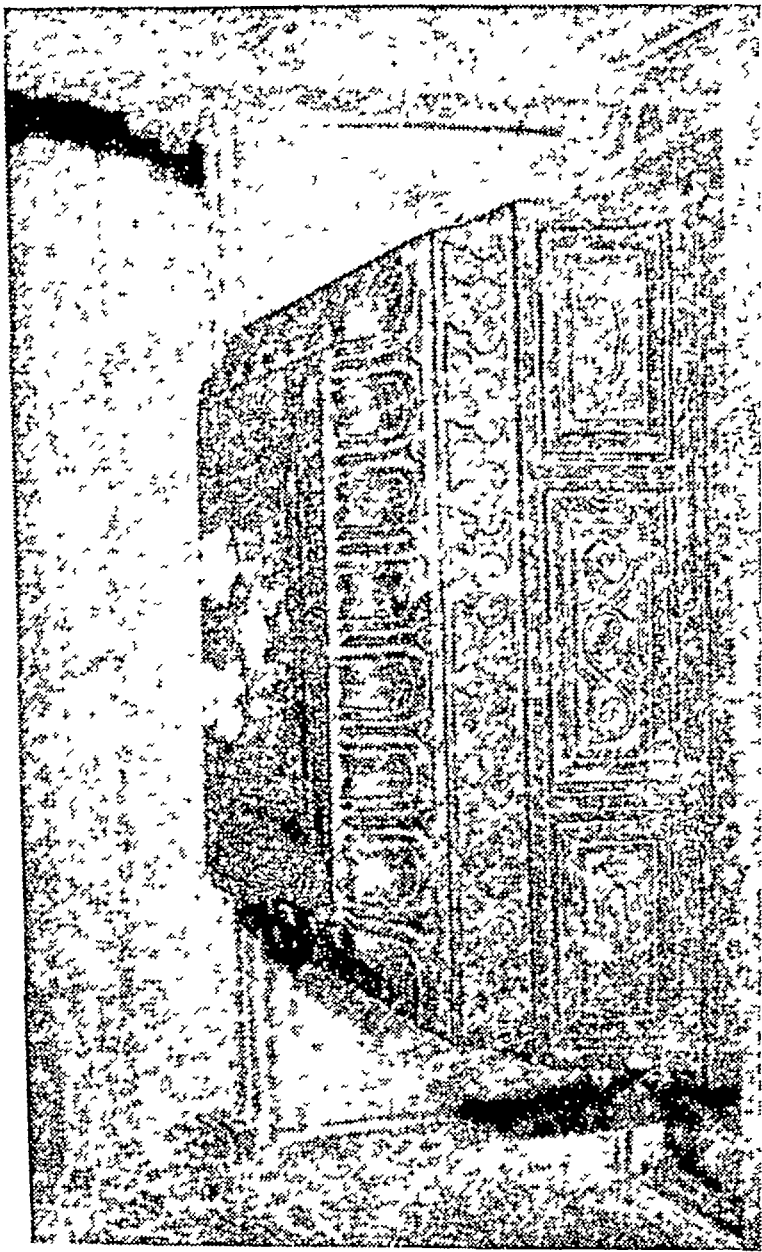
श्री महावीर निर्वाण स्थान—चरणपादुका गाँवमन्दिर पावापुरी (बिहार)
(जैन श्वे० सेवासमिति कलकत्ता के सौजन्य से)

प्राचीन शान्तिनाथ प्रतिमा, नालन्दा (विहार)

जलमंदिर पावापुरी महातीर्थ (बिहार)
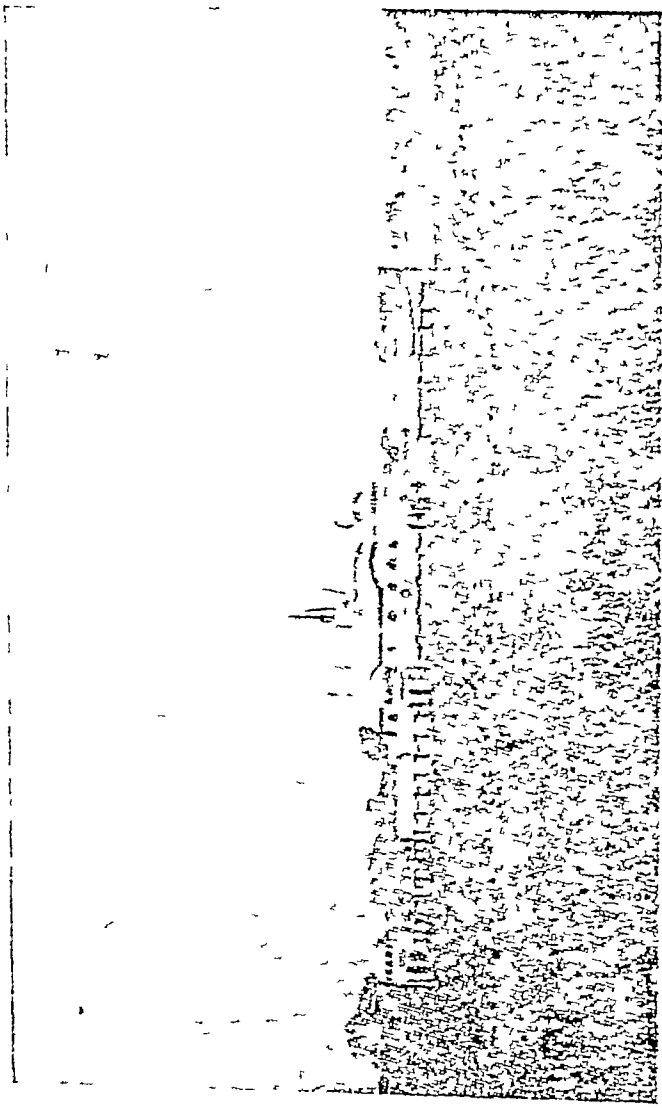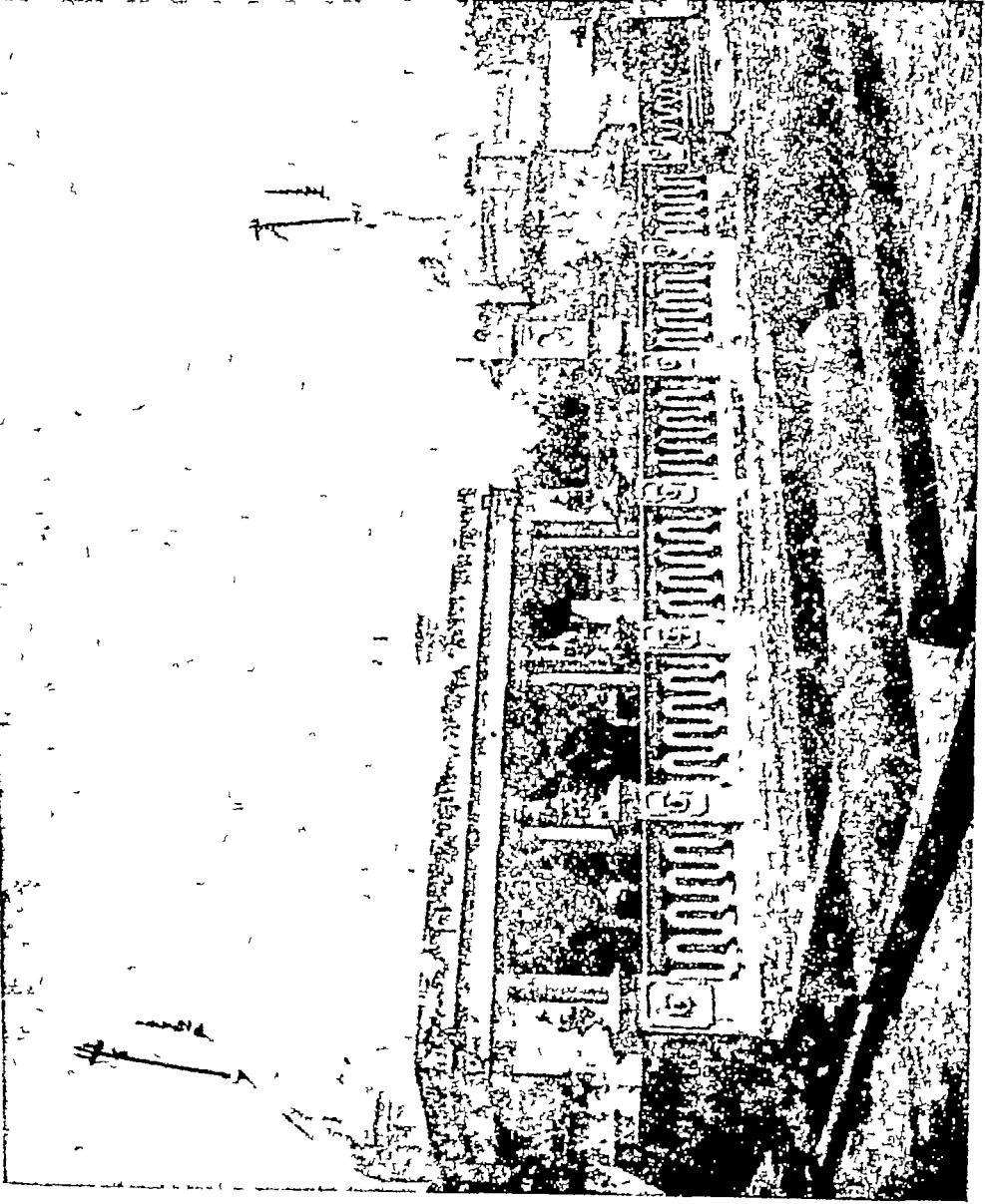
श्री वासुपूज्य जिनालय, चम्पापुरी तीर्थ (बिहार)
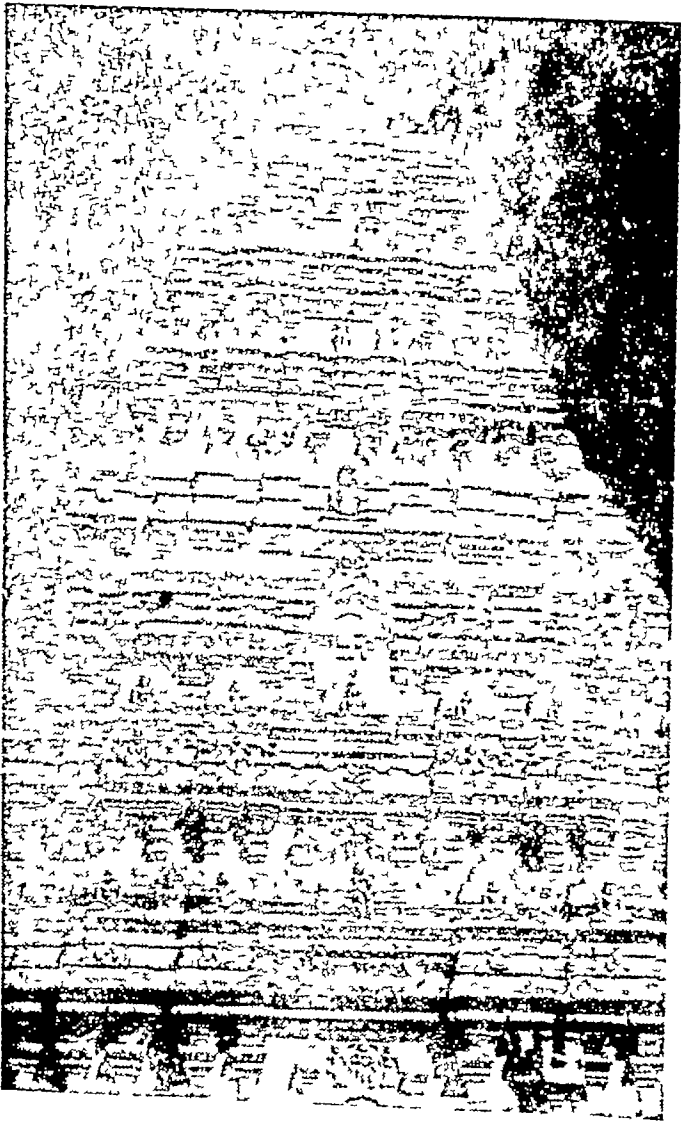
श्री कुल्पाक जी तीर्थ जिनालय का शिखर (आन्ध्र प्रदेश)
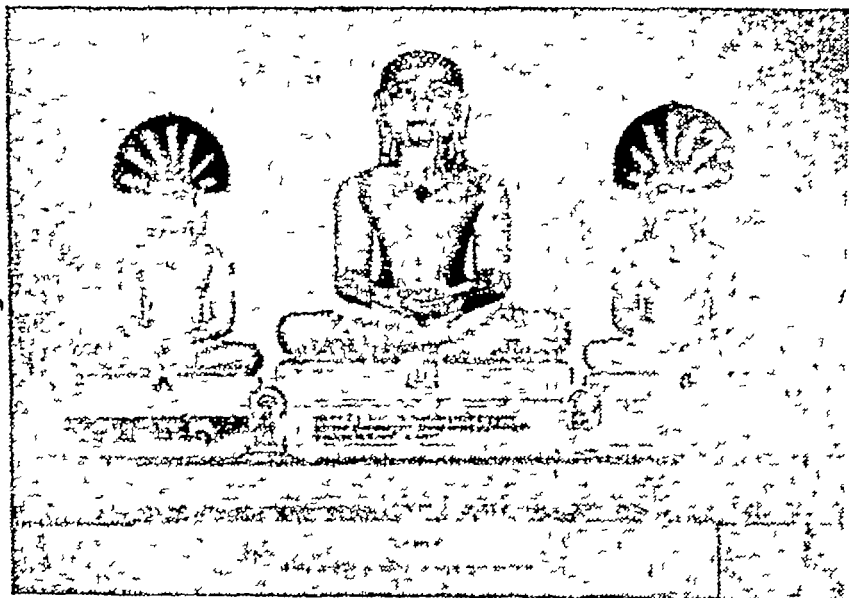
श्री पद्मप्रभु जिनालय, प्रतिमाएँ, कौशाम्बी तीर्थ (उ० प्र०)
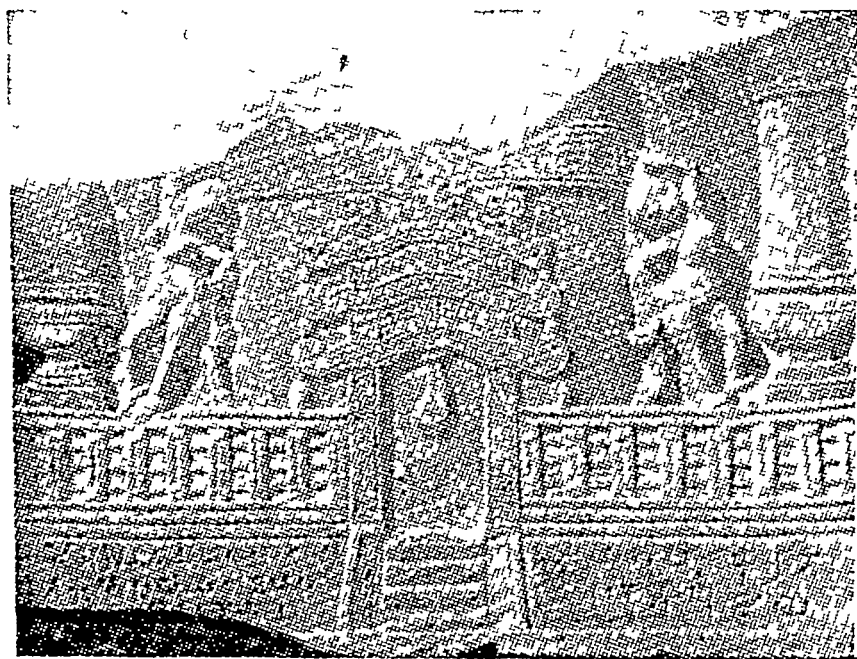
आयागपट्ट, मथुरा स्तूप
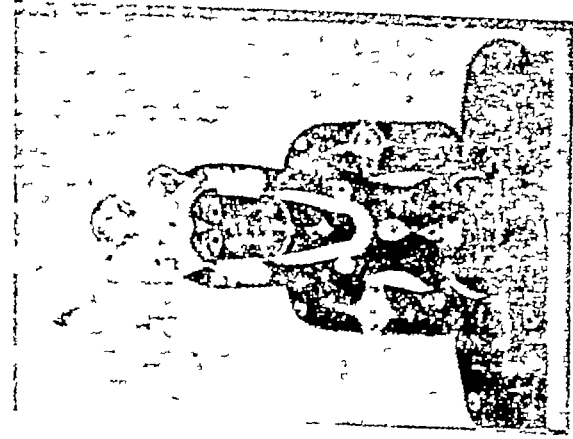
ऋषभ देव (माणिक्य स्वामी)
कुल्पाक जी तीर्थ (आन्ध्रप्रदेश)
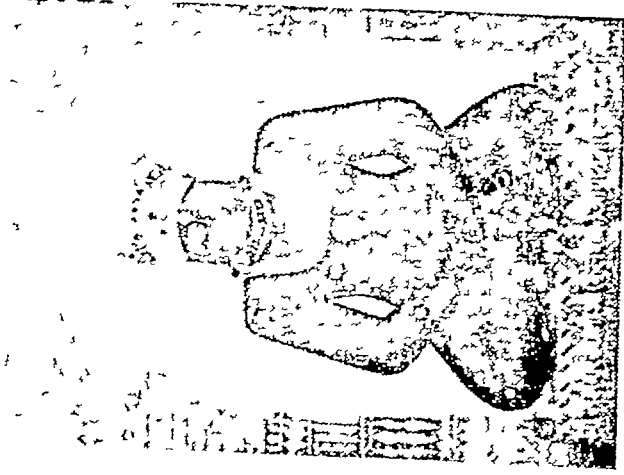
श्री महावीर स्वामी
(पिरोजे की प्रतिमा)

कौशाम्बी के भग्नावशेष व प्राचीन स्तम्भ
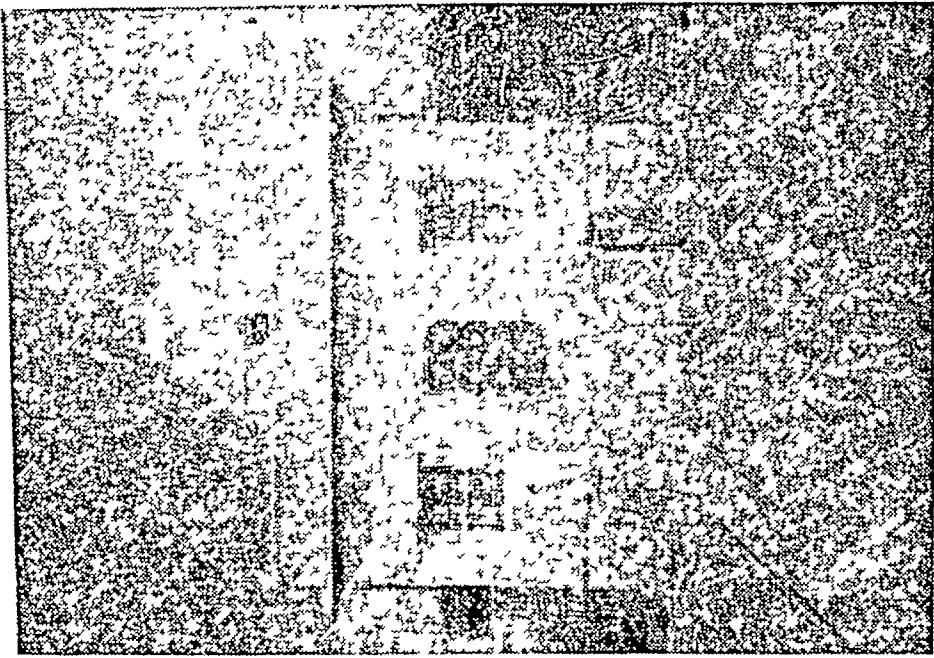
पद्मप्रभु जिनालय, कौशाम्बी तीर्थ (उ० प्र०)

भ० महावीर स्वामी, वैभारगिरि राजगृह (विहार)
(जैन भवन, कलकत्ता के सौजन्य से)

विविध तीर्थ-कल्प के सम्बन्ध में मुनि जिनविजय का वक्तव्य

१ श्री जिनप्रभसूरिरचित कल्प-प्रदीप

कल्प-प्रदीप अथवा विशेषतया प्रसिद्ध विविध तीर्थ-कल्प नामक यह ग्रंथ जैन साहित्य की एक विशिष्ट वस्तु है। ऐतिहासिक और भौगोलिक दोनों प्रकार के विषयो की दृष्टि से इस ग्रथ का बहुत कुछ महत्त्व है। जैन साहित्य ही मे नही, समग्र भारतीय साहित्य मे भी इस प्रकार का कोई दूसरा ग्रन्थ अभी तक ज्ञात नही हुआ। यह ग्रन्थ, विक्रम १४वी शताब्दी मे, जैनधर्म के जितने पुरातन और विद्यमान प्रसिद्ध-प्रसिद्ध तीर्थ स्थान थे उनके सबध की प्राय एक प्रकार की 'गाईड-बुक' है। इसमे वर्णित उन उन तीर्थो का सक्षिप्त रूप से स्थान-वर्णन भी है और यथाज्ञात इतिहास भी है।

२ ग्रंथकार आचार्य

ग्रन्थकार अपने समय के एक बडे भारी विद्वान् और प्रभाव-शाली जैन आचार्य थे। जिस तरह, विक्रम की १७वी शताब्दी मे, मुगलसम्राट अकबर बादशाह के दरबार मे जैन जगद्गुरु हीर-विजय सूरि ने शाही सम्मान प्राप्त किया था, उसी तरह जिनप्रभ सूरि ने भी १४वी शताब्दी मे तुघलक सुलतान महम्मद शाह के दरबार मे बड़ा गौरव प्राप्त किया था। भारत के मुसलमान बादशाहो के दरबार मे, जैन धर्म का महत्व बतलाने वाले और उसका गौरव बढाने वाले, शायद, सबसे पहले ये ही आचार्य हुए।

इनकी प्रस्तुत रचना के अवलोकन से ज्ञात होता है, कि इतिहास और स्थल-भ्रमण से इनको बडा प्रेम था। इन्होने अपने जीवन में भारत के बहुत से भागो मे परिभ्रमण किया था।

गुजरात, राजपूताना, मालवा, मध्यप्रदेश, वराड, दक्षिण, कर्णाटक, तेलग, विहार, कोशल, अवध, युक्तप्रात, और पजाव आदि के कई पुरातन और प्रसिद्ध स्थानो की उन्होने यात्रा की थी। इस यात्रा के समय, उस-उस स्थान के वारे मे जो-जो साहित्यगत और परपराश्रुत बाते उन्हे ज्ञात हुई उनको उन्होने सक्षेप मे लिपिबद्ध कर लिया और इस तरह उस स्थान या तीर्थ का एक कल्प वना दिया। और साथ-ही मे ग्रन्थकार को सस्कृत और प्राकृत दोनो भाषाओ, गद्य और पद्य दोनो ही प्रकार से, ग्रथ-रचना करने का एकसा अभ्यास होने के कारण, कभी कोई कल्प उन्होने सस्कृत भाषा मे लिख लिया तो कोई प्राकृत मे, और इसी कभी किसी कल्प की रचना गद्य मे कर ली तो किसी की पद्य मे। किसी एक स्थान के बारे मे पहले एक छोटी सी रचना कर ली और फिर पीछे से कुछ अधिक वृत ज्ञात्त हुआ और वह लिपिवद्ध करने जैसा प्रतीत हुआ, तो उसके लिये परिशिष्ट के तौर पर एक कल्प या प्रकरण और लिख लिया गया। इस प्रकार भिन्न-भिन्न समय मे और भिन्न-भिन्न स्थानो मे, इन कल्पो की रचना होने से, इनमे किसी प्रकार का कोई क्रम नही रह सका।

३ ग्रथ की रचना की कालावधि

ग्रन्थ की इस प्रकार खण्डशः रचना होते रहने के कारण सारे ही सग्रह के सम्पूर्ण होने मे वहुत दीर्घ समय व्यतीत हुआ मालूम देता है। कम से कम ३० से अधिक वर्ष जितना काल लगा हुआ होगा। क्योकि, जिन कल्पो मे रचना का समय-सूचन करने वाला सवत् आदि का उल्लेख है, उनमे सवसे पुराना सवत् १३६४ मिलता है, जो वैभारगिरि-कल्प [क० ११, पू० २३] के अन्त मे दिया हुआ है। ग्रन्थकार का किया हुआ ग्रन्थ की समाप्ति का सूचक जो अन्तिमोल्लेख है, उसमें सवत् १३८९ का निर्देश है।

इससे २५ वर्षों के जितने काल का सूचन तो, स्वयं ग्रन्थ के इन दो उल्लेखों से ज्ञात हो जाता है, लेकिन वैभारगिरि-कल्प के पहले भी कुछ कल्पो की रचना हो गई थी और संवत् १३८९ के बाद भी कुछ और कल्प या कृति अवश्य बनी थी, जिसका कुछ स्पष्ट सूचन ग्रन्थगत अन्यान्य उल्लेखो से होता है। इसी कारण से, ग्रन्थ-समाप्ति-सूचक जो कथन है वह किसी प्रति मे तो कही मिलता है और किसी में कही। और यही कारण, प्रतियो में कल्पो की सँख्या का न्यूनाधिकत्व होने मे भी है।

४. ग्रन्थगत विषय-विभाग

इस ग्रन्थ मे भिन्न-भिन्न विषय या स्थानो के साथ सम्बन्ध रखने वाले सब मिलाकर ६०-६१ कल्प या प्रकरण है। इनमें से, कोई ११-१२ तो स्तुति-स्तवन के रूप में हैं, ६-७ चरित्र या कथा के रूप मे है और शेष ४०-४१ न्यूनाधिक वस्तु स्थानवर्णनात्मक है। पुनः इन स्थानवर्णनात्मक कल्पों मे से, चतुरशीतिमहातीर्थ-नामसग्रह जो कल्प [क्रमाक ४५] है उसमे तो प्रायः सभी प्रसिद्ध और ज्ञात तीर्थस्थानों के नाम का निर्देश मात्र किया गया है। पार्श्वनाथ कल्प [क० ६] मे पार्श्वनाथ के नाम से सम्बद्ध ऐसे कई स्थानो का उल्लेख है। उज्जयन्त अर्थात् रैवतगिरि का वर्णन करने वाले भिन्न-भिन्न ४ कल्प [क० २-३-४-५] है। स्तम्भनक तीर्थ और कन्यानयनमहावीर तीर्थ के सम्बन्ध मे दो-दो कल्प हैं। इस प्रकार, अन्य विषय वाले तथा पुनरावृत्ति वाले जितने कल्प हैं उनको छोड़ कर, केवल स्थानो की दृष्टि से विचार किया जाय तो, इस ग्रन्थ मे कुल कोई ३७-३८ तीर्थभूत स्थानो का, कुछ इतिहास या स्थान-परिचयगर्भित वर्णन दिया हुआ मिलता हैं।

५ स्थानो का प्रान्तीय-विभाग

यदि इन सब स्थानो को प्रान्त या प्रदेश की दृष्टि से विभक्त किया जाय तो इनका पृथक्करण कुछ इस प्रकार होगा—

गुजरात और काठियावाड़

शत्रुंजयमहातीर्थ [क० १]
उज्जयन्त (रैवतगिरि) तीर्थ [क० २-३-४-५]
अश्वाववोधतीर्थ [क० १०]
स्तम्भनकपुर [क० ५, ५९]
अणहिलपुरस्थित अरिष्टनेमि [क० २६]
अणहिलपुरस्थित कोकवसति [क० ४०]
शखपुर तीर्थ [क० २७]
हरिकखीनगर [क० २९]

युक्तप्रान्त और पंजाब

अहिच्छत्रपुर [क० ७]
हस्तिनापुर [क० १६, ५]
ढिल्ली या दिल्ली [क० ५१]
मथुरा [क० ९]
वाराणसी [क० ३८]
कौशाबी [क० १२]

दक्षिण और बराड

नासिक्यपुर [क० २८]
प्रतिष्ठानपत्तन [क० २३]
अन्तरिक्षपार्श्वतीर्थ [क० ५८]

राजपूताना और मालवा

अर्वुदाचलतीर्थ [क० ८]
सत्यपुर तीर्थ [क०१७]
शुद्धदन्तीगिरि [क०३१]
फलवर्द्धि तीर्थ [क० ६०]
ढिपुरी तीर्थ [क० ४३-४४]
कुडुङ्गेश्वर तीर्थ [क० ४७]
अभिनन्दनदेव तीर्थ [क० ३२]
वैभारगिरि [क० ११]

अवध और बिहार

पावा या अपापापुरी [क०२१,१४]
पाटलिपुत्र [क० ३६]
चपापुरी [क० ३५]
कोटिशिला [क० ४१]
कलिकुडकुर्कुटेश्वर [क० १५]
मिथिला [क० १९]
रत्नपुर [क० ७]
कांपिल्यपुर [क० २५]
अयोध्यापुरी [क० १३]
श्रावस्तीनगरी [क० ३७]

कर्णाटक और तेलंगण

कुल्पाक माणिक्यदेव [क० ५२-५७]
आमरकुड पद्मावती [क० ५३]
कन्यानयमहावीर [क० २२-५१]

प्रस्तावना

भारतवर्ष की धार्मिक सस्कृति मे 'तीर्थ' शब्द का अत्यधिक महत्त्व रहता आया है। वैयाकरणियो ने इस शब्द की व्युत्पत्ति 'तॄ' धातु के साथ 'थक्' प्रत्यय लगाकर की है—'तीर्थते, अनेन वा, तॄ प्लवन-तरणयो , पातॄ तुदि-इति थक्'—अर्थात्, जिसके द्वारा अथवा जिसके आधार से तिरा जाय वह 'तीर्थ' है। कोषकारो ने 'निपान-आगमयोस्तीर्थम्-ऋषिजुष्टे जले गुरौ' सूत्र द्वारा इस शब्द के अनेक अर्थ दिये है, किन्तु भाव वही है, अर्थात् जो तिरा दे या पार करा दे, अथवा तिरने या पार हो जाने मे जो सहायक हो, साधक हो, वही 'तीर्थ' है। इसी आशय को व्यक्त करते हुए आदिपुराणकार भगवज्जिनसेनाचार्य ने कहा है—

"ससाराब्धेरपारस्य तरणे तीर्थमिष्यते।"

जो (दु खरूप) ससार सागर (जन्म-मरण रूप सतत् ससरण) से पार कर दे वह तीर्थ कहलाता है।'

स्थावर, जगम और भाव के भेद रूप तीर्थ तीन प्रकार के होते हैं—ऐसी पुण्यभूमियाँ या स्थल जो किसी पुण्य पुरुष, पवित्र घटना अथवा पुनीत स्मारक आदि के साथ सम्बन्धित है, स्थावर तीर्थ कहलाती हैं। अर्हंत तीर्थंकर आदि इष्टदेव और सद्गुरु जगम तीर्थ होते है। और तीर्थंकरो का प्रेरणाप्रद चरित्र, उनका उपदेश या जिनवाणी, भगवान अर्हंत् का धर्मशासन, रत्नत्रय, अहिंसा अथवा क्षमादि आत्मधर्म तथा शुद्ध आत्म तत्त्व भावतीर्थ है। वैसे सामान्यतया धर्मतीर्थ, तीर्थक्षेत्र या तीर्थ शब्दो से स्थावर तीर्थों का ही बोध होता है। कहा भी है—

इक्षोर्विकाररसपृक्तगुणेन लोके,
पिष्टोऽधिकं मधुरतामुपयाति यद्वत् ।
तद्वच्च पुण्यपुरुषैरुषितानि नित्यं,
स्थानानि तानि जगतामिह पावनानि ॥

'जिस प्रकार लोक मे इक्षुरस से वने गुड मे गूंधा गया आटा मीठा हो जाता है, उसी प्रकार पुण्यपुरुषो द्वारा सेवन किये गये स्थान जगत के प्राणियो के लिए पावन स्थल वन जाते हैं ।'

वस्तुत, वर्तमान कल्पकाल के ऋषभादि महावीर पर्यन्त चौवीसो तीर्थंकरों के गर्भ-जन्म-दीक्षा-ज्ञान-निर्वाण नामक पाँच कल्याणको से धन्य हुए स्थान, उनके जीवन की अन्य महत्त्वपूर्ण घटनाओ से सम्बंधित स्थान, पुरातन मुनिपुगवो की तपोभूमियाँ एव सिद्धत्व-प्राप्ति के स्थान, विशिष्ट प्राचीन धार्मिक स्मारक, चैत्य, स्तूप, लयण, स्तभ, मदिर आदि, किसी धार्मिक महत्त्व की ऐतिहासिक घटना का स्थल, किसी सातिशय जिनप्रतिमा के चमत्कारो के कारण प्रसिद्ध हुआ स्थान, तथा ऐसे स्थान जहाँ पर्याप्त मात्रा मे ऐसे धार्मिक कलावशेष या पुरातत्त्वावशेष उपलब्ध हैं जो उक्त स्थान के एक प्राचीन धार्मिक एव सास्कृतिक केन्द्र रहने के प्राय सूचक होते हैं—ये सब जैन परम्परा के पवित्र एव पूजनीय स्थावर तीर्थ हैं । उनकी एकाकी व ससघ यात्रा करके श्रावक-श्राविकाएँ अपना जन्म सफल करते हैं । इन पवित्र स्थानो के पुनीत वातावरण मे भक्तजनो के परिणाम निर्मल होते हैं । वहाँ उनका अधिकाश समय भी दान, पूजा, स्मरण, कीर्त्तन, स्वाध्याय, सामायिक, उपदेश श्रवण, व्रत, संयम, उपवास आदि धार्मिक क्रियाओ मे व्यतीत होता है ।

ऐसे जैन तीर्थ सैकडो हैं और उत्तर मे कैलाश पर्वत अपरनाम अष्टापद (जो तिव्वत मे स्थित है) से लेकर दक्षिण मे कन्या-

कुमारी पर्यन्त उत्तर-पश्चिम मे तक्षशिला से लेकर पूर्वीतटवर्ती भुवनेश्वर पर्यन्त, और उत्तर-पूर्व मे असम एवं बागला देश से लेकर पश्चिमी समुद्रतट पर्यन्त इस महादेश भारतवर्ष मे बिखरे पड़े हैं। देश का कोई राज्य, प्रान्त या प्रदेश ऐसा नही है जिसमे एक या एक से अधिक जैन तीर्थ विद्यमान न हो। अनेक प्राचीन तीर्थ विच्छिन्न अथवा विस्मृत भी हो गये और उनके स्थिति-स्थल को खोजना या चीन्हना दुष्कर हो गया है। कई की स्थिति या पहचान के विषय मे मतभेद उत्पन्न हो गये और एकाधिक स्थानो से उनकी चीन्ह की जाने लगी। ऐसे भी अनेक तीर्थ हैं जो गत साधिक एक सहस्र वर्ष के बीच ही—पूर्व मध्यकाल एव मध्यकाल मे ही उदय में आये अथवा प्रसिद्धि को प्राप्त हुए हैं।

जिन तीर्थों की यात्रा का क्रम अविच्छिन्न बना रहा, उनकी स्थिति निर्भ्रान्त बनी रही, उनका अल्पाधिक विकास भी होता रहा और संरक्षण भी हुआ। किन्तु काल-दोष से—अनेक राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक आदि कारणो से कई तीर्थो की यात्रा विच्छिन्न हो गई और वे विस्मृति के गर्भ मे विलीन होते गये। ऐसी दशा मे तीर्थविषयक साहित्य ही ऐसा आधार रह गया जिसके द्वारा अधुना अज्ञात या विस्मृत तीर्थो का नाम जीवित रहा और ज्ञात तीर्थो के सम्बन्ध मे भी अनेक ऐसे तथ्य एवं वृत्त सुरक्षित रह सके जिन्हे लोकमानस ने विस्मृत कर दिया था और जिनके सत्यापन का भी अब प्राय कोई उपाय नही रह गया है।

मूल प्रतिक्रमण पाठ के विसीहदंडक मे, कुन्दकुन्द कृत प्राकृत भक्तियो एवं निर्वाणकाड मे, पूज्यपादीय सस्कृत भक्तियो मे यतिवृषभकृत तिलोयपण्णत्ति मे, आगमसूत्रो और उनकी निर्युक्तियो, चूर्णियो, भाष्यो, टीकाओ मे, पुराण एवं कथा साहित्य मे, पट्टा-

वलियो-गुर्वावलियो मे, तथा शिलालेखो मे परम्परागत तीर्थो के विपय मे अनेक फुटकर ज्ञातव्य प्राप्त होते हैं। परन्तु, तीर्थो के विपय मे स्वतन्त्र रचनाएँ, यथा चैत्यवन्दन स्तोत्र, तीर्थविशेषों के माहात्म्य, तीर्थकल्प, तीर्थमालाएँ आदि मध्यकाल मे ही रची गयी। मदनकीर्त्ति (लगभग १२४० ई०) कृत शासनचतुस्त्रिंशिका, उदयकीर्त्तिकृत निर्वाणभक्ति, प्रभाचन्द्रसूरि कृत प्रभावकचरित्र (१२७७ ई०) मेरुतुग की प्रवन्धचिन्तामणि (१३०५ ई०) जिनप्रभसूरिका कल्प-प्रदीप (१३३२ ई०), राजशेखरसूरिकृत प्रवन्धकोश (१३४८ ई०), हससोम की पूर्वदेशीय चैत्य-परिपाटी (१५०८ ई०), वर्धमानकृत दशभक्त्यादि संग्रह (१५४२ ई०), व्र० ज्ञानसागर की तीर्थावली (१५५० ई० लगभग), विजयसागर की तीर्थमाला (१६०७ ई०), भ विश्वभूपणकृत सर्वत्रैलोक्य जिनालय-जयमाला (१६६५ ई०), शीलविजयगणी की तीर्थमाला[1] (१६८९ ई०), महेश्वरसूरि का शत्रुञ्जय-माहात्म्य (१७०० ई०), गुणभद्रकृत तीर्थार्चनचन्द्रिका (ल १७५० ई०), देवदत्त दीक्षित के सम्मेदाचल माहात्म्य एवं स्वर्णाचल माहात्म्य (१७८८ ई०), प्रभृति इस प्रकार की प्रमुख ज्ञात रचनाएँ हैं। कई अन्य (गिरनार आदि) तीर्थों के माहात्म्य, कई एक तीर्थो के पूजापाठ, जयमाला, स्तवन आदि, प० भगवतीदास कृत अर्गलपुर-जिनदेवता (१५९४ ई०) जैसे स्थानीय विवरण भी प्राप्त होते हैं। वर्तमान शताब्दी मे जैन तीर्थक्षेत्रो के जो अनेक विवरण-विवेचन प्रकाशित हुए हैं, वे ज्ञात एवं मान्य तीर्थो के वर्तमान रूप,

---

१ मुनि विजयधर्म सूरि ने स्वसम्पादित 'प्राचीन तीर्थमाला सग्रह' (१९२१ ई०) में ऐसी २५ तीर्थमालाओ का सग्रह प्रकाशित किया था। चैत्य-वन्दन स्तोत्रों के लिए देखिए शोधाक नं० २४ पृ १३९-१४१ पर हमारा लेख।

तत्सम्वंधी अनुश्रुतियों एवं किवदतियो और उपरोक्त मध्यकालीन तीर्थ-साहित्य के आवार पर ही लिखे गये हैं।[1] इस विषय में सन्देह नही है कि उक्त मध्यकालीन रचनाओं मे आचार्य जिन-प्रभसूरि कृत कल्पप्रदीप (विविध तीर्थ-कल्प) अनेक दृष्टियो से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

आचार्य जिनप्रभसूरि अपने युग के महान शासन प्रभावक आचार्य थे। गुजरात के मोहिलवाड़ी ग्राम निवासी, श्रीमाल ज्ञातीय, ताम्बीगोत्रीय श्रावक महाधर के पौत्र और रत्नपाल एव सेतलदेवी के कनिष्ठ सुपुत्र सुभटपाल के रूप में १२६१ ई० के लगभग उनका जन्म हुआ था। ग्यारहवी शती ई० के प्रथम पाद मे आचार्य जिनेश्वरसूरि (प्रथम) द्वारा संस्थापित खरतरगच्छ के अष्टम आचार्य जिनेश्वरसूरि द्वितीय (१२२१-१२७४ ई०) थे। उनके समय मे खरतरगच्छ दो शाखाओ मे विभक्त हो गया—वृहत्शाखा के आचार्य उनके पट्टशिष्य जिनप्रबोध सूरि हुए, और दूसरे शिष्य, जिनसिंह सूरि, लघुशाखा के प्रथम आचार्य हुए। इन्ही जिनसिंह सूरि (१२२३-१२८४ ई०) के निकट सुभटपाल ने मात्र आठ वर्ष की वालवय मे जिनदीक्षाली और शर्मतिलक नाम प्राप्त किया। गुरु के सान्निध्य मे मनोयोग से विद्याभ्यास करके कुछ ही वर्षो मे वह इतने वहुविज्ञ विद्वान हो गये कि उपाध्याय पद प्राप्त कर लिया और मात्र २३ वर्ष की आयु मे, १२८४ ई० मे जिनप्रभसूरि नाम से आचार्य पद पर आसीन होकर गुरु के पट्टधर हुए। इस प्रकार लघु खरतर शाखा के वह द्वितीय और

---

१ स्व प नाथूराम प्रेमी ने अपने 'जैन साहित्य और इतिहास' (द्वि स , १९५६) में पृ ४२२ से ४७७ पर्यन्त 'हमारे तीर्थक्षेत्र,' 'दक्षिण के तीर्थक्षेत्र' और 'तीर्थों के विवाद' शीर्षको से जैन तीर्थो के विपय में अत्युत्तम ऊहापोह एव विवेचन किया है।

करने मे इस ग्रन्थ का उपयोग हुआ है। लगभग एक सौ वर्ष पूर्व पीटरसन ने सस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थो की अपनी चतुर्थ रिपोर्ट मे विविध तीर्थ कल्प का उल्लेख किया था; एस पी पडित ने वाक्पतिकृत प्राकृत काव्य 'गउडवहो' के स्वसम्पादित सस्करण की भूमिका मे विविध तीर्थ-कल्प के मथुरापुरी कल्प मे वर्णित वप्पभट्टिसूरि एव आमराज के प्रसग का उल्लेख किया था, डा० बुह्लर ने मथुरा के स्वसपादित शिलालेखो की प्रस्तावना मे तथा 'ए लीजेन्ड आफ दी जैना स्तूप एव मथुरा' (१८९७ ई०) मे उसका उपयोग किया है। कालान्तर मे प नाथूराम प्रेमी, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी, नाहटा जी, स्वयं हमने, तथा अन्य अनेक विद्वानो ने जिनप्रभसूरि के विविध तीर्थ-कल्प का उपयोग किया है।

अन्त्य प्रशस्ति के अनुसार यह ग्रन्थ 'भूमडल के इन्द्र (अधिपति या स्वामी) श्री हम्मीर महम्मद (अमीर अर्थात् सुलतान, मुहम्मद बिन तुगलुक) के राज्य मे, योगिनीपत्तन (योगिनीपुर, दिल्ली) मे भाद्रपद कृष्ण दशमी बुधवार, विक्रम सवत् १३८९ (सन् १३३२ ई०) मे पूर्ण हुआ था। अनुष्टुपमान से इसका श्लोक परिमाण ३५६० था। ग्रन्थ मे कुल ६२ कल्प या प्रकरण सकलित है, जिनमे से केवल ६ के अन्त मे उनकी रचना-तिथि दी गयी है— वैभारगिरि-कल्प—क्रमांक ११ (१३०७ ई०), शत्रुजय तीर्थ-कल्प— क्रमाक १ (१३२८ ई०), ढिपुरीस्तव-क्रमाक ४४ (१३२९ ई०) अपापा वृहत्कल्प—क्रमाक २१ (१३३० ई०), हस्तिनापुर तीर्थ स्तवन—क्रमाक ५० (१३३१ ई०), और श्री महावीरगणधर-कल्प— क्रमाक ३९ (१३३२ ई०)। शेष कल्पो मे उनकी रचना की तिथि सूचित नही की गई है। किन्तु कुछ कल्पो की रचना-तिथि अनुमान की जा सकती है, उनमे दिये गये संदर्भो के आधार पर,

यथा सत्यपुर-साचौर तीर्थ कल्प (न० १७) १३१० ई० के बाद कभी रचा गया है, अर्बुदगिरि कल्प (न० ८) १३२१ ई० के उपरान्त रचा गया, और कन्यानयनीय महावीर प्रतिमा कल्प (न० २२) १३२८ ई० के उपरान्त, सभवतया १३३१-३२ ई० मे रचा गया। इस कल्प का पूरक (न० ५१) तो आचार्य के देहान्त के पर्याप्त समय बाद रचा गया प्रतीत होता है—उसे उनके विद्या-शिष्य संघतिलक सूरि के पट्टधर विद्यातिलक अपर नाम सोम-तिलक सूरि ने रचा था, जिनके कुमारपालप्रवन्ध का रचनाकाल १३६७ ई० है। अस्तु, कल्प-प्रदीप के विभिन्न कल्पो की रचना आचार्य ने १३०७ से १३३२ ई० पर्यन्त लगभग २५ वर्षा के बीच की थी। दो-चार की रचना १३०७ के पूर्व भी की गयी हो सकती है। रचना-स्थलो मे न० १ और २२ दिल्ली मे रचे गये प्रतीत होते हैं, न० २१ देवगिरि मे रचा गया और न० ५० हस्तिनापुर में। शेष मे से कुछ विवक्षित तीर्थ स्थानो पर भी रचे गये हो सकते हैं और अन्यत्र भी। भाषा की दृष्टि से २२ कल्प सस्कृत मे और शेष प्राकृत मे रचित हैं।

पुस्तकगत कुल ६३ कल्पो मे एक तो अन्त्य प्रशस्ति के रूप मे है, एक (न० ४५) मे ८४ तीर्थो की सूची है, कई कल्प स्तवन-स्तोत्र आदि के रूप मे हैं, नन्दीश्वर द्वीप जैसे मिथिक स्थलो के तथा अष्टापद[१] जैसे अनिश्चित आकार-प्रकार व स्थिति के तीर्थो के भी कल्प है। कई तीर्थों पर एकाधिक कल्प रचे हैं, यथा उज्जयन्त (रैवतगिरि या गिरनार) पर चार, प्रतिष्ठान पर तीन और पावापुरी, ढीपुरी, हस्तिनापुर, अष्टापद, एव स्तभनक

---

[१] इस पर्वत की ऊँचाई ८ योजन (लगभग १०० किलोमीटर) और स्थिति अयोध्या से १२ योजन (लगभग १५० कि० मी०) उत्तर में [illegible] इन दोनो ही बातो का प्राचीन परम्परा से सम्वन्ध है।

सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आचार्य हुए। वह एक बहुभाषाविज्ञ, विविध विषयनिष्णात्त, अनेक दीक्षाशिष्यो एव विद्याशिष्यो के गुरु, विपुल साहित्य-प्रणेता, तीर्थोद्धारकर्त्ता, महान प्रभावक एव राज्य मान्य जैनाचार्य थे। उनके द्वारा रचित्त साहित्य मे व्याकरण, कोष, अलकार, मन्त्रशास्त्र, तीर्थपरिचय, खण्डन-मडन, वैधानिक रचनाएँ, चरित्र काव्य, स्तोत्र-स्तवन, आगमिक एवं अन्य टीकाएँ आदि, सस्कृत और प्राकृत, गद्य एव पद्य की सैकडो कृतियाँ है। अकेले स्तोत्र ही उन्होने ७०० रचे थे, ऐसी अनुश्रुति है। उनमे से लगभग ८५ तो अद्यावधि उपलब्ध हैं। संकीर्ण साम्प्रदायिक मनोवृत्ति से वह ऊपर थे। यही कारण है कि श्वेताम्बर सम्प्रदाय के एक (खरतर-लघु) शाखागच्छ के प्रधान आचार्य होते हुए भी कई अन्य गच्छो के साधु उनके प्रिय विद्याशिष्य थे। दिगम्बरो के साथ भी उनका अच्छा सद्भाव था, और जैनेतरो मे हिन्दुओ के प्रति ही नही, मुसल्मानो के साथ भी उनका समुचित सद्भाव रहा। अतएव जनता के प्राय सभी वर्गो से उन्होने आदर प्राप्त किया। वह ऐसे युगचेता, समयानुसारी प्रवृत्ति के पारखी और अवसर का लाभ उठाने मे पटु थे कि दिल्ली के तुर्क सुलतान मुहम्मद विन तुगलुक की उदार मनस्विता, विद्यारसिकता एव दार्शनिक रुझान का लाभ उठाकर उन्होने उससे सम्पर्क साधा, अपने चरित्र एवं प्रतिभा से उसे प्रभावित्त किया और उससे प्रभूत सम्मान प्राप्त किया। इतना ही नही, सुलतान की प्रसन्नता का का उपयोग उन्होने जिन-शासन की प्रभावना, जिन-मन्दिरो, मूर्त्तियो और तीर्थो के सरक्षण तथा तीर्थों की ससघ यात्राओ के लिए कई शाही फर्मान प्राप्त करने मे किया। धर्म-प्रभावना के अपूर्व उत्साह मे उन्होने अपनी वृद्धावस्था, अस्वास्थ्य तथा जैन-मुनि के वर्षावास आदि नियमो की भी परवाह नही की। इस सुलतान के साथ उनका सम्पर्क चार-पाँच वर्ष ही रह पाया।

१३२८ मे वह सर्वप्रथम उसके सम्पर्क मे आये और संभवतया १३३३ ई० मे, लगभग ७२ वर्ष की आयु मे दिल्ली मे ही दिवगत हो गये थे ।[1]

विविध तीर्थ-कल्प, जिसका अपर, वल्कि मूल, नाम 'कल्प-प्रदीप' है,[2] आचार्य जिनप्रभसूरि की छोटी-बड़ी शताधिक रचनाओ मे अनेक दृष्टियो से सर्वोपरि महत्त्व रखता है। लोक मे उनकी प्रसिद्धि मुख्यतया इसी ग्रन्थ के कर्त्ता के रूप मे है। जैन विद्वानो के अतिरिक्त अनेक जैनेतर प्राच्यविद एवं इतिहासकार भी उससे परिचित हुए हैं, और इसमे चर्चित तीर्थों के विवेचन मे तथा उसमे उल्लिखित कतिपय अनुश्रुतियो की ऐतिहासिकता पर ऊहापोह

---

१ आचार्य जिनप्रभसूरि का सक्षिप्त-जीवन परिचय मुनि जिनविजय जी द्वारा सम्पादित एव सिंघी जैन ग्रन्थमाला, कलकत्ता से १९३४ ई० में प्रकाशित 'विविध तीर्थ-कल्प' (मूल) की भूमिका में, श्री अगरचन्द नाहटा द्वारा 'विविध मार्ग-प्रपा' के प्रारम्भ में, तथा श्री लालचन्द भगवान गाधी की गुजराती पुस्तक 'जिनप्रभसूरि अने सुलतान मुहम्मद' में प्राप्त होता है। श्री अगरचन्द नाहटा द्वारा १९७५ में प्रकाशित एव महोपाध्याय विनयसागर जी द्वारा लिखित पुस्तक 'शासन प्रभावक आचार्य जिनप्रभ और उनका साहित्य' में तो आचार्य के जीवनवृत्त, गुरु-शिष्यपरम्परा, व्यक्तित्व, सुलतान मुहम्मद तुगलक के साथ उनके सम्वन्धो, उनके चमत्कारो और प्रभावक कार्यो तथा उनकी साहित्यिक कृतियो पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है।

२. ग्रन्थ की अन्त्य प्रशस्ति में 'कल्पप्रदीपनामायं ग्रन्थो विजयतां चिरम्', तथा उसके उपरान्त दी हुई पुष्पिका में 'इति श्रीकल्प-प्रदीप ग्रन्थ समाप्त' रूप से स्वयं ग्रन्थकार ने अपनी कृति का नाम 'कल्पप्रदीप' ही सूचित किया है।

मे से प्रत्येक पर दो-दो। कन्यानयन-महावीर पर दूसरा कल्प (न० ५१) तथा पचकल्याणक स्तवन (न० ५६) अन्यकर्तृक है। इस प्रकार कुल केवल ३६ विभिन्न तीर्थ स्थानो के कल्प इस ग्रन्थ मे प्राप्त हैं। आचार्य ने कर्त्तारूप मे अपना नाम अथवा सकेत १९-२० कल्पो मे ही किया है। सभावना यही है कि शेष भी उन्होने ही रचे होगे, किन्तु यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन है कि उनमे से कोई भी भिन्नकर्तृक नही है। कल्प न० ४५ मे तन्त्र के जानकारो से प्राप्त सूचना के आधार पर जिन प्रसिद्ध ८४ तीर्थों की सूची दी हैं, उसके विषय में स्वयं स्वीकार किया है कि 'इनमे से कुछ ही देखे हैं, शेप के विषय में सुना है।' इस सूची मे एक-एक तीर्थ का कई वार उल्लेख हुआ है, एक स्थान से सम्वधित कई तीर्थों का भी पृथक्-पृथक् उल्लेख किया है, और कई तीर्थ, यथा क्रौंचद्वीप, हसद्वीप, लका, पाताल लका, त्रिकूट गिरि, कैलाश, अष्टापद आदि भारतवर्ष के वाहर हैं। जैन परम्परा मे मान्य सभी तीर्थ इस सूची मे समाविष्ट नही हैं, और अधिकाश तीर्थ अतिशय क्षेत्र हैं।

जिन विभिन्न वास्तविक ३६–३७ तीर्थ स्थानो का परिचय आचार्य ने इस कल्प-प्रदीप मे दिया है वे गुजरात, राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, पंजाव–हरयाणा, विहार, महाराष्ट्र, आन्ध्र और कर्णाटक जैसे विभिन्न प्रदेशो मे अवस्थित है। उनमे से अधिकतर ऐसे है जिनकी आचार्य ने स्वयं यात्रा की लगती है, और कई ऐसे हैं जिनकी यात्रा तो वे नही कर पाये किन्तु उनके विषय मे जैसा जाना-सुना, लिख दिया है। जिन तीर्थों को उन्होने स्वयं देखा उनके विषय मे तो वहुत कुछ जैसा देखा वैसा लिखा, साथ ही स्थानीय किंवदतियो अथवा पूर्ववर्ती साहित्यिक या मौखिक अनुश्रुतियो से जो जाना, वह भी लिख

दिया। ऐसी स्थिति मे कल्प के अन्त मे बहुधा यह भी स्पष्ट सकेत कर दिया कि 'जैसा सुना या जाना है, वैसा लिखा है।' अनेक वार तत्कालीन वस्तुस्थिति, ऐतिहासिक तथ्य, दंतकथाओ आदि पर आधारित सूचनाएँ, विशेषकर स्थान या प्रतिमा विशेष से सम्बधित्त अतिशयो, चमत्कारो आदि के कथन, कुछ इस प्रकार मिश्रित हो गये है कि आधुनिक अन्वेषक के लिए उनमे से तथ्यातथ्य को पृथक्-पृथक् करना दुष्कर हो सकता है। तथापि, आचार्य की मनोवृत्ति, व्यक्तित्व, शैली और सकेतो की पकड़ पा लेने से यह कार्य वहुत कुछ सुगम हो जाता है।

पूरे ग्रन्थ के विश्लेषण से अनेक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य उपलब्ध होते है, अनेक ऐसी ऐतिहासिक अनुश्रुतियाँ भी प्राप्त होती है जिनका सत्यापन असंभव नही है, और जितने अशों मे वे सत्यापित हो जाती है, इतिहास-निर्माण मे अतीव उपयोगी होगी। तीर्थों के परिचय मे अनेक महत्त्वपूर्ण भौगोलिक सूचनाएँ भी प्राप्त होती हैं। उस युग की लोकदशा, जैन सस्कृति, कतिपय धार्मिक एव सामाजिक प्रथाओ, आर्थिक एव राजनैतिक परिस्थिति पर साथ ही श्वेताम्बरो एव दिगम्बरो के, तथा जैनो और अजैनों के पारस्परिक सम्बधो पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। इस ग्रन्थ से ऐसा प्रतीत होता है कि उस काल मे ये सम्बंध अपेक्षाकृत अधिक सौहार्द एव प्रीतिपूर्ण थे। दिगम्बर-श्वेताम्वर सम्प्रदाय का भेद चिरकालीन एव रूढ हो चुका था, परन्तु अभी तक मन्दिर, मूर्त्तियाँ एव तीर्थस्थान प्राय अभिन्न थे। उभय सम्प्रदायो के श्रावक-श्राविकाएँ ही नही, साधु भी वहुधा साथ-साथ उनका धर्मलाभ उठाते थे। यदि गुजरात, राजस्थान आदि के कतिपय तीर्थों के प्रति श्वेताम्वरो का विशेष आकर्षण था तो महाराष्ट्र, आन्ध्र, कर्णाटक आदि के तीर्थों पर दिगम्वरो का विशेष यातायात था, किन्तु ऐसा कोई भेद उस समय तक उदय मे आया नही

लगता कि अमुक तीर्थक्षेत्र श्वेताम्बर है, अमुक दिगम्बर है। जिन मदिरो एव जिन-प्रतिमाओ के विषय मे भी यही स्थिति थी। जैनेतरो के लिए तो दिगम्बरो और श्वेताम्बरो मे कोई भेद ही नही था—दोनो समान रूप से 'सरावगान' (श्रावक) कहलाते थे, क्योकि जैन गृहस्थो के लिए उस काल मे यही शब्द बहुप्रचलित था।

आचार्य जिनप्रभ शास्त्रज्ञ विद्वान थे, साथ ही जिनभक्त, तीर्थभक्त श्रद्धालु साधु थे। मन्त्र-तन्त्र, चमत्कारो और अतिशयो मे उनका सहज विश्वास था। वह युग भी तान्त्रिक युग था, नाथ-सम्प्रदायी जोगियो का यत्र-तत्र बाहुल्य था, मुसल्मान सूफी फकीर भी चमत्कारो का आश्रय लेते थे। इस प्रकार के विश्वास उस काल मे लोकप्रचलित थे। विविध तीर्थकल्प मे वर्णित अनेक चमत्कार ऐसे हैं, जिनकी विभिन्न जिन प्रतिमाओं के प्रसग मे पुनरावृत्ति हुई लगती है, और कई एक अन्यत्र भी हुए सुने गये हैं। आज के वैज्ञानिक दृष्टि से प्रभावित तार्किक मानस को वे अधिकाशत कपोलकल्पित लग सकते हैं, किन्तु शायद उस युग मे किसी को उनमे अतिशयोक्ति प्रतीत नही होती थी। धर्म की प्रभावना अथवा जनसामान्य की भक्ति को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से उक्त अतिशयो एव चमत्कारो का आचार्य ने पग-पग पर वर्णन किया प्रतीत होता है। उन्हे स्वयं को इस प्रकार की बातो मे वस्तुत कितनी आस्था थी, यह कहना कठिन है। कम से कम जहाँ दूसरी परम्पराओ के वैसे अतिशयोक्तिपूर्ण कथन उन्होने किये है, यथा 'प्रतिष्ठानपुराधिप सातवाहन नृप-चरित्र' (न० ३४) मे, वहाँ उन्होने अपने परीक्षाप्रधान जैन मस्तिष्क के अनुरूप स्पष्ट कह दिया कि 'यहाँ जो कुछ असभव बाते हैं वे अन्य दर्शन मे कही गयी हैं—इस प्रकार की असगत बाते जो हेतु से सिद्ध

नही होती उन्हे जैन नही मानते' (अत्र च यदसम्भाव्य क्वचि-दूचे तत्र परसमय एव मन्तव्यो हेतुर्यन्नासंगतवाग्जनो जैन)। काश, अपनी परम्परा से सम्बधित चमत्कारो आदि के विषय मे भी आचार्य ऐसी परीक्षाप्रधान तार्किक दृष्टि रख पाते।

उर्ज्जयन्त (गिरनार), आर्हच्छत्रा, मथुरा, कौशाम्वी, अपापा-पुरी (पावापुर), हस्तिनापुर, मिथिला, रत्नवाहपुर (रत्नपुरी), श्रावस्ती, वाराणसी प्रभृति सर्वमान्य प्रसिद्ध तीर्थो का जिनप्रभसूरि ने जितना और जो आँखो देखा वर्णन किया है, उससे स्पष्ट है कि उन क्षेत्रो मे उस समय ऐसे अनेक धार्मिक स्मारक आदि विद्यमान थे जिनका अव वहाँ कोई चिह्न भी शेष नही है। उनसे सम्वंधित ऐसे कई अतिशय या चमत्कार भी, जो तव प्राय प्रत्यक्ष अनुभव मे आते थे, अव चिरकाल से विस्मृत हो चुके हैं।

भगवान महावीर के पूर्ववर्ती कालो मे घटित घटनाओ के वर्णन मिथिक प्रकृति की पौराणिक अनुश्रुतियाँ मात्र है, जो धार्मिक श्रद्धा के आधार पर ही मान्य किये जा सकते है। परन्तु भगवान महावीर के समय से लेकर लगभग १००० ई० पर्यन्त की अनुश्रुतियाँ वहुधा इतिहासाधारित हैं यद्यपि उनमे अनुमान, कल्पना और पौराणिकता का भी अल्पाधिक मिश्रण है। उनमे निहित तथ्यांशो के सत्यापन की आवश्यकता है। उदाहरणार्थ (कल्प नं० २६ मे) वि० स० ५०२ मे अन्हिलपुर पाटन मे एक पेड के नीचे तीन प्रतिमाओ का भूगर्भ से निकलना; म०स० (वीर निर्वाण) ९९३ (सन् ४६६ ई०) कालिकाचार्य द्वारा सवत्सरी की तिथि मे परिवर्तन (न० २३)—कुछ विद्वान् इन कालकाचार्य को ईसापूर्व प्रथम शती के मध्य मे लगभग रखते है। प्रतिष्ठानपुर की स्थापना और सातवाहन नरेशो का चरित्र (न० २३, ३३, ३४) तथा श्रीपुर तीर्थ एव कुष्ठी राजा श्रीपाल का आख्यान (न० ५८) ऐतिहासिक दृष्टि से विचारणीय हैं। कोल्लपाक माणिक्यदेव

(न० ५७) के प्रसग मे वि० स० ६८० मे म्लेच्छो के प्रवेश की वात तथा कन्नड देश के कल्याणनगर मे शकर नामक जिनेन्द्र-भक्त राजा के होने की वात भी सत्यापन की अपेक्षा रखती है। वीर स० १३०० (सन् ७७३ ई०) मे साचौर मे कन्नौजनरेश द्वारा जिनालय वनवाने का जो उल्लेख है (न० १७) उसका सकेत सभवतया भिनमाल के गुर्जर प्रतिहार नरेश वत्सराज की ओर है, किन्तु उस समय वह कन्नौज का राजा नही था—वहाँ तव आयुधवशी राजाओ का राज्य था। इसी कल्प के अनुसार वि० स० ८४५ (७८८ ई०) में वलभी रांका सेठ गज्जणपति हम्मीर को ससैन्य लाया था, जिसने वलभी भग किया और उसके राजा शिलादित्य को मार डाला—किन्तु उस समय तक गजनी पर मुसल्मानो का अधिकार ही नही हुआ था। ऐसा कोई आक्रमण उस काल मे सौराष्ट्र पर यदि हुआ तो वह सिंध के किसी अरब अमीर (सरदार) का हुआ हो सकता है। वि. सं. १०८१ (सन् १०२४ ई०) मे जो 'एक अन्य गजनीपति गुजरात भग करके साचौर पहुचा' वताया है, वह महमूद गजनवी ही हो सकता है उसके द्वारा उस वर्ष मे सोमनाथ एव गुजरात पर भीषण आक्रमण की घटना इतिहास सिद्ध है। मथुरापुरी-कल्प (न० ९) के अनुसार वि० स० ८२६ (सन् ७६९ ई०) मे आमराय-सेवित वप्पभट्टि ने मथुरातीर्थ का उद्धार किया था और वहाँ महावीर विंव स्थापित किया था। यह महत्त्वपूर्ण घटना तथ्याधारित प्रतीत होती है, किन्तु जिनप्रभसूरि तथा उनके उत्तरवर्ती ग्रन्थकारो द्वारा वर्णित वप्पभट्टि चरित्र मे भिन्न समयो, क्षेत्रो तथा व्यक्तियो से सम्वन्धित वृत्त कुछ इतने उलझ गये हैं कि उन्हे ज्यो का त्यो मान लेने से वे इतिहास सिद्ध नही होते और इसी कारण आधुनिक इतिहासकारो मे उनके विषय मे पर्याप्त मतभेद है—कोई कन्नौजनरेश यशोवर्मन (६९०-७२० ई०) के साथ,

कोई उसके पुत्र या उत्तराधिकारी के साथ, तो कोई कन्नौज के इन्द्रायुध प्रभृति किसी आयुधवंशी नरेश के साथ और कई एक गुर्जर प्रतिहार नरेग नागभटद्वि० नागावलोक के साथ उक्त आम-राज का समीकरण करते है। इस प्रसंग का विस्तृत विवेचन स्वतत्र लेख का विषय है। कल्प न० ५३ का आमरकुड आन्ध्र-प्रदेग का प्रसिद्ध जैन तीर्थ रामकोड (रामगिरि) या रामतीर्थ प्रतीत होता है[1], और मुरगल नगर ककातीय नरेशो की सुप्रसिद्ध राजधानी वारगल। इस प्रसग मे आचार्य ने ककातीय वश की उत्पत्ति और दिगम्बराचार्य मेघचन्द्र की सहायता से उक्त राज्य वश के प्रथम पुरुप माधवराज द्वारा राज्य की स्थापना की घटना का उल्लेख किया है जो ऐतिहासिक दृष्टि से वडी महत्त्वपूर्ण है दक्षिण भारत के गंग, सातर, होयसल आदि कई अन्य राज्य-वंशों की भाँति यह राज्य भी युगचेता जैन गुरुओ के प्रसाद से अस्तित्व मे आया था। उसकी उत्पत्ति का विवरण जिनप्रभसूरि ने स्वयं 'आमरकुंड' (रामकोण्ड) की एक गुहा के द्वार पर उत्कीर्ण शिलालेख मे पढा था—घटना भी उनके समय से लगभग दो-डेढ़ सौ वर्प पूर्व की हो थी। उसे विश्वसनीय न मानने का कोई कारण नही है। क्योकि इस घटना का उल्लेख अन्यत्र देखने मे नही आया और शायद वह शिलालेख भी अव प्राप्त नही हैं, विविध तीर्थ कल्प के इस विवरण का महत्त्व पर्याप्त वढ जाता है।

लगभग १००० ई० से लेकर आचार्य के जीवन काल पर्यन्त समय से सम्वंधित जितने तथ्यो, घटनाओ, व्यक्तियो और तिथियो का उल्लेख विविध तीर्थ-कल्प मे हुआ है, वे सव प्राय शुद्ध

---

[1] देखिए हमारी पुस्तक 'दो जैन सोर्सेज आफ दी हिस्टरी आफ एन्शेन्ट इण्डिया' पृ० २०६, तथा ना रा प्रेमी—'जैन साहित्य और इतिहास', पृ० ४४७.

ऐतिहासिक है, सत्यापित है अथवा सरलता से हो सकती है। वे अधिकतर आचार्य की मातृभूमि गुजरात से सम्बद्ध है, तथा जो अन्य प्रदेशो से भी सम्बद्ध है वे भी प्राय प्रमाणिक है, साथ ही उनमे से अनेक पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है—१०२४ ई० मे गजनीपति (महमूद गजनवी) का गुजरात भंग करके साचौर पहुँचना; १०३१ ई० मे आबू पर विश्वविश्रुत विमलवसही का निर्माण; ११२४ ई० मे, फलवर्द्धितीर्थ (न० ६०) के प्रसग मे राजगच्छी शीलभद्रसूरि के पट्टधर धर्मघोपसूरि एव महावादी दिगम्बर गुणचन्द्र का शास्त्रार्थ तथा १२वी शती ई० के अन्त के लगभग शहाबुद्दीन गोरी द्वारा उक्त तीर्थ के भग किये जाने की घटना; ११२८ ई० मे रा खेगार के पराभव के उपरान्त सज्जन मन्त्री द्वारा गिरनार पर नेमि जिनालय का निर्माण और मालव के भावडसाह द्वारा उसका स्वर्णकलश कराना, तथा ११६३ ई० में कुमारपाल के दण्डनायक द्वारा उक्त पर्वत पर सीढियो का निर्माण (न० ५); ११६० ई० मे आबू पर कुमारपाल द्वारा महावीर चैत्यालय का और १२३१ मे वहाँ वस्तुपाल तथा तेजपाल द्वारा लूणिगवसही का निर्माण तथा कालान्तर मे म्लेच्छो (मुसलमानो) द्वारा आबू के दोनो प्रधान मदिरो की तोड-फोड (न० ८), १२०९ ई० में देवाणदसूरि द्वारा पाटन की कोकावसति की प्रतिष्ठापना और कालान्तर मे मालवा के सुलतान द्वारा चालुक्य भीम द्वि० के समय में पाटन का भग किया जाना (न० ४०) इत्यादि। वि० स० ८०२ मे अणहिलपुरपाटन की स्थापना और, उस नगर से तदनन्तर क्रमश राज्य करने वाले चावडा, सोलकी (चौलुक्य) एव वघेले राजाओ की राज्यावलि (न० २६) इतिहाससिद्ध हैं, उसी प्रकार मन्त्रीश्वर वस्तुपाल एव तेजपाल भ्रातृद्वय का यशस्वी चरित्र एवं कार्यकलापो का विवरण भी (न० ४२) सिवाय इसके कि व्यय की गई विभिन्न द्रव्यराशियो

एव निर्माण आदि कार्यों की सख्याएँ अतिशयोक्तिपूर्ण प्रतीत होती हैं।

स्वय जिनप्रभसूरि से तथा उनके और दिल्ली के सुलतान मुहम्मद बिन तुगलुक के सम्पर्क से सम्बन्धित तथ्य कन्यानयनीय महावीरप्रतिमा-कल्प (न० २२) मे प्राप्त होते है और ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। कन्यानयन (कन्नान ?)[१] की उक्त अतिगयपूर्ण महावीर-प्रतिमा की प्रतिष्ठा तथा तदनन्तर उसके साथ घटी घटनाओ मे प्राय कोई अतिशयोक्ति प्रतीत नही होती। इस कल्प मे आचार्य ने स्वय जो कुछ वर्णन किया है उसे प्रामाणिक एव विश्वसनीय स्वीकार करना चाहिए। इल्प के परिशेष (न० ५१) मे विद्यातिलक ने तथा अन्य परवर्ती लेखको ने मूल वर्णन को चमत्कारो आदि की निरन्तर वृद्धि द्वारा पल्लवित किया और उत्तरोत्तर अतिशयोक्तियो से काम लिया प्रतीत होता है, तथापि विद्यातिलक के 'परिवेष' मे कई तथ्य ऐसे है जो आचार्य जिनप्रभ के अपने वर्णन के पूरक हैं।

इस्लाम धर्म का उदय सुदूर अरब की मरुभूमि में पैगम्बर हजरत मोहम्मद द्वारा ७ वी शती ई० के प्रारभ मे हुआ, और एक सौ वर्ष के भीतर ही वह धर्म प्राय पूरे मध्य एशिया पर छा गया तथा पैगम्बर के उत्तराधिकारी खलीफाओ का राज्याधिकार भारतवर्ष के सिन्ध प्रदेश तक विस्तृत हो गया। किन्तु भारत के मध्यदेश पर सीधा आक्रमण करने वाला पहला मुसल्मान गजनी का अमीर महमूद था, जिसने ११वो शती ई० के प्रथम पाद मे लगभग १७ आक्रमण करके एवं पश्चिमी भारत मे भयकर लूट

---

१ इस स्थान की पहचान श्री अगरचद नाहटा ने पूर्वी पजाब मे दादरी के निकटस्थ 'कन्नान' से की है, जो अन्य सब विकल्पों की अपेक्षा अधिक सगत प्रतीत होती है।

मार की और अनेक प्रसिद्ध मदिरो एव देवमूर्त्तियो को भग्न किया। उसके उत्तराधिकारियो के समय मे कुछ छुटपुट हमले मध्यप्रदेश पर हुए, किन्तु उनका राज्यविस्तार प्राय पश्चिमी पजाब तक ही सीमित रहा।[1]

१२वी शती ई० के अन्तिम दशक मे गजनी के सुलतान शिहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी ने भारतविजय के उद्देश्य से मध्यप्रदेश पर आक्रमण किये और अन्तत दिल्ली-अजमेर के चौहान नरेश पृथ्वीराज को तथा कन्नौज के गाहडवाल राजा जयचन्द को समाप्त करके तथा मोहवा के परमाल चन्देल और गुजरात आदि के कई अन्य राजाओ को पराजित करके वह दिल्ली को केन्द्र बनाकर उत्तरभारत में मुसलिम राज्य की स्थापना करने मे सफल हुआ। अनुश्रुति है कि इस सुलतान ने अपनी मलिका के आग्रह पर एक दिगम्बर जैन मुनि को अपने दर्बार मे बुलाकर सम्मानित किया था। कुछ के अनुसार यह घटना अजमेर मे घटी थी और वह साधु भट्टारक वसन्तकीर्त्ति थे, जिन्हे उस अवसर पर खण्ड-वस्त्र धारण करना पडा था—कहते हैं कि तभी से वस्त्रधारी दिगम्बर भट्टारको की प्रथा प्रचलित हुई।[2]

वस्तुत, विदेशी, विजातीय, विधर्मी एव अजनवी मुसल्मानो और उनके धर्म एव सस्कृति के प्रविष्ट होने तथा उनकी राज्य-सत्ता के देश के हृत्स्थल मे स्थापित हो जाने के अनेक तत्काल एव चिरव्यापी क्रान्तिकारी परिणाम हुए, जिनने देश की राज-नीति और अर्थव्यवस्था को ही नही, उसकी सस्कृति, धर्मो और

---

१ देखिए—भारतीय इतिहास एक दृष्टि (द्वि० स०, १९६६ ई०), पृ० ३९३–४००।

२ वही, पृ० ४००–४०४, तथा 'प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरुष और महिलाए' (१९७५), पृ० २३८–२३९।

समाजव्यवस्था को भी अत्यन्त प्रभावित एवं प्रवर्तित किया। धन, भोग और राज्य की लिप्सा ही उन नवागतो मे सर्वोपरि थी, और उसकी पूर्त्ति के लिए—अपनी सत्ता एवं सख्या के सरक्षण और विस्तार के लिए वे बहुधा धर्म और धर्मोन्माद को प्रवल अस्त्र वनाते थे, जिसके कुफल देशज जनता को भोगने पडते थे। तथापि, अत्यधिक बहुसख्यक भारतीयो पर निरन्तर क्रूर अत्याचार करते रहना और उनके धर्म, सस्कृति एवं रीति-रिवाजो की सर्वथा अवहेलना करना, स्वयं मुट्ठी भर मुसल्मान सत्ताधारियो के हित मे नही था, व्यावहारिक और उतना सरल भी नही था। मुल्ला-मौलवियो की सदैव यह चेष्टा रहती थी कि राज्यशासन पूर्णतया मजहबी-मुसल्मानी हो जाय, जो केवल इसलाम और मुसल्मानो के ही लाभ के लिए हो और जिसमे काफिरो (अन्य धर्मियो) के प्रति किसी प्रकार की भी उदारता एव सहिष्णुता न बरती जाय, तथा सुलतान जो कुछ भी करे, 'शरह' के अनुसार अर्थात् उक्त धर्माधिकारियो के आदेश-निर्देश के अनुसार ही करे। किन्तु, शासको मे जो महत्त्वाकाक्षी, नीति-चतुर और व्यावहारिक हुए उन्होने मुल्ला-मौलवियो की उक्त चेष्टाओ का सदैव प्रतिरोध किया और उन्हे सीमित रखने का यथाशक्य प्रयत्न किया।

मुहम्मदगोरी के पश्चात् उसके कुतुवुद्दीन ऐवक आदि गुलाम-वशी सुल्तानो ने १२०६ से १२९० ई० तक दिल्ली मे शासन किया। तदनन्तर जलालुद्दीन खिलजी ने नये वश की स्थापना की पूर्ववर्ती सुलतानो की अपेक्षा वह अधिक नरम प्रकृति का, उदार और सहिष्णु था। मुल्ला-मौलवियो की धार्मिक नीति पर चलने से उसने साफ इन्कार कर दिया था और कह दिया था कि "इतिहास मे हिन्दू लोग वरावर ही खुले आम मूर्त्तिपूजा करते आये हैं और अपने धर्म-कर्म स्वतन्त्रतापूर्वक करते रहे है। स्वय

मेरे महल के नीचे, यमुना तट पर नित्य भजन कीर्त्तन होते हैं और शख-घडियाल बजते हैं—मै सुनता हू और देखता हूँ। अतएव उनकी इन धार्मिक प्रवृत्तियो पर प्रतिवन्ध लगाना अव्यावहारिक है।"[1] उसने तो सिदिमौला नामक एक मुल्ला को उसकी धृष्टता से कुपित होकर मरवा भी डाला था।

उसका उत्तराधिकारी अलाउद्दीन खलजी (१२९६-१३१६ ई०) वडा महत्त्वाकाक्षी, भारी विजेता, प्रतापी और कठोर शासक था। उसके समय मे प्राय सम्पूर्ण भारत दिल्ली-सल्तनत के प्रभाव क्षेत्र मे आ गया था। मुल्ला-मौलवियो के विरोध के बावजूद वह राज्यकार्य मे स्वेच्छाचारी और मुसल्मानेत्तरो के प्रति अधिक व्यावहारिक एव सहिष्णु रहा। विद्वानो का भी वह आदर करता था। भारतभक्त एव समन्वयवादी सुप्रसिद्ध अमीर खुसरो उसका राजकवि था, राघव और चेतन नाम के दो ब्राह्मण पडित उसके दरबारी थे, माधव नामक हिन्दू उसका एक मन्त्री था, जैन वैज्ञानिक ठक्कर फेरु राज्यसेवा मे नियुक्त था, दिल्ली का नगर सेठ पूर्णचन्द्र नामक एक अग्रवाल जैन सुलतान का कृपापात्र था। जिनप्रभसूरि के कथनानुसार माधव मन्त्री की प्रेरणा पर ही सुलतान ने अपने भाई उलुगखाँ को गुजरात-विजय करने भेजा था। गुजरात के प्राथमिक आक्रमण मे भडौच मे स्वय सुलतान का जैन मुनि श्रुतवीर से साक्षात्कार हुआ वताया जाता है। सेठ पूर्णचन्द्र से कहकर उसने दिगम्बराचार्य माधवसेन को दिल्ली वुलवाया था, राघव एवं चेतन के साथ दर्बार मे शास्त्रार्थ कराया था और उन्हे सम्मानित किया था—इन्ही आचार्य ने दिल्ली मे काष्ठासघ की गद्दी स्थापित की थी और सुलतान से कई फरमान

---

१ आगा मेहदी हुसैन—राइज एण्ड फाल आफ मुहम्मद विन तुगलक (लन्दन, १९३८) प्रीफेस, पृ० १२।

प्राप्त किये बताये जाते है। कहा जाता है कि श्वेताम्बराचार्य रामचन्द्रसूरि और जिनचन्द्रसूरि को भी उसने सम्मानित किया था। सुलतान का फरमान एव सहायता प्राप्त करके सेठ पूर्णचन्द्र गिरनार तीर्थ की यात्रा के लिए एक बडा सघ लेकर गया था। उसी समय पेथडशाह के नेतृत्व मे वहाँ गुजरात का भी एक बडा संघ आया था, और दोनो सघो ने सद्भावपूर्वक साथ-साथ तीर्थ वन्दना की थी। गुजरात के सूबेदार अलपखाँ ने भी पाटन के सेठ समराशाह को शत्रुजय तीर्थ का उद्धार करने और यात्रासघ ले जाने के लिए सैनिक सहायता सहर्ष प्रदान की थी। अलाउद्दीन के उत्तराधिकारी मुबारकशाह खलजी (१३१६-१३२० ई०) ने सेठ समराशाह को दिल्ली बुलाकर एक उच्च पद पर नियुक्त किया बताया जाता है। तुगलुक वश का सस्थापक गयासुद्दीन तुगलुक-शाह (१३२१-१३२५ ई०), जिसको माँ एक हिन्दू जाटनी थी और जो भारत मे ही जन्मा था, स्वभावत क्रूर और धर्मान्ध नही था। सेठ समराशाह को वह पुत्रवत् मानता था और उसे उसने एक उच्च पद देकर तेलगाना भेजा था। सोमचरित्रगणिकृत 'गुरुगुणरत्नाकर' (१४८५ ई०) के अनुसार सूर और वीर (या नानक) नाम के प्राग्वाटजातीय दो जैन भ्राता भी इस सुलतान के प्रतिष्ठित सरदार थे। दिल्लीनिवासी सेठ रथपति ने शाही फरमान प्राप्त करके १३२३ ई० मे ससघ तीर्थ यात्रा की थी जिसमे पाँच मास का समय लगा था। इन तथ्यो से स्पष्ट है कि विजयार्थ या विद्रोहदमनार्थ किये गये युद्धो के अवसरो को छोडकर इस काल मे भारतीयो को सामान्यतया स्वधर्मपालन की सीमित स्वतन्त्रता प्राप्त थी और उन्हे यदा-कदा शासनकार्य मे उच्च पद भी दिये जाने लगे थे।

गयासुद्दीन का पुत्र एव उत्तराधिकारी उलुगखाँ उर्फ जूनाखाँ था जिसने मुहम्मद बिन तुगलुक नाम से १३२५ से १३५१ ई०

पर्यन्त शासन किया। दिल्ली के सुलतानो मे उसका राज्य सर्वाधिक विस्तृत एव शक्तिशाली था और पूर्व मुगलकालीन भारत का वह सभवतया सर्वमहान मुसल्मान नरेश था। उसका व्यक्तित्व अनेक विरोधी तत्त्वो का मिश्रण, अतिविचित्र एव विवादास्पद रहा है। जहाँ वह सुशिक्षित, वहुभाषाविज्ञ, दर्शन, न्याय, तर्क, चिकित्सा शास्त्र आदि विविध विद्याओ और ज्ञान-विज्ञानो मे पारंगत विद्यारसिक स्वतन्त्र विचारक, साधु-सन्तो और विद्वानो का समादर करने वाला, परमतसहिष्णु, उदार, दानशील, न्यायप्रिय, आविष्कारवुद्धि-सम्पन्न, सदाचारी और वीर योद्धा था, वहाँ साथ-ही-साथ वहुत क्रोधी, उतावला, अधीर, अदूरदर्शी अव्यावहारिक, निरकुश, क्रूर, निर्दयी और कुछ सनकी भी था। स्वय अपने पिता की मृत्यु मे उसका हाथ रहा माना जाता है, और उसी के सचित धन से उसने विरोधी सरदारो का मुह वन्द किया। अपराधियो, विशेषकर विद्रोहियो को वह अत्यन्त कठोर एव अमानुषिक दण्ड देता था, और इस विपय मे पद, वर्ग या सम्वन्ध का भी लिहाज नही करता था। अपने सगे भानजा, कई उच्च पदाधिकारियो और एक काजी को भी उसने खुले आम मृत्यु-दण्ड दिया था। उसके सनकी स्वभाव और राजधानी का परिवर्तन, तावे के सिक्के चलाना, चीन का आक्रमण प्रभृति विचित्र योजनाओ एव अभियानो के कारण उसके मरते ही सल्तनत का द्रुत वेग से पतन होने लगा और एक-एक करके प्राय सभी प्रान्तीय सूवेदार स्वतन्त्र हो गये।

इस सुलतान की विफलता एक सवसे वडा कारण मुल्ला-मौलवियो का क्षोभ एव विरोध था, जो उससे डरते भी थे, चिढते भी थे और उसके विरुद्ध विद्रोहो को उभारते रहते थे। मध्यकालीन मुसल्मानी तवारीखे (इतिहास-ग्रन्थ) भी अधिकाशत मुल्ला-मौलवियो द्वारा ही लिखी गयी, और उनमे उन्होने

उसकी भरसक निन्दा भर्त्सना ही की है तथा उसके विद्याप्रेम, भारतीय धर्मों (हिन्दू, जैन आदि) के साधु-सतो, जोगियो (योगियो विद्वानो के साथ सत्संग, उदारता, सहिष्णुता, स्वतन्त्र विचार-शीलता आदि सद्गुणो को भयकर दुर्गुणो के रूप मे चित्रित किया है। उनसे यह तो स्पष्ट हो जाता है कि इस सुलतान ने अस्पताल और दानशालाएं खोली, विद्वानो को मुक्त हस्त से वह धन देता था, सूफी फकीर शेख रुकनुद्दीन का भक्त था, अरस्तु के दर्शन का मर्मज्ञ था जोगियो और पडितो का सत्सग करता था, दरवार मे वुलाकर उनके भाषण और वादविवाद चाव से सुनता था, स्वय भी उनसे वादविवाद करता था, उनका सम्मान करता था, संस्कृत का अभ्यास करता था और काफिरो को राज्यकार्य मे भी नियुक्त करता था, किन्तु उक्त साधु-सन्तो एव विद्वानो मे से प्राय किसी का भी कही नामोल्लेख नही किया, उनके धर्म, आम्नाय, जाति, वर्ग आदि का भी नामोल्लेख नही किया उनके स्वयं के या उनके धर्म, तीर्थो, सार्धमियो आदि के हित मे सुलतान द्वारा किये गये कार्यों का भी कोई उल्लेख नही किया।

मुहम्मद विन तुगलुक के स्वय के जीवन-काल मे रचित है अमीर खुसरो का तुगलकनामा, किरमानी का सियार-उल-औलिया, छाछी के गीत, कमाल करीम नागौरी का मजमुअ-ए-खानी, अहमद हसन दवीर का वसातीन-उल-उन्स, अब्बास दमिश्की का मसालिक-उल-अबसार, इसामी की फुतूह-उस्सलातीन, इब्न वतूता की 'रिहला' तथा स्वय सुलतान का आत्मचरित्र जिसके केवल चार पृष्ठ ही सयोग से वच रहे, शेष नष्ट हो गया। यात्री इब्न वतूता, जो भारत मे १३३३ से १३४९ ई० तक रहा, को छोडकर अन्य किसी उपरोक्त रचना मे इस सुलतान के राज्य-

काल, चरित्र आदि पर विशेष प्रकाश नही पडता और यह लेखक भी सुलतान से चिढा हुआ था। इसामी ने बहुत कुछ लिखा है, किन्तु वह शत्रुपक्ष का लेखक था। सुलतान के आत्मचरित्र का जो अत्यल्प अश उपलब्ध है उसमे सर्वाधिक उल्लेखनीय उसका यह उद्‌गार है कि 'इससे तो अच्छा था कि मै एक मूर्त्तिपूजक होता!' जो स्पष्ट ही उसने अपने सार्धमियो (मुसल्मानो) की धर्मान्धता से चिढकर किया था। उसके उत्तराधिकारी फीरोज तुगलुक (१३५१–८८ ई०) के समय मे लिखी गई फुतुहाते-फीरोजशाही, सीराते फीरोजशाही, मुनशाते माहरू, वर्नी की तारीखे फीरोजशाही एव फतवाए जहाँदारी और अफीफ की तारीखे फीरोजशाही मे मुहम्मद तुगलक के राज्यकाल का पूरा विवरण है, किन्तु ये लेखक उसके कट्टर विरोधी थे और उसके प्रति उन्होने उन्मुक्त विषवमन किया है। उत्तरवर्ती तवारीखो के आधार भी प्राय ये ही ग्रथ रहे हैं।

उक्त मध्यकालीन तवारीखो के अनेक अत्युक्तिपूर्ण, असंगत, अर्धसत्य एव परस्परविरोधी कथनो को लेकर आधुनिक इतिहास-कारो के लिए इस सुलतान का व्यक्तित्व, चरित्र और उसके राज्यकाल की घटनाएँ विवादास्पद बन गई हैं। डा० आगा मेहदी हुसैन की दोनो पुस्तको—'राइज़ एण्ड फाल आफ मुहम्मद बिन तुगलुक' (लन्दन, १९३८) तथा 'दी तुगलुक डायनेस्टी' (कलकत्ता १९६३)—का तो प्रधान नायक ही यह सुलतान है, और विद्वान लेखक ने उसके विरोधी पक्ष के लेखको के कथनो एव निष्कर्षो का खण्डन करने का यथाशक्य प्रयत्न किया है। बल्कि उससे भी आगे बढकर उन्होने उसे एक अत्यन्त उदार, सर्वधर्मसहिष्णु, महान विद्याप्रेमी एव परम नीतिपरायण आदर्श सुल्तान सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। किन्तु अपनी युक्तियो एव तर्को के अतिरिक्त जो कुछ बाह्य समर्थन उन्हे प्राप्त हो सका

है वह (प्रथम पुस्तक मे तो) मात्र दो सस्कृत शिलालेखो का है जो दो वैश्यो ने दिल्ली नगर से नातिदूर अपने ग्रामो मे कुँए खुदवाकर उनपर अकित करा दिए थे। दूसरी पुस्तक मे १३२५ ई० मे सयूरगान को दिया फर्मान तथा विविधतीर्थ-कल्प का भी उल्लेख है और उसके ही आधार पर सुलतान द्वारा जिनप्रभसूरि का सम्मान करने एव फरमान देने का उल्लेख है। किन्तु इसके समर्थन मे तत्कालीन तवारीखो आदि का वह कोई सदर्भ दे नही सके—क्योकि ऐसा कोई सकेत वहाँ सभवतया है ही नही। शायद भाषा की अनभिज्ञता के कारण विविधतीर्थ-कल्प का भी आगा साहब समुचित उपयोग नही कर पाये। कही उनकी दृष्टि मे आचार्य के स्वय तथा उनके प्रशिष्य विद्यातिलक सूरि के ये कथन आ जाते कि "श्री महम्मदशाह द्वारा की गई शासनोन्नति देखकर इस पचम काल मे भी लोग चौथे काल की कल्पना करते है, तथा 'पचम काल मे चौथे आरे जैसी प्रवृत्ति हो रही थी", तो न जाने वह इस सुलतान की प्रशसा मे कितना कुछ और लिख डालते। इसके अतिरिक्त अन्य जैन स्रोत, यथा धनपालकृत बाहुबलि चरित्र, तत्कालीन ग्रंथप्रशस्तियाँ, पट्टावलियाँ, गुर्वावलियाँ, विविधतीर्थ-कल्प की परम्परा का उत्तरवर्ती साहित्य—भी आगा साहब के दृष्टिगोचर नही हुए। चाहे वे वैष्णव शिलालेख हो, या ये जैन स्रोत, अथवा प्रोफेसर आगा जैसे पक्षसाधक आधुनिक विद्वान, सभी अतिशयोक्तियो से ग्रस्त है। सतुलित दृष्टि तो वैसी अतिशयोक्तियो मे से तथ्याश खोजने का प्रयत्न करती है।

इस सब विवेचन से एक और तथ्य उजागर होता है, जिस पर हम बराबर बल देते रहे है, कि मध्यकालीन या मुसलिम शासन-कालीन भारत का इतिहास मात्र वही नही है जो मुसल्मानी तवारीखो मे निबद्ध है—उसके अतिरिक्त भी वह बहुत कुछ है, जो जैन और हिन्दू साधन-स्रोतो से प्राप्त होता है। इसमे सन्देह

नहीं है कि मध्यकालीन इतिहास के भी जैन साधन-स्रोत उसकी महत्त्वपूर्ण पूरक सामग्री प्रदान करते हैं और उस काल के इतिहास-लेखन मे उनका समुचित उपयोग किया जाना चाहिये।

जहाँ तक सुलतान मुहम्मद बिन तुगलुक का सम्बन्ध है, जैन स्रोतो से विदित है कि अपने शासन के प्रथम वर्ष (१३२५ ई०) मे ही इस सुलतान ने अपने राज्य के जैनियो (सयूरगान = सराओगान, श्रावको)[1] के हितार्थ एक शाही फर्मान जारी किया था जिसमे इन 'सयुरगान' की प्रशसा करते हुए उन्हे राज्य सम्मान, प्रश्रय एव भेट पुरस्कार आदि देने का आश्वासन दिया था तथा प्रशासकीय विभागो को आदेश दिये गये थे कि उन्हे इस सम्बन्ध मे क्या करना है। राजधानी दिल्ली और गुजरात, धार, नागौर आदि प्रदेशो के खानो एव अमीर-सदह को भी तत्सम्बन्धी सूचनाएँ भेजी गई थी। पाटन के सेठ समराशाह को सुलतान भाई जैसा मानता था और उसने उसे तेलिंगाने का शासक भी नियुक्त किया बताया जाता है। अपने कृपापात्र ज्योतिषी धराधर, जो सभवतया जैन था, की प्रेरणा से सुलतान ने १३२८ ई० मे आचार्य जिनप्रभसूरि को दरबार मे आमन्त्रित किया, उनका प्रभूत सम्मान किया, यथासभव उनका सत्सग किया, अन्य धर्मो के विद्वानो के साथ उनके शास्त्रार्थ भी कराये, आचार्य के अनुरोध पर उसने उन्हे कन्नान की सातिशय महावीर-प्रतिमा को, जो कुछ काल तक तुगलकाबाद के शाही खजाने मे रखी रही थी, उन्हे दे दिया। आचार्य के नेतृत्व मे श्रावको ने

१ देखिए हमारा लेख—'तुगलुक कालीन सयुरगान', जैनसदेश-शोधाङ्क-१९ (९ जौलाई १९६४), पृ० ३२४-३२५, तथा डा० आगा मे० हु०-'तुगलुक डायनेस्टी' (कलकत्ता, १९६३) पृ० ३६३-३६४।

प्रतिमा को महोत्सवपूर्वक उपयुक्त देवालय मे विराजमान किया। सुलतान के प्रश्रय मे सुलतान सराय को 'भट्टारक सराय' नाम दिया गया, एक पोषधशाला भी वहाँ स्थापित की गई और जैनीजन वहाँ बसाये गये। अपने तीर्थो के संरक्षण आदि के लिए आचार्य ने सुलतान से कई फर्मान प्राप्त किये, हस्तिनापुर, मथुरा आदि अनेक तीर्थो की संघसहित यात्रा की तथा अनेक धर्मोत्सव किये। सुलतान जब दौलताबाद चला गया तो वहाँ भी उसने आचार्य को बुला लिया और लगभग तीन वर्ष वह उक्त दक्षिण देश मे रहे। दिल्ली आने पर सुलतान ने उन्हे पुन दिल्ली बुलवाया और १३३२ ई० मे वहाँ वह फिर से पधारे, विविध तीर्थकल्प पूरा किया और थोड़े समय उपरान्त वही दिवंगत हुए प्रतीत होते हैं। उनकी अनुपस्थिति में तथा उनके स्वर्गवास के पश्चात भी उनके पट्टधर जिनदेवसूरि दिल्ली मे रहते हुए सुलतान के कृपाभाजन बने रहे और धर्मोद्योत करते रहे। सुलतान की माँ मखदूमेजहाँ बेगम भी जैन गुरुओ का आदर करती थी। जिनप्रभ सूरि सम्बन्धी यह सब विवरण कल्प न० २२ एव ५१ मे विस्तार के साथ दिया हुआ है। यति महेन्द्रसूरि का भी सुलतान ने सम्मान किया बताया जाता है। राजधानी तुगलकाबाद के शाही किले के परिकर मे ही 'दरबार चैत्यालय' नामका एक जिनालय विद्यमान था, जिसमे १३४२ ई० मे उसके निकट ही रहने वाले पाटन निवासी अग्रवाल जैन साहू सागिया के वशजो ने एक महान पूजोत्सव किया था। इन लोगो के गुरु काष्ठासघी माधवसेन के प्रशिष्य और नयसेन के पट्टधर भट्टारक दुर्लभसेन थे। सुलतान भी उनका आदर करता था। इस अवसर पर अनेक ग्रन्थो की प्रतिलिपियाँ भी पडित गन्धर्व के पुत्र बाहडदेव से करायी गई थी।[1]

---

१ प्रशस्तिसग्रह (जयपुर १९५०) पृ० ९७; लिपिक बाहड ने उत्तरपुराण की अपनी १३३४ ई० की प्रशस्ति में भी सुलतान का नामोल्लेख किया है, वही, पृ० ९२।

"अट्ठावय-उज्जिते, गयग्गप ए य धम्मचक्के य ।
पासरहावत्तनग, चमरुप्पाय च वदामि ॥"

गजाग्रपदे दशार्णकूटवर्तिनी तथा तक्षशिलाया धर्मचक्रे तथा अहिच्छत्राया पार्श्वनाथस्य धरणेन्द्र महिमास्थाने"।

आचाराग निर्युक्ति श्रुतकेवली भद्रबाहुस्वामी रचित होने से २३५० वर्ष प्राचीन है। निशीथ चूर्णि मे भी तत्कालीन प्रसिद्ध जैनतीर्थों के नामोल्लेख करते हुए लिखा है—

"उत्तरावहे धम्मचक्क मथुराए देवनिम्मिओ थूभो ।
कोसलाए जियत सामि पडिमा तित्थकराण वा जम्मभूमिओ ॥"

प्राचीन जैन तीर्थो के सम्बन्ध मे डॉ० जगदीशचद्र जैन की पुस्तक पठनीय है। जैन तीर्थो सम्बन्धी स्वतन्त्र साहित्य का निर्माण भी बहुत लम्बे समय से होता रहा है। शुभशील रचित शत्रुञ्जय कल्पवृत्ति के उल्लेखानुसार भगवान् महावीर के शिष्य सुधर्मा स्वामी ने तीर्थ माहात्म्य विस्तार से लिखा था जिसका सक्षेप भद्रबाहु स्वामी ने किया इसके बाद वज्रस्वामी, पादलिप्त सूरि, धनेश्वर सूरि और धमघोष सूरि आदि ने शत्रुजय कल्प लिखे।

सुधर्मस्वामिना यस्य माहात्म्य ग्रन्थकोटिभि ।
वर्णित तच्च सक्षिप्त वर्ण्येत तत्कथ मन्दबुद्धिभि ॥१०॥
तच्च वज्रर्षिणा भव्योपकाराय लघूकृतम् ।
तत श्रीपादलिप्तेन सूरिणापि हितेच्छुना ॥११॥
ततो धनेश्वरसूरीश्वर साक्षिप्तवांस्तदा ।
ततोऽन्येऽपि गुरुत्तसा सञ्चिक्षिपुश्च तत्पुन ॥१२॥
ततस्तपागणाधीशो धर्मघोषगुरुत्तम ।
श्री शत्रुञ्जयकल्प तु चकाराम् तमोऽपहम् ॥१३॥

शत्रुञ्जय कल्प की गाथा से भी इस बात की पुष्टि होती है, यत

इय भद्दबाहु रइआ, कप्पा सत्तुञ्ज तित्थ माहप्प ।
श्री वयर पहुद्धरिय, ज पालित्तेण सखविअ ॥३८॥

वस्तुत तीर्थकल्प के कर्त्ता श्रीजिनप्रभसूरिजी ने भी अपने कई कल्पो मे यह उल्लेख किया है कि भद्रवाहु, वज्रस्वामी और संघदास आदि प्राचीन आचार्यो के वनाये हुए कल्पो के आधार से उन्होने कल्पों का निर्माण किया है।

१ शत्रुञ्जयकल्प मे इस प्रकार उल्लेख है —

कल्पप्राभृतत पूर्वं कृतः श्रीभद्रवाहुना।
श्री वज्रेण ततः पादलिप्ताचार्यैस्तत परम् ॥१२२॥

२ सिरिवइरसीस भणिअ जहा य पालित्तएण च ॥१॥

३ सिरि संघदास मुणिणा लहुकप्पो निम्मिओ अ पडिमाए
गुरुकप्पाओ अ मया सवध लवे समुद्धरिओ ॥६९॥

खेद है कि उपरोक्त पूर्वाचार्यो द्वारा निर्मित प्राचीन कल्पादि लुप्त हो गए। यहाँ केवल ऐसी रचनाओ की प्राचीन परम्परा वतलाने के लिए उपर्युक्त उद्धरण दिए गए हैं।

श्रीजिनप्रभसूरिजो ने जितने अधिक तीर्थो के कल्प-स्तवनादि रचे और उनका सग्रह कर के प्रस्तुत कल्पप्रदीप या विविध तीर्थ-कल्प ग्रन्थ तैयार कर दिया है वह विश्वसाहित्य मे अजोड है। प्राकृत भाषा मे एक अपूर्ण तित्थकप्प की प्रति खभात के भण्डार (विनयनेमिसूरि) मे उपलब्ध है पर वह कव किसने रचा, ज्ञात नही। रचना भी पुनरावृत्तियुक्त अस्तव्यस्त व विस्तृत है फिर भी उसका सार प्रस्तुत ग्रन्थ के परिशिष्ट मे दिया जा रहा है। इसी तरह की एक सस्कृत रचना सोमधर्म की उपदेश सप्तति प्राप्त है जिसमे एक प्रकरण तीर्थो सम्बन्धी है जिसका सार परिशिष्ट न० १ मे दिया है। परिशिष्ट न० २ मे तीर्थयात्रा का एक विवरण जो जैन श्वे० पचायती मन्दिर मे कपडे पर लिखा मिला हैं जो अपनी दृष्टि मे महत्त्वपूर्ण होने से दे दिया।

वैसे तीर्थो के कुछ कल्प प्राचीन गूर्जर काव्य सग्रह आदि

ग्रन्थो मे भी छप चुके है। जैन तीर्थों सम्बन्धी सामग्री इतना अधिक प्राप्त है जिनमे से कुछ तीर्थयात्राएँ आदि प्राचीन तीर्थ-माला सग्रह मे प्रकाशित है पर अप्रकाशित सामग्री इतनी अधिक उपलब्ध है कि जिसके अनेक खण्ड तैयार हो सकते है। गत पचास वर्षो मे हमने भी अनेक स्थानो से ऐसी प्रकाशित सामग्री का सग्रह करना चालू रखा है जिसके फलस्वरूप बहुत बडी सामग्री एकत्र हो चुकी है इनमे से कुछ तीर्थमालाएँ आदि कई पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित करते रहे हैं। कुछ सामग्री एल० डी० भारतीय सस्कृति विद्यामदिर, अहमदाबाद से एक सग्रह के रूप मे प्रकाशनार्थ प्रेषित है।

तीर्थो सम्बन्धी साहित्य का प्रकाशन

दिगम्बर और श्वेताम्बर उभय सम्प्रदायो के सैकडो तीर्थ भारत के कोने कोने मे विद्यमान है। प्राचीन काल से उन तीर्थों की यात्रा साधु-साध्वी एवं चतुर्विध सघ तथा श्रावक सघ करते आ रहे हैं। ऐसे बहुत से यात्री सघो का विवरण समय समय पर लिखा जाता रहा है। यो तीर्थों के माहात्म्य और ऐतिहासिक वृत्तान्त काफी लिखे गए। ऐसे साहित्य का प्रकाशन बहुत वर्ष पूर्व कुछ हुआ था पर इधर मे प्राचीन सामग्री विशेष प्रकाश मे नही आ रही है।

आवागमन की सुविधा पूर्वापेक्षा बहुत अधिक बढ चुकी है अत यात्री सघ खूब निकलने लगे पर स्थिरता के अभाव मे जैसा चाहिए लाभ नही उठाया जा रहा है। तीर्थों की यात्रा के लिए व प्राचीन इतिहास जानने के लिए लोगो की बहुत उत्सुकता है पर जिस ढग का और जितने परिमाण मे साहित्य प्रकाशन व प्रचार होना चाहिए, नही हो रहा है। तीर्थों सम्बन्धी प्रकाशित साहित्य की एक सूची लगभग ३० वर्ष पूर्व प्रेमी अभिनदन ग्रन्थ मे हमने

प्रकाशित की थी। उसके बाद भी बहुत से महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, भावनगर से प्रकाशित और मुनि जयन्तविजय जी व विशालविजय जी लिखित साहित्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। आनद जी कल्याण जी की पेढी श्वे० तीर्थ-मदिरो की सबसे बडी व्यवस्थापिका है उसकी ओर से जैन तीर्थ सर्व सग्रह नाम ग्रथ की ३ जिल्दे स० २०१० मे गुजराती मे प्रकाशित हुई जिनमे भारत भर के जैनमन्दिरादि की सूची व मुख्य तीर्थ स्थानो का इतिहास सब तीर्थों के नकशे के साथ दिया गया है। इत पूर्व स० २००५ मे मुनि श्री न्यायविजय जी (त्रिपुटी) ने जैन तीर्थां नो इतिहास नामक ग्रन्थ प्रकाशित करवाया था। ये दोनो ग्रन्थ श्वेताम्बर तीर्थों की जानकारी के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है पर गुजराती मे हैं। हिन्दी मे जैन तीर्थों का एक बडा सचित्र ग्रन्थ मद्रास के जैन सघ द्वारा शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहा है।

दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी, बम्बई द्वारा भगवान् महावीर के २५०० निर्वाण शताब्दी के समय भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ ग्रन्थ प्रकाशन की योजना बनी थी। इस ग्रन्थ का पहला भाग सन् १९७४ मे, दूसरा सन् १९७५ और तीसरा सन् १९७६ मे प्रकाशित हो चुका है। चौथा भाग शीघ्र ही प्रकाशित हो रहा है और पाचवा तैयारी मे है। यो तो श्वेताम्बरो की अपेक्षा दिगम्बर तीर्थों सबधी साहित्य बहुत कम प्रकाशित हुआ है पर इन पाचो भागो से अवश्य ही एक अभाव को पूर्ति होगी। प० बलभद्र जैन ने वर्षों के परिश्रम से यह ग्रन्थ तैयार किया है एव सचित्र व सुन्दर रूप मे छपा है। आनद जी कल्याण जी की पेढी को भी २५०० वें निर्वाण महोत्सव के प्रसग पर हमने प्रेरणा दी थी कि श्वे० तीर्थों के सचित्र इतिहास भी हिन्दी मे इसी तरह के प्रकाशित किये जाए पर खेद

है कि उन्होने इसके महत्त्व और आवश्यकना-उपयोगिता पर ध्यान नही दिया।

कलकत्ता के श्री महेन्द्र सिंघी ने हिन्दी मे पूर्वांचल के जैन तीर्थो के सचित्र इतिहास प्रकागित करने का प्रयत्न किया है। कुगल निर्देगन मे हमने भी तीर्थकल्प के कुछ कल्पो का अनुवाद व कुछ तीर्थो का इतिहास प्रकागित किया है। जैन भवन कलकत्ता ने जैन जर्नल के विशेषाक रूप मे गत्रुजय तीर्थ सम्बन्धी शताब्दी पूर्व प्रकागित अग्रेजी सचित्र ग्रन्थ प्रकागित किया है जो विशेष उल्लेखनीय है। यद्यपि पेढी ने भी स्वतत्र प्रकागन इस ग्रथ का किया है पर उसका मूल्य अधिक है। प्रत्येक तीर्थ को व्यवस्थापक समिति को अपने अपने तीर्थो का खोज पूर्ण सचित्र इतिहास हिन्दी-गुजराती और अग्रेजी तीनो भाषाओ मे प्रकागित-प्रचारित करना चाहिए। दक्षिण भारत के जैन तीर्थो के इतिहास कन्नड-तामिल तेलगु आदि भापाओ मे प्रकाशित करना चाहिए।

प्रस्तुत तीर्थकल्प का महत्त्व

चौदहवी गताब्दी के महान् विद्वान् और शासन प्रभावक आचार्य श्री जिनप्रभसूरि भारत के अनेक प्रान्तो मे विचरण करते रहे हैं। पद्मावती देवी इनके गुरुजी और इनके प्रत्यक्ष थी अत केवल विद्वत्ता ही नही, अनेक चमत्कार पूर्ण कार्यो से इन्होने जैन गासन की महान् सेवा की है। तत्कालीन मुस्लिम सम्राट् कुतुवुद्दीन और मुहम्मद तुगलक को रजित एव चमत्कृत करके जैन शासन के प्रनि आकृष्ट किया था। वहुत से तीर्थो की रक्षा कराने के साथ-साथ कन्नाणा की महावीर प्रतिमा को शाही कैदखाने से मुक्ति दिलाकर नव्य जिनालय मे प्रतिष्ठित किया था जिसका निर्माण सुलतान सराय और भट्टारक सराय नाम से वादशाह ने ही कराया था। वादशाह ने इनके रहने के लिए तथा श्रावको के

आवास के हेतु नई वस्ती प्रदान की थी। इन सब सुकृतो का उल्लेख प्रस्तुत तीर्थकल्प के "कन्यानयनीय महावीर कल्प और कल्प परिशेष मे विस्तार से आया है जो समकालीन और विश्वसनीय है। सूरिजी की जीवनी और उनकी साहित्य सेवा के सम्बन्ध मे विस्तृत जानने के लिए हमारे प्रकाशित व महो० विनयसागर जी लिखित "शासन प्रभावक जिनप्रभसूरि" ग्रथ द्रष्टव्य है।

आचार्य श्री ने अपने विचरण काल मे अनेक तीर्थो की यात्राएँ की थी उनमे से शत्रुञ्जय, गिरनार, स्तभ तीर्थ आदि कई तीर्थो के तो प्राचीन कल्प उपलब्ध थे, उनके आधार से तथा अपने सुने हुए देखे हुए वृत्तान्तो के आधार से बहुत से तीर्थकल्पो की रचनाएँ की थी इनमे से सवतोल्लेख वाले व आनुमानिक निर्णीत सवतो वाले कल्पो की नामावली यहाँ दी जा रही है—

१ वैभारगिरि कल्प स० १३६४।
२ चम्पापुरी कल्प स० १३६० की घटना का उल्लेख।
३ सत्यपुर तीर्थ कल्प स० १३६७ की घटना का उल्लेख।
४ अर्बुदगिरि कल्प स० १३७८ (शक स० १२४३) मे लल्ल और पीथड के उद्धारका उल्लेख।
५ शत्रुजय तीर्थ कल्प स० १३८५ ज्येष्ठ सुदि ७।
६ ढिंपुरी स्तव स० १३८६ (शक स० १२५१)।
७ अपापा बृहत्कल्प सं० १३८७ भाद्रपद शु० १२ पुष्यार्क देवगिरि नगरे।
८ कन्यानयनीय महावीर प्रतिमा कल्प सं० १३८५ का उल्लेख।
९ हस्तिनापुर तीर्थ स्तव स० १३८८ (शक स० १२५३) वै० सु० ६।
१० महावीर गणधर कल्प स० १३८९ ज्ये० सु० ५।

११ ग्रन्थ समाप्ति स० १३८९ भा० सु० १० योगिनीपुर।
१२ कन्यानयनीय महावीर कल्प परिशेष स० १३८९ आषाढ का उल्लेख।

प्रस्तुत ग्रन्थ मे समकालीन कई ऐतिहासिक घटनाओ के सव-तोल्लेख सह उल्लेख व कई राजवशो व मुस्लिम सम्राटादि का उल्लेख ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है।

इसमे श्वेताम्बर, दिगम्बर भेद भाव के विना व उत्तर भारत व दक्षिण भारत के तीर्थों का विश्वसनी वर्णन दिया है। कई प्रमुख जैन श्रावको, जैनाचार्यों व उनके सुकृत्यो का उल्लेख भी यथा प्रसग किया गया है। कुछ बातें पौराणिक भी हैं। कई वर्णन केवल सम्बन्धित ही नही किन्तु बौद्धो, सनातनियो आदि के लिए भी उपयोगी हैं। इस प्रकार यह ग्रन्थ ऐतिहासिक सास्कृतिक दृष्टि से बडा ही महत्त्वपूर्ण है।

भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी इसका महत्त्व निर्विवाद है क्योकि इसमे प्राकृत सस्कृत गद्य पद्य विविध शैली की रचनाएं हैं जिनमे देश्य शब्दो का भी प्रयोग हुआ है। कई शब्दो का वास्त-विक अर्थ तो समझना भी कठिन है, जिनका अनुमान से काम निकालना पडा है। वास्तव मे कही-कही तो वर्णन अति सक्षिप्त होने से उनके भावो का स्पष्टीकरण भी कठिन हो गया है। कोश ग्रन्थो मे उन शब्दो के नाम भी नही मिलते वे भविष्य मे रचे जाने वाले कोशो मे अवश्य आने चाहिए। अन्य ग्रन्थो मे वे शब्द किस अर्थ मे प्रयुक्त हुए हैं इस विषय मे अनुसन्धान व विचार किया जाना चाहिए।

प्रस्तुत ग्रन्थ का नाम विविध तीर्थकल्प रखा गया है क्योकि कल्प सज्ञक रचनाएँ अधिक हैं अवशिष्ट स्तव, स्तवन, स्तुति, चरित्र और विचार सज्ञक कई रचनाएँ हैं। प्रशस्ति सह कुल ६२ रच-

नाओ में भाषा और गद्य-पद्यादि की दृष्टि से इस प्रकार वर्गीकरण किया जा सकता है। सस्कृत की कुल २७ रचनाओ मे १४ पद्य और १३ गद्यमय है। एवं प्राकृत की ६ पद्य और ३० गद्य रचनाएँ है।

विविध तीर्थकल्प के ६२ कल्पो मे निम्नोक्त तीर्थों सम्बन्धी रचनाएं हैं—

१ अणहिलपुर अरिष्टनेमि कल्प
२ अपापापुरी कल्प,
३ अयोध्याकल्प,
४ अर्बुदाद्रिकल्प,
५ अवन्तिदेश अभिनन्दन कल्प,
६ अश्वावबोध कल्प
७ अष्टापदगिरि कल्प,
८ अहिच्छत्रा नगरी कल्प,
९ उज्जयन्त (गिरनार-रैवतगिरि)
१० कन्यानयनीय महावीर कल्प,
११ कलिकुण्ड कुर्कुटेश्वर कल्प,
१२ काम्पिल्यपुर तीर्थ कल्प,
१३ कुडुगेश्वर नाभेयदेव कल्प,
१४ कुल्पाकऋषभ-माणिक्यस्वामी कल्प,
१५ कोकावसति पार्श्वनाथ कल्प,
१६ कोटिशिला तीर्थ कल्प,
१७ कौशाम्बी नगरी कल्प,
१८ चौरासी महातीर्थ नाम सग्रह कल्प,
१९ चम्पापुरी कल्प,
२० ढीपुरी तीर्थ कल्प,

२१ नन्दीश्वरद्वीप कल्प,
२२ नासिकपुर कल्प,
२३ पाटलिपुत्र कल्प,
२४ पार्श्वनाथ (स्तम्भन) कल्प
२५ प्रतिष्ठानपुर कल्प,
२६ फलवर्द्धि पार्श्वनाथ कल्प
२७ मथुरापुरी कल्प
२८ मिथिला तीर्थ कल्प,
२९ रत्नवाहपुर कल्प
३० वाराणसी नगरी कल्प
३१ वैभारगिरि कल्प
३२ शंखपुर पार्श्व कल्प
३३ शत्रुञ्जय तीर्थ कल्प,
३४ शुद्धदन्ती पार्श्व कल्प,
३५ श्रावस्ती नगरी कल्प
३६ श्रीपुर अन्तरीक्ष कल्प
३७ सत्यपुर तीर्थ कल्प
३८ हरिकखी पार्श्व कल्प,
३९ हस्तिनापुर कल्प,
४० आमर कुण्ड पद्मावती कल्प,
४१ व्याघ्री कल्प,
४२ कपर्द्दि कल्प,
४३ अम्बिका कल्प,
४४ वस्तुपाल तेजपाल कल्प,

इनमे पावापुरी, अष्टापद, कन्यानयन, ढिपुरी, हस्तिनापुर के दो-दो हैं, प्रतिष्ठान के तीन हैं, गिरनार के चार है व पार्श्वनाथ (स्तंभन) के दो हैं। अत ६२ मे १२ बाद जाने से ५० रहे और

उनमे पच कल्याणक, अतिशय, पचकल्याणक (२८ जिन) स्तव, पचपरमेष्ठि, ११ गणधर, समवशरण, आदि ६ कल्प तीर्थों के न होकर शास्त्रीय विचार वाद देने से ८४ ही अवशिष्ट रहेगे। इनमे भी १ अष्टापद महातीर्थ कल्प धर्मघोषसूरि का, २ पचकल्याणक स्तवन सोमसूरि का एव ३ कन्यानयन महावीर कल्प परिशेष आचार्य संघतिलकसूरि के आदेश से विद्यातिलक द्वारा रचित है। इन कल्पो मे सभी एक-एक तीर्थ सम्बन्धी हैं परन्तु (४५) चतुरशीति महातीर्थ नाम सग्रह कल्प मे उस समय के अनेक तीर्थो का उल्लेख चौवीस तीर्थंकरो के क्रम मे स्थानसूची सह किया है जो ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह शाश्वत ती है। यो तीर्थ मुनियो की परम्परा भ० ऋषभदेव के निर्वाणस्थल अष्टापद से आरम्भ होती है जो हिमालय मे छिपा पडा है।

इस कल्प का अनुवाद प्रस्तुत ग्रन्थ के पृ० १९२ मे प्रकाशित है। इनमे से वहुत से तीर्थो व मन्दिरो का आज कोई पता नही चलता।

विविध तीर्थकल्प मे श्रीजिनप्रभसूरि जी ने ज्ञातव्य दिए हैं उनसे तत्कालीन जैन तीर्थों की स्थिति पर अच्छा प्रकाश पडता है। अनेक नवीन ऐतिहासिक तथ्य सामने आते है। गत सात सौ वर्षो मे जो पट परिवर्त्तन हुआ है उसका लेखा जोखा चित्र की भाँति सामने आ जाता है। अनेक मुस्लिम शासको द्वारा विध्वस लीला हुई धर्म प्राण भक्त श्रावको ने जीर्णोद्धार व नवनिर्माण कराया उसके विवरण अत्यन्त मूल्यवान हैं।

शत्रुञ्जयतीर्थ—मूलमन्दिर के दाहिनी ओर पुण्डरीक स्वामी और बाँये तरफ जावड़ सहकारित विंव था। वामपार्श्व मे सत्यपुरीयावतार जिनालय, दाहिनी ओर शकुनिका चैत्य के पीछे अष्टापद मन्दिर, नन्दीश्वर, स्तभन तीर्थ, गिरनार, स्वर्गारोहण चैत्य मे

नमि-विनमि सेवित ऋषभ दूसरे शृग पर श्रेयासनाथ, शान्तिनाथ, नमिनाथ ऋषभदेव व महावीर सुशोभित थे। कुन्ती और पाँच पाडवो के बिम्ब लेप्यमय थे जो आज भी हैं। सप्रति, विक्रम, वाग्भट, पादलिप्त, आम, दत्त के उद्धार का उल्लेख। जावड शाह के बिम्बद्धार के अजिता यतन स्थानपर अनुपमा सरोवर हुआ। जावड का उद्धार स० १०८ मे वज्रस्वामी के उपदेश से हुआ वह मधुमती (महुवा) निवासी था। वस्तुपाल और पेथड ने भी उद्धार कराया। वस्तुपाल ने म्लेच्छो द्वारा भग होने की सभावना से ऋषभदेव व पुण्डरीक प्रतिमाओ को भूमिगृह मे रखा। स० १३६९ मे जावड स्थापित बिम्बो का म्लेच्छो द्वारा भग हुआ। तब समरा-साह ने स० १३७१ मे मूल नायकोद्धार किया।

२ गिरनार तीर्थ—गिरनार जी की उपत्यका मे खगारगढ और तेजलपुर थे। वहाँ ऋषभदेव व पार्श्वनाथ के मन्दिर थे। कल्याणक त्रय मन्दिर वस्तुपाल मन्त्री ने और शत्रुजयावतार कपर्दी मरुदेवी प्रासाद एव ऋषभदेव, पुण्डरीक, अष्टापद, नन्दीश्वर-द्वीप के जिनालय भी बनवाये थे। काश्मीर के रत्न और अजित श्रावक के समय लेप्यमय बिम्ब स्नान से गल जाने पर देवी ने उन्हे रत्नमय बिम्ब दिया। गुजरात के जयसिह देव ने खगार को मार कर सज्जन को दण्डनायक स्थापित किया। स० ११८५ मे उसने जिनालय बनाया, मालवा के भावड साह ने स्वर्णमय आमाल-सार कराया। कुमारपाल के श्रीमाल्वशीय दण्डनायक ने स० १२२० मे पाज बनवाई व धवल ने प्रपाएँ (प्याऊ) कराई। वस्तुपाल तेजपाल वीरधवल के मन्त्री थे। तेजपाल ने तेजलपुर बसाया और पिता के नाम से आसराज विहार पार्श्व जिनालय कराया। माता कुमार देवी के नाम से कुमर सरोवर कराया। तेजलपुर से पूर्व दिशा मे उग्रसेनगढ मे ऋषभदेवादि के मन्दिर हैं। उग्रसेनगढ, खगारगढ और जूनागढ एक ही है। गढ के बाहर दक्षिणदिशा मे चँवरी-

वेदी, लड्डुओ के ओरे, पशुवाड़ा आदि स्थान हैं। उत्तर दिशा मे दशारमंडप है। तेजपाल ने तीन कल्याणक चैत्य व देपाल मत्री ने इन्द्रमण्डप का उद्धार कराया था।

३ स्तभनतीर्थ—इसका लघुकल्प सघदास मुनि ने बनाया था। जिनप्रभसूरि ने सक्षिप्त रचना की। अभयदेवसूरि द्वारा जयतिहुअण स्तोत्र रचना का उल्लेख है। न० ५९ कल्पशिलोछ मे विशेष वर्णन है।

४ अहिच्छत्रा तीर्थ—यह पार्श्वनाथ भगवान् के कमठोपसर्ग का तीर्थ है। धरणेन्द्र की सर्पणगति के अनुसार दुर्ग का निर्माण हुआ जो उस समय मौजूद था। चमत्कारी जलकुण्डो व मिट्टी सो धातु सिद्धि होने के साथ-साथ सकूपिका, सवा लाख कुँए-वापिकाएँ, मन्दिर मे धरणेन्द्रपद्मावती सेवित पार्श्वनाथ किले के पास नेमिनाथ व अम्बिका मूर्त्ति विद्यमान थी। उत्तरावापी का जल रोगनाशक था एव अनेक प्रकार की औषधियो व लौकिक तीर्थो का भी वर्णन किया है।

५ अर्बुद गिरि—चन्द्रावती के विमलदण्डनायक ने स० १०८८ मे विमलवसही और स० १२८८ मे वस्तुपाल तेजपाल ने लूणिगवसही बनाई थी। म्लेच्छो द्वारा भग कर देने पर महणसिह के पुत्र लल्ल ने विमलवसही का और चण्डसिह के पुत्र पीथड ने स० १३७८ मे लूणगवसही का जीर्णोद्धार कराया था। कुमारपाल ने ऊचे शिखर पर वीरचैत्य बनवाया जिसका उल्लेख है। जैनेतर स्थानो का वर्णन भी महत्त्वपूर्ण है।

६ मथुरा तीर्थ—पुरातत्त्व की दृष्टि से मथुरा का अत्यधिक महत्त्व है। वहाँ के सुपार्श्वनाथ स्वामी के कुबेरादेवी निर्मित बौद्ध स्तूप जिनप्रभसूरि जी के समय मे अच्छी स्थिति मे और प्रसिद्ध तीर्थ था। वहाँ के अनेक वृत्तान्त और स० ८२६ बप्पभट्टिसूरि द्वारा

महावीर प्रतिमा प्रतिष्ठा व आमराजा द्वारा जीर्णोद्धार कराने आदि का महत्त्वपूर्ण उल्लेख है।

७ अश्वाववोध तीर्थ भरौंच—यह तीर्थ भी मुनिसुव्रत स्वामी के समय का है। इस कल्प मे उसकी उत्पत्ति का महत्त्वपूर्ण इतिहास है। शत्रुजयोद्धारक वाहक के अनुज अवड ने अपने पिता के पुण्यार्थ शमली विहार का उद्धार कराया था, आचार्य हेमचन्द्र द्वारा सिधवा देवी के उपद्रव दूर करने का उल्लेख है।

८ कौशाम्बी तीर्थ—यहाँ के पद्मप्रभ जिनालय मे उस समय भगवान् महावीर को पारणा करातो हुई चन्दनवाला की मूर्ति थी जो आज नही हैं। पास मे ही वसुहार गाँव था।

९ अयोध्या कल्प से विदित होता है कि देवेन्द्रसूरि जी यहाँ के तोन महाबिम्ब आकाश मार्ग से लाये थे जिनमे सेरीसा पार्श्वनाथ का बिम्ब धारासेणक गाव के खेत मे रह गया था। महाराजा कुमारपाल ने उस महाप्रभावक बिम्ब की स्थापना की थी।

१० हस्तिनापुर मे शान्तिनाथ, कुथुनाथ, अरनाथ और मल्लिनाथ के मनोहर चैत्य थे। अम्बा देवी का भी देवल था।

११ साचोर तीर्थ राजा नाहड निर्मापित और जज्जिगसूरि प्रतिष्ठित था। यह तीर्थ भी अत्यत चामत्कारिक था। स० ८४५ मे हमीर ने वल्लभी का भग किया तव और वाद मे स० १०८१ मे गजनी पति भी साचोर का भग करने मे असमर्थ रहा। स० १३४८ मे भी ब्रह्मशान्ति ने चमत्कार दिखाया और स० १३५८ मे अलाउद्दीन के भाई उलूखान के आक्रमण समय भी अनाहत वाजे सुनकर सेना भग गई पर स० १३६७ मे सुलतान अलाउद्दीन ने गोमास रुधिर से अपवित्र कर प्रतिमा को दिल्ली लाकर आशातना की।

१२ मिथिला तीर्थ—विदेह जनपद मे जगई नाम से प्रसिद्ध मल्लिनाथ और नमिनाथ भगवान् के चैत्य थे। वहाँ की विद्या समृद्धि और प्राकृतिक रहनसहन प्रशसनीय था। आज तीर्थ विच्छेद है।

१३. पावापुरी तीर्थ—इस लघुकल्प के अनुसार निकटस्थ पहाडी मे दरार और दीवाली के दिन कुंए के पानी से दीपक जलने का उल्लेख है। वृहत्कल्प तो बहुत विस्तृत और अनेक शास्त्रीय पौराणिक ज्ञातव्यो से परिपूर्ण है।

१४ (ए) कन्यानयन महावीर प्रतिमा—यह प्रतिमा सिरि जिनपतिसूरि जी ने स० १२३३ आषाढ सुदि १० को प्रतिष्ठित की थी। इसके निर्माता उनके चाचा सेठ नागदेव थे। सं० १२४८ मे पृथ्वीराज चौहान का सुलतान सहावुद्दीन द्वारा निधन होने पर सेठ रामदेव (राज्य प्रधान) के निर्देश से कयवास स्थल के टीवो मे प्रतिमा छिपा दी थी। १३११ मे सुथार जोज्जो को स्वप्न देकर भगवान् प्रगट हुए। किन्तु परिकर प्राप्त न हुआ जिसपर प्रशस्ति लेख मिलने की सम्भावना की। स० १३८५ तक वहाँ पूजित रही जट्ठुअ राजपूतो की धाड से गाँव उजड़ गया। उसी वर्ष हासी के अल्लविय सिकदार ने श्रावक और साधुओ को वन्दी वनाकर विडम्वित किया। पार्श्वनाथ प्रतिमा का भग हुआ। महावीर स्वामी की प्रतिमा दिल्ली-तुगलकाबाद के शाही खजाने मे लाकर रखी गई। फिर प्रभावक आचार्य श्रीजिनप्रभसूरि जी द्वारा मुहम्मद तुगलक को प्रतिवोध देकर अनेक चमत्कारो से प्रभावित सम्राट् द्वारा मन्दिर बना कर पूजे जाने का विशद वर्णन दो कल्पो मे है।

श्री जिनप्रभसूरि जी जब देवगिरि पधारे तो प्रतिष्ठानपुर

पधार कर सघपति जर्नसिंह, साहण, मल्लदेव आदि के साथ मुनि-सुव्रत (जीवित) स्वामी की प्रतिमा को वन्दन किया।

१५ अणहिलपुर अरिष्टनेमि कल्प—से विदित होता है कि कन्नौजपति ने अपनी पुत्री महनिका को कञ्चुलि सम्बन्ध मे दिए गए गूर्जरदेश मे जक्ख सेठ को पोठी लेकर आने पर लक्खाराम मे चौमासा बिताना पडा और स्वप्नादेश से खोये बैल मिले और अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ और अम्बिका की प्रतिमाए इमली के वृक्ष के नीचे से निकाली। मदिर बनने पर ब्रह्माण गच्छीय यशोभद्रसूरि ने प्रतिष्ठित किए। उसी स्थान पर स० ८०२ मे वनराज चावडा ने अणहिलपुर पाटण बसाया। वहा को वशावली इस कल्प मे दो गई है।

१६ नाशिकपुर कल्प—इस पौराणिक तीर्थ के कल्प मे चन्द्र-कान्त मणिमय चन्द्रप्रभ प्रतिमा को प्रभु की विद्यमानता मे ही सौधर्मेन्द्र से प्रतिमा प्राप्त करने और प्रजापति के मन्दिर बनाने का उल्लेख है। रामचद्र जी व कुन्ती द्वारा बाद मे जीर्णोद्धार हुआ। शान्तिसूरि ने कलिकाल मे जीर्णोद्धार कराया। राजा परमर्दी ने २४ गांव अर्पण किए। महल्लय क्षत्रिय डाकूवाइओ के द्वारा प्रासाद गिरा देने पर पल्लीवाल ईश्वर के पुत्र माणिक्य के पुत्र कुमार सिंह ने जीर्णोद्धार कराया था।

१७ हरिकखी पार्श्वनाथ कल्प से विदित होता है कि चालुक्य भीमदेव के समय अतनु वुक्क सलार ने अणहिलपुर पाटण को भग कर लौटते हुए हरिकखी गाव की प्रतिमा को भग्न कर डाला। अधिष्ठाता देव के निर्देश से जोडकर छ महीना वद रखने पर जुड जाने का चमत्कार वर्णित है।

१८ गुड्ढदन्ती पार्श्वनाथ कल्प—यह राजस्थान के सोजत से सम्बन्धित है इस परगने को 'सात सौ देश लिखा है, सोवत्तिवाल

गच्छ यही से सम्वन्धित है। अयोध्या से रामचद्र जी के देहरासर की रत्नमय प्रतिमा अधिष्ठाता देव ने गगनमार्ग से यहाँ ला कर भूमिगृह मे रखी और उसे रत्नमय से पाषाण मय कर दिया। तुर्कों द्वारा मस्तक उतार देने पर भी अजापालक द्वारा मस्तक को शरीर पर चढा देने से वह पुन अखण्ड हो गई।

१९ अवन्ति देशस्थ अभिनदन कल्प मे मेदपल्ली मे तुर्कों द्वारा खण्डित प्रतिमा को जोडकर प्रतिदिन पूजा करने के नियम वाले वइजा श्रावक द्वारा पूजे जाने व अधिष्ठाता द्वारा चन्दन लेप से अखण्ड हो जाने का निर्देश व बाद मे जिनालय निर्माण व मठपति अभयकीर्ति भानुकीर्ति द्वारा चैत्यव्यवस्था का उल्लेख व मालवपति जयसिंह देव द्वारा २४ हल की भूमि मठपति को व १२ हल भूमि पूजक को प्रदान करने का उल्लेख है।

२० चम्पापुरी कल्प मे सुभद्रा सती द्वारा वद छोडा हुआ एक दरवाजा अठारह सौ वर्षों तक विद्यमान था जिसे स० १३६० मे लक्षणावती (गौड बंगाल) के सुलतान समसदीन ने तुडवाकर पत्थर और कपाटो को ले जाकर शंकरपुर दुर्ग के निर्माण मे काम लगाने का महत्त्वपूर्ण उल्लेख है।

२१ श्रावस्ती नगरी 'महेठ' नाम से तव भी प्रसिद्ध थी, संभवनाथ जिनालय गगनचुंबी था और देवानुभाव से संध्या समय बन्द हो जाता और प्रात काल स्वय खुल जाता था। एक बार सुलतान अलाउद्दीनके मल्लिक हब्बस ने बहराइच से आकर प्राकार कपाट व विम्वो को भग्न कर डाला। उस चैत्य शिखर पर चीता आकर उत्सवादि के समय वैठ जाता और मगल दीपक होने पर चला जाता था। उस समय वहाँ बौद्धायतन भी था जहाँ समुद्र वशीय करावल्ल नरेन्द्र जो वौद्ध भक्त थे प्रक्षरित पलाना हुआ। अलंकृत महातुरंगम चढाते थे, यहाँ वहुत प्रकार की औषध उत्पन्न होती थी।

२२ वाराणसी कल्प—वाराणसी चार भागों मे विभक्त थी। १ राजधानी वाराणसी, २ मदन वाराणसी, ३ विजय वाराणसी ४ देव वाराणसी (यहाँ विश्वनाथ का मन्दिर है जिसमे जैन चतुर्विंशति पट्ट उस समय भी पूजा जाता था। कमल सरोवर के पास पार्श्वनाथ जिनालय मे अनेक जिन-प्रतिमाएँ थी। तीन कोश पर धर्मेक्षासन्निदेश मे वोधि सत्त्व का उच्च शिखरी आयतन था। (यह स्थान आजकल सारनाथ कहलाता है) ढाई योजन पर चन्द्रप्रभ स्वामी की चार कल्याणकभूमि चन्द्रावती है।

२३. कोका वसतिपार्श्वनाथ कल्प—प्रश्नवाहन कुल के हर्षपुरीया श्री अभयदेवसूरि ने अणहिलपुर आकर जयसिंहदेव से मलधारि विरुद पाया। वे घृतवसति मे प्रवचन करने जाते थे पर गोष्ठी के निषेध करने पर मोखदेवनायग आदि श्रावको ने नये स्थान की गवेषणा की। कोका श्रावक से यथोचित मूल्य मे भूमि लेकर उसी के नाम से संबद्ध कोकावसति का निर्माण कराया। भ० पार्श्वनाथ को प्रतिष्ठित किया गया पर भीमदेव के राज्य काल मे मालवा के सुलतान ने पाटण का भग कर दिया और कोकावसति की पार्श्वनाथ प्रतिमा को तोड़ डाला। नायग के वशधर रामदेव, आशधर ने उद्धार कराया। आरासन से प्रतिमा के लिए तीन फलक मगवाये पर सतोष न होने पर रामदेव अनशन कर बैठ गया। आठवे उपवास मे देवादेश हुआ कि गहूँली पर पुष्पाक्षत वाले स्थान के नीचे पाषाण फलक है। उसे निकाल कर बिम्ब निर्माण कराया और स०-१२६६ मे देवानन्दसूरि ने प्रतिष्ठा की। इसमे रामदेव के वशजो के नाम दिए हैं और देल्हण को स्वप्न दिया कि अधिष्ठायक चार घडी यहाँ रहते हैं अत सखेश्वर पार्श्वनाथ की यात्रा यही सफल होगी।

२४ ढिपुरीतीर्थ—पारेत जनपद मे शराविका पर्वत के पास

चर्मणवती नदी के किनारे चेल्लण पार्श्वनाथ ढिपुरी तीर्थ है जो वकचूल द्वारा निर्यापित है। प्रतिमा भग्न करने आये हुए म्लेच्छो के हाथ स्तंभित हो गए। सिहगुफापल्ली ही ढिंपुरी है। यहाँ महावीर स्वामी, पार्श्वनाथ प्रतिमाएँ थी। नदी का नाम रतिदेव भी है स्तोत्रानुसार ऋषभदेव, मुनिसुव्रत, अम्बिका-क्षेत्रपालादि की मूर्त्तियाँ भी यहाँ थी।

२५. कुडुगेश्वर नाभेयदेव कल्प—श्वे० चारणमुनि वज्रसेन ने शक्रावतार तीर्थ मे आदीश्वर भगवान् की प्रतिष्ठा की। यह कल्प शासनपट्टिका को देखकर इस कल्प को बनाने का महत्त्वपूर्ण उल्लेख है। सिद्धसेन दिवाकर से प्रतिबोध पाकर सम्राट् विक्रमादित्य ने "वि० स० १ चैत्रसुदि १ गुरुवार को गोहृद मडल के सावद्रादि ९१ गाँव, चित्रकूट मडल के बसाड आदि ८४ गाँव, घुटारसी आदि २४ गाँव मोहड वासक मडल के ईसरोडा आदि ५६ गाँव कुडुगेश्वर ऋषभदेव तीर्थ के लिए। यह पट्टिका उज्जैन मे भाटदेशीय महाक्षपटलिक परमार्हत् श्वेताम्बर ब्राह्मण, गौतम के पुत्र कात्यायन ने राजाज्ञा से लिखी। इस कल्प मे विक्रम से सिद्धसेनसूरि ने तुम्हारे से ११९९ वर्ष बाद परमार्हत् कुमारपाल होगा—भविष्य वाणी की—ऐसा उल्लेख है।

कल्यानयन महावीर कल्प परिशेष—यह विद्यातिलक मुनि की कृति है पर समकालीन इतिवृत्त होने से इसका महत्त्व अत्यधिक है। श्री जिनप्रभसूरि जी ने दौलताबाद के साहू पेथड, साहु सहजा ठा० अचल कारित चैत्यो का तुर्को द्वारा भग किये जाते समय फरमान दिखा कर निवारण करने का उल्लेख है। ताजमल्लिक, नगर नायक कुतुलखान महामल्लिक दीनार आदि एव मुलतान की माता मगदूम-इ-जहाँ आदि के उल्लेख है एव चैत सुदि १२ को पाँच शिष्यो की दीक्षा एव व्रत ग्रहणादि के साथ मालारोपण, व्रत

ग्रहण एवं आषाढ सुदि १० को १३ जिन प्रतिमाओ की प्रतिष्ठा वडे समारोह पूर्वक करने का उल्लेख है। मथुरा, हस्तिनापुर यात्रा व श्रावको द्वारा तीर्थोद्धार, प्रतिष्ठादि अनेक धर्मकार्यो का वर्णन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। विस्तारभय से उनका यहा विवरण न लिख कर मूलकल्प को ही देखने का अनुरोध है।

२६ आमरकुण्ड पद्मावती देवी कल्प—तिलग जनपद विभूषण आन्ध्र देश मे आमरकुण्ड नगर मे पद्मावती देवी का मन्दिर है। उरगल शिलापत्तन मे पहाड पर ऋषभदेव शान्तिनाथ के प्रासाद थे एव दि० मेघचन्द्र मुनि रहते थे उनके छात्र क्षत्रिय माधवराज ने देवी की कृपा से विस्तृत राज्य प्राप्त किया। कंकति से काकतीय वश हुआ। राजाओ की वशावली भी महत्त्वपूर्ण है इस विषय मे जैन सदेश के शोधाङ्क मे डॉ० ज्योति प्रसाद जैन का लेख द्रष्टव्य है।

२७ चतुरशीति महातीर्थ नाम सग्रह कल्प—इस विषय मे ऊपर लिखा जा चुका है।

२८ कुल्पाकमाणिक्यदेव तीर्थकल्प—यहाँ आदिनाथ भ० की प्रतिमा भरत निर्मापित अष्टापद तीर्थ की है। उसे रावण के यहाँ मदोदरी ने इन्द्र से प्राप्त की। फिर समुद्र मे देवो द्वारा पूजित रही यह मरकत मणि की प्रतिमा है। कल्याण नगर के शकर राजा ने मारि उपसर्ग निवारणार्थ पद्मावती के सांनिध्य से लवणाधिप से प्राप्त की और वछडो को जोडकर लाते हुए सदेह होने से पीछे देखा तो अटक जाने पर वही स्थापित की गई। उन दिनो कुल्पाक "दक्षिण वाराणसी" कहलाता था। शकर राजा ने प्रासाद बनवा कर स्थापित की। भगवान् के न्हवण जल से दीपक जलता था एवं मिट्टी का स्नानजल से भिगो कर वाँधने से अन्धो को नेत्र ज्योति प्राप्त हो जाती थी। साँप काटे व्यक्ति भी निर्विष हो जाते

थे। वि० स० ६८० पर्यन्त भगवान् अधर रहे बाद मे वेदी पर विराजमान हुए वहाँ अमी झरती थी। यह तीर्थ आज भी प्रभावशाली है।

२९. श्रीपुर—अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ कल्प—यह प्रतिमा भी रावण के समय की है और चिंगउल देश के श्रीपाल राजा का कुष्ट दूर हो गया तब तालाब मे से निकालकर स्वप्न निर्देशानुसार लाई गई। आज भी प्रतिमा अधर है जिसके नोचे से वस्त्र निकलता है और उसका चामत्कारिक वर्णन कल्प मे पाया जाता है। प्रभु के न्हवण जल से सिंचित आरती नही बुझती और न्हवण जल से दाद खाज कुष्टादि चर्म रोग मिट जाते हैं।

३०. फलवर्द्धि पार्श्वनाथ कल्प—सवालक्ष देश मे मेडता के निकटवर्त्ती यह पूर्वकाल मे बडा नगर था। धाधल श्रीमाल और ओसवाल शिवकर वहाँ रहते थे। गाय का दूध झरने के स्थान मे प्राचीन बिम्ब निकला और मन्दिर निर्माण प्रारम्भ हुआ। प्रतिदिन देवानुभाव से द्रम्म मुद्रा का स्वस्तिक मिलता जिससे मन्दिर निर्माण कार्य चलता था। सेठ के पुत्र के छिपकर देखने से द्रम्म-मुद्रा आना वन्द हो गया। स० ११८१ मे राजगच्छीय धर्मघोषसूरि ने प्रतिष्ठा की। सुलतान साहावुद्दीन ने मूल बिम्ब को भग्न किया तो म्लेच्छ सेना मे अधत्व, रुधिर-वमनादि होने लगा तव सुलतान ने फरमान निकाला कि इसे कोई भग्न न करे। यहाँ का अधिष्ठाता जाग्रत-चमत्कारी है। पौ० ब० १० को पार्श्व जन्म दिवस का मेला अति प्राचीन समय से लगता आ रहा है।

३१ वैभार गिरि कल्प—इस कल्प से विदित होता है कि उस समय राजगृह मे द्रारिद्रविद्रावक रसकूपिका, त्रिकूट खण्डिकादि शिखर व करण गांव के अवशेष थे। गरम व ठण्ढे पानी के कुण्ड तो आज भी हैं पर उपर्युक्त स्थान कहाँ थे ? पता नही। उस समय

भी उस प्रदेश मे बौद्ध विहारो की प्रचुरता थी। सप्तपर्णी गुफा को जैन वाङ्मय मे तब भी रौहिणेय गुफा कहते थे। कल्प मे लिखा है कि पूर्वकाल मे यहाँ छत्तीस हजार वणिको के घर थे जिनमे आधे जैन और आधे बौद्ध थे। नालदा मे कल्याणक स्तूप और गौतम स्वामी का मदिर भी था।

३२ कलिकुण्ड कुर्कुटेश्वर कल्प—यह तीर्थ चम्पापुरी के निकट अगदेश मे था। पहाड के नीचे सरोवर था जहाँ पार्श्वनाथ स्वामी का विचरण हुआ था। वर्णन देखते मन्दार गिरि की कल्पना होती है।

३३ रत्नवाहपुर कल्प—आजकल रत्नवाहपुर को नौराही कहते हैं, सोहावल स्टेशन है। यहाँ धर्मनाथ भगवान् के चार कल्याणक हुए। इस नागकुमार अधिष्ठित तीर्थ मे नागमूर्त्ति युक्त धर्मनाथ भगवान् को सर्वसाधारण जनता पूजती थी और उन्हे धर्मराज नाम से पुकारती थी। वर्षा न होने पर हजारो घड़े दूध से अभिषेक कराते और मेघवृष्टि हो जाती। कुभार बालक के धोखा देने से नागकुमार ने कुभारो का वश नाश कर दिया तब से मिट्टी के बर्त्तन भी जनता को अन्य स्थान से लाना पडता था।

३४ काम्पिल्यपुर—भगवान् विमलनाथ के वाराह लछन के कारण इसे शूकर क्षेत्र भी कहते थे। भगवान् के राज्याभिषेक सह-पच कल्याणक होने से नगर का भी यही नाम रूढ था।

३५ शखपुर पार्श्व (सखेश्वर) कल्प मे जरासध द्वारा जरा-प्रभावित यादव सेना को भगवान् नेमिनाथ के निर्देश से श्रीकृष्ण ने नागराज से पार्श्वनाथ प्रतिमा प्राप्त कर जरा दूर की। कालान्तर मे शखकूप मे प्रकट होने से चैत्य मे विराजमान की और उसे पूजने लगे। अधिष्ठाता द्वारा चमत्कार—परचे दिखाने से जनसाधारण तो क्या तुर्कराजा लोग की तीर्थ की महिमा करते हैं।

३६ पाटलिपुत्र नगर कल्प--इस नगर को कूणिक के पुत्र उदायी ने वसाया था जिसका कल्प मे विस्तृत वर्णन है। उदायी के वाद नवनद और कल्पक का वशज शकडाल मत्री हुआ। यहाँ स्थूलिभद्र आदि अनेक महापुरुष हुए जिनका कल्प मे वर्णन है। और साथ ही साथ यहाँ की समृद्धि के आश्चर्यकारी उदाहरण हुए है। यहाँ अनेक प्रकार के चावल होते थे जिनमे गर्दभिका शालि-रत्न को बार-बार काटने पर भी पुन-पुन ऊग जाता। जिनप्रभ-सूरि जी के समय मे यह गौड देशान्तर्गत था क्योकि लक्षणावती के सुलतान ने उसे गौड देश मे मिला दिया था।

३७ प्रतिष्ठानपुर के कल्पो मे पौराणिक वार्त्ता है जिसमें सातवाहन को विक्रमादित्य के समकालीन वतलाया है और नागराज के सानिध्य से विक्रम की सेना को हराने का वर्णन है। यह राजा जैन हो गया। उसने जिन चैत्य बनवाये और पचास वीरो ने भी अपने नामाङ्कित जिनालय निर्माण कराये। सातवाहन के मरने पर शक्तिकुमार का राज्याभिषेक हुआ। वीर क्षेत्र प्रतिष्ठान मे तब से आजतक कोई राजा प्रवेश नही करता।

३८ अष्टापद तीर्थ कल्प--अयोध्या से बारह योजन की दूरी पर अष्टापद लिखा है। कैलाश और धवलगिरि इसी के नाम है, निकट ही मान सरोवर है। आकाश साफ होने पर अयोध्या के निकटवर्ती उड्डयकूट पर जाने से उसकी धवल शिखर-परम्परा दिखायी देती है। जिनप्रभसूरि लिखते है कि यद्यपि यह तीर्थ अगम्य है पर प्रतिविम्बित दर्शन पाकर भव्यजन यात्राफल प्राप्त करता है। इसमे भरत चक्रवर्त्ती ने २४ तीर्थंकर और अपने ९९ भाइयो के स्तूप-मूर्त्तियाँ व स्वय की मूर्ति भी स्थापित की थी। यहाँ के विशालकाय जिनालय का भी भव्य वर्णन किया गया है। सगर चक्रवर्त्ती द्वारा परिखा निर्माण, गगानदी को गगासागर तक गति, वज्रस्वामी के जीव तिर्यक जृभक देव को गौतमस्वामी

द्वारा प्रतिबोध, भगवान् महावीर द्वारा प्रतिबोध, भगवान् महावीर द्वारा गिरिराज पर चढने वाले को तद्भवमोक्षगामी बतलाने पर गौतम स्वामी के चढने व १५०३ तापसो को प्रतिबोध देने का विशद वर्णन है।

जिन सक्षिप्त कल्पो की बातो का उन्होने विस्तार किया है उनमे से धर्मघोष सूरि कृत कल्प को श्रीजिनप्रभसूरि ने इस विविध तीर्थकल्प मे सम्मिलित कर दिया है।

३९ कोटिशिला—यह तीर्थ एक योजन चौड़ा और एक योजन ऊँचा मगध देश मे देवताओ द्वारा पूजित बतलाया है जो अब अज्ञात है। यहाँ ६ तीर्थंकरो के शासन मे करोडो मुनि सिद्ध हुए हैं और वासुदेव लोग इसे ऊचा उठा कर शक्ति सन्तुलन बताते हैं। बलभद्र जैन ने इस तीर्थ की अवस्थिति के विषय मे भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ भाग-२ के पृ० २२३ मे उहापोह की है।

४० नन्दीश्वर द्वीपकल्प—नन्दीश्वर द्वीप मनुष्य लोक से बाहर आठवा द्वीप है जहाँ शाश्वत बावन पहाडो पर बावन जिनालय है। इनका कल्प मे विशद वर्णन है। देवेन्द्रादि विशिष्ट अवसर पर अट्ठाई महोत्सव करते हैं एव लब्धिधारी या देव के साहाय्य से ही इसके दर्शन कर सकते हैं।

४१ वस्तुपाल तेजपालमंत्रि कल्प—प्राग्वाट आसराज कुमार देवी के नन्दन इन विश्वविश्रुत भ्राता युगल के सुकृत्यो का वर्णन आचार्य प्रवर ने बडे ही हार्दिक प्रेम से किया है और मन्त्रिद्वय को तीर्थ स्वरूप बतलाया है क्योकि जिनके हृदय मे जिनेश्वर विराजमान हो वही तीर्थ है।

४२ कपर्द्दि यक्ष कल्प—पालीताना मे सरपच कपर्द्दि निवास करता था जो सप्त व्यसन रत था। गुरु महाराज ने उसके द्वारा प्रदत्त स्थान मे चातुर्मास किया और अन्त मे नवद्वार मंत्र स्मरण

व शत्रुंजय को नमस्कार करने का नियम दिलाया। वह अनशन पूर्वक मर के शत्रुजयगिरि का अधिष्ठायक कपर्दिद यक्ष हुआ।

४३ व्याघ्री कल्प—शत्रुजय पर वाघणपोल प्रसिद्ध है। तीर्थाधिराज के द्वार पर एक व्याघ्री आकर अनशन कर के बैठ गई और ७-८ दिन की आराधना से स्वर्ग गई। उसका देह सस्कार अगर चंदन से करके प्रतोली के दक्षिण की ओर उसकी मूर्ति स्थापित की गई।

४४ अम्बिकादेवी कल्प—गिरनार पर अम्बिका शिखर दूसरी टोक प्रसिद्ध है। अम्बिका कोडीनार के ब्राह्मण सोम की भार्या थी जो जैन धर्म परायणा थी। श्राद्ध के दिन ब्रह्म भोज से पूर्व मुनिराज को आहार देने से क्रुद्ध सास और पति द्वारा अपमानित होकर अपने सिद्ध-वुद्ध पुत्रो के साथ निकल कर जाते हुए पीछे से पति को आते देख मार्गवर्त्ती कुएँ मे गिर गई और नेमिप्रभु के ध्यान से मर कर गिरनार की अधिष्ठातृ अम्बिका देवी हुई। सोमभट्ट भी महासती के पीछे कूद पडा जो देव हुआ और सिंहरूप धारण कर देवी का वाहन हो गया। अम्बिका को कोहडी भी कहते हैं।

अवशिष्ट कल्पो मे कुछ सैद्धान्तिक विषयो सम्बन्धी हैं। किसी कारण से उनका इस ग्रन्थ मे संग्रह कर लिया गया है पर वे तीर्थो सम्बन्धी नही होने से उनको अलग रखा जाना ही अधिक समीचीन होता। समय-समय पर कल्प रचे जाते रहे अतः इनमे कुछ तारतम्य है। अनुक्रम ठीक से नही रह सका, प्रान्तीय वर्गीकरण भी नही हो सकता। स० १३९० मे जव इन सबको दिल्ली मे सगृहीत कर ग्रथ का रूप दिया गया तब आजकल की भाँति कोई क्रम ठीक वैठाया नही जा सका और मुनि जिनविजय जी ने भी

वैसा कोई क्रम नही वैठाया जो सम्पादकीय के नाते उन्हे करना चाहिए था। हमने भी इसी क्रम से अनुवाद किया है। सं १९९० मे मुनि जिन-विजयजी ने जव इस ग्रथ रत्न का अनेक हस्त-लिखित प्रतियो के आधार से सिघी जैन ग्रन्थमाला के ग्रथाक १० के रूप मे प्रकाशित कराया तो अपने निवेदन के अन्त मे वर्त्तमान राष्ट्रभाषा मे द्वितीय अवतार होगा जो ऐतिहासिक अन्वेषण वाले विवेचनादि से अलकृत व स्थान विशेष के चित्रादि से विभूषित होगा पर मुनि जी का वह मनोरथ पूर्ण नही हो सका। अन्त मे तथाविध योग्यता न होने पर भी हमने ऐसे ग्रन्थ का हिन्दी मे अनुवाद प्रकाशित होना चाहिए इस प्रवल भावना से यह अन-धिकार सा कार्य किया है इसमें जो त्रुटियाँ रही हो उसके लिए क्षमा प्रार्थी हूँ। विशेषज्ञ हमे सशोधनादि सूचित करेंगे। ऐसी आशा है।

प्रस्तुत ग्रन्थ की प्रस्तावना डा० ज्योति प्रसाद जी जैन जैसे जैनइतिहास के विशिष्ट विद्वान् ने हमारे अनुरोध पर लिख भेजने की कृपा की है उसके लिए अत्यन्त आभारी हूँ।

प्रस्तुत ग्रन्थ के परिशिष्ट मे हम इस विषय की वर्षों की सचित सामग्री देना चाहते थे पर जो कुछ सामग्री दी गई है उससे भी ग्रन्थ का आकार काफी वडा हो गया है इसलिए अन्य सामग्री को देने का लोभ सवरण करना पडा है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन मे श्री नाकोडा पार्श्वनाथ जैन तीर्थ के अध्यक्ष एव ट्रस्टियो व सदस्यो ने वहुत रुचि दिखाई और प्रकाशन का सारा खर्च वहन किया इसके लिए हम उनके वहुत ही आभारी हैं।

इस ग्रन्थ मे श्वे० जैन तीर्थो सम्वन्धी वहुत से चित्र देने की

इच्छा रही पर सब तीर्थो के फोटो प्राप्त करना सम्भव नही हुआ अत जिन जिन तीर्थो के जितने ब्लाक जैन भवन, कलकत्ता श्रीजैन सेवा समिति व श्री महेन्द्र कुमार सिंघी से प्राप्त हुए उन्हे साभार प्रकाशित किए है।

इस ग्रथ का मुद्रण श्री महावीर प्रेस, वाराणसी मे हुआ है वहाँ से प्रत्येक फर्मे का प्रूफ मगाने मे पर्याप्त विलम्ब होता इसलिए वही.प्रूफ सशोधन कर छापे गये अत बहुत सी अशुद्धिया रह गई जिसका हमे खेद है।

अन्त मे जिन जिनसे भी हमे सहयोग मिला है उन सबके प्रति आभार प्रकट करते हुए जैन तीर्थो सम्बन्धी अवशिष्ट सामग्री भी हम शीघ्र प्रकाशन करने मे समर्थ हो यही शुभेच्छा है।

इस ग्रन्थ का अनुवाद कलकत्ता मे परमपूज्या विदुषी आर्यारत्न श्री सज्जनश्री जी महाराज के सानिध्य मे हुआ। पूज्य प्रेरणा सम्राट् काकाश्री अगरचद जी नाहटा का आदेश मिला कि इस महान् ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद करो। तो पर्यूषण मे प्रारम्भ करके प्रतिदिन अनुवाद को पूज्या साध्वी जी महाराज के पास बैठ कर मिला लेता व जहाँ भी गाडी अटकती महाराज साहब उसको चला देते इस प्रकार दीवाली के पूर्व इसका अनुवाद पूर्ण हो गया और प्रेस कापी बनाकर काकाजी अगरचदजी को भेज दी। उन्होने महोपाध्याय विनयसागर जी आदि को भी दिखलाया तथा श्रीयुत् देवेन्द्रराजजी मेहता ने भी प्राकृत भारती से प्रकाशन मे बडी उत्सुकता दिखाई पर अन्त मे काकाजी अगरचद जी की प्रेरणा से नाकोडा तीर्थ कमेटी को ही इसके प्रकाशन का श्रेय मिला। प्राकृत तित्थकप्प जो अपूर्ण और अव्यवस्थित रूप मे मिला उसके

परिशिष्ट १

मूल और अनुवाद संशोधन मे मुनि श्री नेमिचद्रजी ने मौन, उपवास रहते हुए भी समेत शिखर जी मे उल्लेखनीय सहयोग दिया। इसके लिए उनका भी आभार व्यक्त करना आवश्यक समझते हैं।

विनीत
भँवरलाल नाहटा

अनुक्रमणिका

●

विविध तीर्थ-कल्प

१. शत्रुञ्जय तीर्थ-कल्प

श्री पुण्डरीक गिरि शिखर के प्रासाद के अलङ्कारभूत श्री ऋषभदेव आप सबका कल्याण करे। अतिमुक्त केवली ने नारद ऋषि के समक्ष जो श्री शत्रुञ्जय तीर्थ का माहात्म्य कहा था, उसे मै अपनी और दूसरो की स्मृति के लिए लेश मात्र कहूगा। भव्य जनो को पाप नष्ट करने की इच्छा से उसे श्रवण करना योग्य है।

शत्रुञ्जय पर पाँच कोटि तपस्वियो के साथ श्री पुण्डरीक स्वामी चैत्री-पूनम के दिन सिद्ध हुए अत. यह पर्वत भी पुण्डरीक (गिरि) नाम से स्मरण किया गया।

देवो, मनुष्यो और ऋषियो द्वारा उस तीर्थ के १. सिद्धक्षेत्र, २ तीर्थराज, ३. मरुदेव, ४. भगीरथ, ५ विमलाचल, ६ बाहूबली, ७ सहस्रकमल, ८. तालध्वज, ९. कदम्ब, १० शतपत्र ११. नगाधिराज, १२ अष्टोत्तरशतकूट, १३. सहस्रपत्र, १४ ढङ्क, १५ लौहित्य, १६. कपर्दिनिवास, १७ सिद्धिशेखर, १८ शत्रुञ्जय, १९ मुक्तिनिलय, २० सिद्धि पर्वत, और २१. पुण्डरीक ये इक्कीस नाम किये हुए गाये जाते हैं।

ढंक आदि पाँच कूट देवो सहित हैं और जिनके विवरो में रसकूपिका, रत्नखान और औषधियाँ विराजित है। काल के प्रभाव से मिथ्यादृष्टि लोगो द्वारा, [1]ढक, [2]कदम्ब, [3]लौहित्य, [4]तालध्वज और [5]कपर्दि ये पाँचो स्वीकृत किए हुए हैं। अर्थात् उनके अधिकार मे हैं।

इसका विस्तार अवसर्पिणी काल मे आप्तो ने पहले आरे मे अस्सी योजन, दूसरे मे सत्तर, तीसरे मे साठ, चौथे आरे मे पचास, पाँचवे आरे मे वारह योजन और छट्ठे आरे मे सात हाथ का कहा है।

युगादीश-ऋषभदेव के समय यह पर्वत पचास योजन मूल, दश योजन विस्तार और आठ योजन ऊँचा था। कीर्ति से भुवन को पवित्र बनाने वाले ऋषभसेनादि असंख्य नाथ तीर्थंकर यहाँ पर समौसरे हैं और अतीत काल मे महर्षि लोग सिद्ध हुए हैं। श्री पद्मनाभादि भावी जिनेश्वरो का यहाँ समवसरण होगा।

श्री नेमिनाथ भगवान को छोडकर ऋषभदेव से लेकर महावीर स्वामी पर्यन्त तेईस तीर्थङ्कर यहाँ समौसरे हैं।

इस अवसर्पिणी में पवित्र बुद्धिवाले श्री भरत चक्रवर्ती ने आदीश्वर भगवान के केवलज्ञान उत्पन्न होने पर इस पर्वत पर योजन प्रमाण ऊँचा चैत्य कराया था जो आदीश्वर भगवान की अक रत्न की प्रतिमा और बाईस छोटी देवकुलिकाओ मे सोने चाँदी की बाईस तीर्थंकरो की प्रतिमाओ से युक्त था।

बाईस तीर्थङ्करो की तदाकार पादुका और लेप्य निर्मित विम्व-युक्त आयतनश्रेणी यहाँ सुशोभित है। यहाँ राजा श्री बाहूवली ने समवसरण सहित मरुदेवी का ऊँचा प्रासाद कराया था।

इस अवसर्पिणी मे प्रथम तीर्थङ्कर के प्रथम गणधर, प्रथम भरत चक्रवर्ती के प्रथम पुत्र पुण्डरीक स्वामी यहाँपर सर्वप्रथम सिद्ध हुए।

यहाँ नमि-विनमि नामक विद्याधरेन्द्र महर्षि दो कोटि मुनियो के साथ सिद्ध को प्राप्त हुए। द्राविड़ और वालिखिल्लादि राजाओ ने दश कोटि साधुओ के साथ यहाँ परम पद को प्राप्त किया।

जय, राम आदि तीन कोटि राजर्षि यहाँ पधारे, नारदादि एक लाख नव्बे मुनि शिव पद को पाये। यहाँ प्रद्युम्न, शाम्ब आदि कुमार साढे आठ कोटि साधुओ के साथ मोक्ष गए।

पचास लाख कोटि सागरोपम तक श्री ऋषभदेव के वशज आदित्ययश (सूर्ययश) से लेकर सगरपर्यन्त राजागण परम्परा से यहाँ चौदह लाख मोक्ष गए तथा असख्यात सर्वार्थसिद्ध मे गए।

भरत के वशज शैलक और शुकादि यहाँ असख्यात कोटा-कोटि परिमाण मे सिद्ध हुए। यहाँ अर्हत् प्रतिमोद्धार कराने वाले पाँच पाण्डव, कुन्तीसहित वीस कोटि मुनियो के साथ मोक्ष गए।

दूसरे तीर्थंकर अजितनाथ व सोलहवे तीर्थंकर शातिनाथ ने यहाँ वर्षाकाल-चातुर्मास विताया। श्री नेमिनाथ के वचनो से यात्रा के लिए आये हुए नन्दिषेण आचार्य ने यहाँ सर्वरोगहर 'अजित शान्ति स्तव' की रचना की।

इस महातीर्थ के छोटे-मोटे असख्य उद्धार हुए तथा यहाँ पर असख्य प्रतिमाएँ और असख्य चैत्यो का निर्माण हुआ।

छोटे तालाब-कुण्ड तथा भरत कारित गुफाओ मे भक्तिपूर्वक पूजन-वदन करने वाले एकावतारी होते हैं।

सप्रति विक्रमादित्य-सातवाहन-वाहड-पादलिप्त-आम और दत्त के कराये उद्धार प्रसिद्ध है। इसे महाविदेह निवासी सम्यक् दृष्टि भी स्मरण करते हैं, ऐसा कालिकाचार्य के समक्ष शक्रेन्द्र ने कहा था।

यहाँ श्री जावडशाह के बिम्बोद्धार के समय बने श्री अजितनाथ आयतन के स्थान पर अनुपमा सरोवर हुआ।

यहाँ कल्लिका प्रपौत्र मेघघोष राजा मरुदेवा और शान्तिनाथ के भवन का उद्धार करावेगा। इसके अन्त मे दुष्प्रसहसूरि जी के उपदेश से राजा विमलवाहन उद्धार करावेगा। (पंचम ओर के शेप मे) तीर्थोच्छेद होने पर भी यह ऋपभकूट यहाँ देवार्चित पूजायुक्त पद्मनाभ तीर्थंकर पर्यन्त रहेगा।

तीर्थ के माहात्म्य से यहाँ के रहने वाले विशदाशय तिर्यञ्च भी प्राय निष्पाप होकर सद्गति प्राप्त करते हैं। इस तीर्थके स्मरण

मात्र से मनुष्यो के सिंह-अग्नि-समुद्र-साँप-भूपाल-विष-युद्ध-चोर-वैरी-मारिजन्य भय नष्ट हो जाते हैं।

भरतेश्वर की बनवायी लेप्यमय आदिनाथ प्रतिमा का उत्संग शय्यास्थ एव आत्मस्थ होकर ध्यान करने से सर्वभयो को जीतने वाला होता है। उग्रतप व ब्रह्मचर्य से जो पुण्य की प्राप्ति होती है, वही शत्रुञ्जय मे निवास करने से प्राप्ति होती है।

तीर्थों पर करोडो के व्यय से कामित आहार देने का पुण्यफल यहाँ विमलाचल पर एक उपवास करने पर प्राप्त हो जाता है। तीन लोक मे जो कुछ भी तीर्थ है—पुण्डरीक गिरि का अभिवदन-दर्शन करने मात्र से उन सबके दर्शन हो जाते है।

सैंकडो दानशालाओ मे भोजन होने पर भी यहाँ कभी अरिष्ट पक्षी-कौए नही आते। यहाँ यात्रा पर जाते लोगोको भोजन देने पर करोड गुणा पुण्य होता है और यात्रा करके लौटते हुए को भोजन देने पर अनन्तगुणा पुण्य होता है।

विमलाचल को देखे विना भी सघ को प्रतिलाभ देने पर कोटि गुणा पुण्य व देखने पर अनन्त गुणा पुण्य होता है।

इसी तीर्थ को वदन करने पर तीर्थंकरो के केवलज्ञान व निर्वाण जहाँ हुए हैं, उन सभी तीर्थो की वदना हो जाती है।

जन्म-दीक्षा-ज्ञानोत्पत्ति-मोक्षगमन उत्सव दूसरे तीर्थो मे पृथक्-पृथक् होते हैं किन्तु यहाँ सभी एक साथ होते है।

अयोध्या, मिथिला, चम्पा, श्रावस्ती, हस्तिनापुर, कौशाम्बी, काशी, काकन्दी, कम्पिल, भद्दिलपुर, रत्नवाह—शौरीपुर, कुण्ड-ग्राम, पावापुरी, चन्द्रानना, सिंहपुर, राजगृह, रैवतक, सम्मेत-शिखर, वैभार, अष्टपदादि तीर्थो की यात्रा के फल से यहाँ की यात्रा करने से सौ गुना फल होता है।

पूजा के पुण्य से सौ गुणा पुण्य, विम्वनिर्माण से एवं चैत्य निर्माण से सहस्र गुणा व प्रतिपालन से अनन्त गुणा पुण्य होता है।

जो इस तीर्थ-शिखर पर प्रतिमा या मन्दिर बनवाता है वह भारतवर्ष की ऋद्धि भोगकर स्वर्गश्री प्राप्त करता है।

नमस्कार-सहित तपश्चर्यादि करता हुआ मनुष्य पुण्डरीक गिरि की स्मृति से उत्तरोत्तर तप फल प्राप्त करता है।

त्रिकरण शुद्धि पूर्वक इस तीर्थ को स्मरण करने वाला मनुष्य छःमासी तप का फल प्राप्त करता है।

आज भी पुण्डरीक गिरि पर उत्तम अनशन करके शीलरहित भी सुखपूर्वक स्वर्ग प्राप्त करता है।

यहाँ छत्र, चामर, कलश, ध्वज, स्थाल का दान करने वाला विद्याधर एवं रथदान करने वाला चक्रवर्ती हो जाता है।

भावशुद्धिपूर्वक यहाँ दश पुष्पमालाओ को देने वाला भोजन करता हुआ भी उपवास का फल प्राप्त करता है।

दुगुणा देने से छट्ठ तप, त्रिगुणा से अष्टम, चौगुना देने से दशम, पाँच गुणा से द्वादश और क्रमशः बढते-बढते देने से फल की भी उत्तरोत्तर वृद्धि कही गई है।

विमलाचल पर स्नान पूजा मात्र से जो पुण्य होता है, अन्य तीर्थो मे वह स्वर्ण-भूषण और भूमिदान करने से भी नही होता।

यहां धूप खेने से पक्षोपवास का फल और कर्पूर-पूजा से मासक्षमण का फल प्राप्त करता है।

यहाँ निर्दोष भोजनादि से साधुओ को प्रतिलाभने से कार्त्तिक-मासक्षमण का फल होता है। तीनो काल मंत्र पूर्वक स्नान करके चैत्र व आश्विन मे "नमोऽर्हद्भ्य" पद का ध्यान करने से तीर्थंकर पद अर्जन करता है।

पालीताना नगर में पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी के दो जिनालय है और जिनके नीचे नेमिनाथ भगवान का महान् आयतन है।

मन्त्रीश्वर वाग्भट ने तीन करोड तीन लाख स्वर्ण व्यय कर

आदीश्वर भगवान के प्रासाद का उद्धार करवाया। यहाँ तीर्थ मे प्रवेश करते ही पहले आदीश्वर भगवान की विशद प्रतिमा के दर्शन करने पर आँखे तृप्त होती है।

श्री विक्रमादित्य से एक सौ आठ वर्ष बीतने पर जावडशाह ने प्रचुर द्रव्य व्यय करके प्रतिमा को विराजमान किया। और उसने मम्माण पर्वत मे उत्पन्न चमकीली कान्ति वाले मम्माण रत्न पाषाण के ज्योतिरस रत्न द्वारा प्रतिमा घटित—निर्माण करवाई।

मधुमती नगर निवासी सेठ जावड ने पहिले श्री वज्रस्वामी से शत्रुञ्जय का माहात्म्य सुना था। वह गन्धोदक स्नान कराने की रुचि से लेप्यमय बिम्ब का विचार कर चक्रेश्वरी देवी को स्मरण करके मम्माण पर्वत की खान मे गया और वहाँ से पाषाण की प्रतिमा बनवा कर रथ मे आरोपण कर शुभ दिन मे भार्या-सहित विमल गिरि की ओर चला। दिन मे प्रतिमा सहित रथ जितना रास्ता चलता था, उतना ही रात्रि मे वापस लौट आता था। यह आश्चर्य देखकर जावडसाह का चित्त खिन्न हो गया और उसने कपर्दि-यक्ष का स्मरण किया। और उसके हेतु और विधि को ज्ञात कर वह अपनी पत्नी के सहित रथ के मार्ग मे टेढा सो गया। उसके साहस से प्रसन्न हुए देवता ने रथ को बिम्ब सहित पहाड के शिखर पर चढा दिया। सात्त्विको के लिए कुछ भी दु साध्य नही है।

मूलनायक का उत्थापन करके उनके स्थान पर मम्माणी पाषाण की प्रतिमा स्थापन करने पर लेप्य बिम्ब के भयकर शब्द से पर्वत के टुकडे हुए और उनके द्वारा छोडी हुई बिजली श्रेष्ठी के बिम्ब ने हाथ मे लेकर मर्दन कर दी। वह सीढियो में छेद करती हुई पहाड के देश को भेद कर निकल गई।

जावड सेठ चैत्य शिखर पर पत्नी सहित चढकर प्रमोद से

हर्ष रोमाञ्चित हो नाचने लगा। म्लेच्छ देश से १८ जहाज आये, जिनका द्रव्य व्ययकर सेठ ने यह धर्म-प्रभावना की। इस प्रकार जावडशाह ऋषभदेव, पुण्डरीक और कपर्द्दि यक्ष की मूर्त्तियाँ विराजमान कर स्वर्ग का अतिथि बना। भगवान के दाहिनी ओर पुण्डरीक स्वामी और बाँये तरफ जावड शाह द्वारा स्थापित दूसरा बिम्ब सुशोभित है।

इक्ष्वाकु और यादव वंशी लोग यहाँ असख्य कोटा-कोटि सिद्ध हुए है जो 'कोटि-कोटि तिलक' नाम को सूचित करते हैं।

पाँचो पाण्डव, उनकी माता कुन्ती यहाँ से मुक्त हुए, यह इस तीर्थ पर रही हुई टोंक पर लेप्यमय छहो मूर्त्तियाँ सिद्ध करती हैं।

यहाँ श्रीसघ के अद्भुत भाग्य से रायण चैत्य वृक्ष चन्द्र-किरणो से झरते अमृत के सदृश दुग्धवर्षा करता है। यहाँ व्याघ्री-मयूर आदि तिर्यञ्च भी मुक्त भक्ति पूर्वक आदीश्वर भगवान के चरणो को नमस्कार करने से स्वर्ग को प्राप्त हुए है। वाम पार्श्व मे सत्यपुरीय महावीरावतार जिनालय और दक्षिण पार्श्व मे शकुनि चैत्य के पृष्ठ भाग मे अष्टापद का मदिर है। भव्य जन सरलता-पूर्वक यात्रा कर पुण्य वृद्धि करे, इस हेतु से नन्दीश्वर, स्तंभनक और गिरनार महातीर्थ के मन्दिर विराजमान हैं। अस्तिहस्त नमि और विनमि से सेवित श्री नाभेय जिनेश्वर स्वर्गारोहण चैत्य में शोभायमान हैं। दूसरे उत्तुग शिखर को श्रेयास, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, ऋषभदेव और महावीर आदि जिनेश्वर अलकृत करते है। पुण्यशाली जन यहाँ जिनालय में ससार का उच्छेद करने वाली भगवती मरुदेवी को नमस्कार करके अपने आपको कृतकृत्य मानते हैं।

यहाँ कल्पवृक्ष सदृश कपर्द्दि नामक यक्षराज नमस्कार करने वालो एव यात्रीसंघ के विविध विघ्नो का नाश करते है।

यहाँ पर भगवान नेमिनाथ के आदेश से श्रीकृष्ण ने आठ

दिन उपवास करके पर्वत गुफा में रहे और कर्पद्दि यक्ष का आराधन कर तीन विम्बो को पर्वतगुफा मे छिपाकर रखा। सुनते है कि आज भी शक्रेन्द्र वहाँ आते हैं और पूजा करते हैं।

पाण्डवो द्वारा स्थापित श्री ऋषभदेव के उत्तर दिशा की ओर वह गुफा आज भी चेलना तलाई तक विद्यमान है। यक्ष के आदेश से प्रतिमाओ के दर्शन होते हैं।

यहाँ भगवान अजितनाथ और शान्तिनाथ वर्षावास रहे थे। वहाँ उनके दो पूर्वाभिमुख चैत्य थे, अजितनाथ चैत्य के निकट अनुपमा सर हुआ। मरुदेवी के पास आँखो को शीतल करनेवाला शान्तिनाथ चैत्य भव्य प्राणियो की भव-भ्रान्ति को दूर करता है।

श्री शान्तिनाथ जिनालय के आगे तीस हाथ पर सात पुरुष नीचे सोने और रूपे की दो खाने हैं। वहाँ से सौ हाथ आगे पूर्व द्वार वाली सिद्ध रस से भरी हुई आठ हाथ नीचे रसकूपिका है। श्री पादलिप्ताचार्य ने तीर्थोद्धार के लिए उसके समीप स्वर्ण और रत्न स्थापित किए थे। पूर्व दिशा मे ऋषभदेव के नीचे ऋषभकूट से ३० धनुष जाकर अष्टम तप पूर्वक वलिविधान आदि करने पर वैरुट्या देवी वह धन दिखलाती है। उनकी आज्ञा से शिला उघाड कर रात्रि मे वहाँ प्रवेश किया जाता है। वहाँ उपवास करने से सर्वसिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। ऋषभदेव भगवान् का पूजन वदन करने से (भव्य प्राणी) एकावतारी होता है। पाँच सौ धनुष आगे पाषाणकुण्डिका है, वहाँ सात पद जाकर बुद्धिमान को वलिविधि करनी चाहिए। किसी-किसी पुण्यशाली को वहाँ शिलोत्पाटन कर दो उपवास करनेपर रसकूपिका प्रत्यक्ष होती है।

कल्कि का पुत्र परमार्हत् धर्मदत्त होगा, वह प्रतिदिन जिन-विम्ब की प्रतिष्ठा कराके भोजन करेगा। उसका पुत्र जितशत्रु राजा शत्रुञ्जय का उद्धार करेगा और वह वत्तीस वर्ष राज्य-लक्ष्मी का भोग करेगा। उसका पुत्र मेघघोष यहाँ कर्पद्दि यक्ष के

आदेश से श्री शान्तिनाथ और मरुदेवी के चैत्य का उद्धार करेगा। नन्दिसूरि, आर्य श्रीप्रभ, मणिभद्र, यशोमित्र, धनमित्र, विकटधर्म, सुमङ्गल और सूरसेन इस तीर्थ के उद्धार कराने वाले होंगे जो दुष्प्रसहसूरि के समय होने वाले विमलवाहन से पहले उद्धार करेंगे।

जो यहाँ यात्रियो को कष्ट देते हैं अथवा उनका धन अपहरण करते है वे अपने पाप के भार से वश सहित घोर नरक मे पडते हैं। यहाँ यात्रा-पूजा-तीर्थ द्रव्य की रक्षा और यात्री सघो का सत्कार करने वाला, गोत्रसहित स्वर्ग लोक मे पूजा जाता है।

यहाँ पर वस्तुपाल और पेथड आदि के वनवाये हुए धर्म-स्थानो का वर्णन करते हुए वक्ता पार नही पा सकता है। दूषक-काल के प्रभाव से म्लेच्छो द्वारा इसके भविष्य मे भग होने की सभावना करके मन्त्री वस्तुपाल एव तेजपाल—वुद्धिमानो—ने ऋषभदेव व पुडरीक स्वामी की प्रतिमाएँ मम्माणी पाषाण की वनवा कर भूमिगृह मे रख दी थी।

कलिकाल के प्रभाव से स० १३६९, वैक्रमीय मे म्लेच्छो ने जावड स्थापित बिम्ब को भग कर दिया। इसके वाद स० १३७१ मे समरा शाह ने मूलनायक बिम्ब का उद्धार किया।

इस तीर्थ पर जो सघपति हो गए हैं, हो रहे हैं, और भविष्य मे होगे, वे धन्य है। वे चिरकाल तक लक्ष्मी से समृद्ध रहे।

श्री भद्रवाहु स्वामी ने पहले 'कल्प पाहुड' से श्री शत्रुंजय कल्प वनाया था और उनके वाद श्री वज्रस्वामी ने और फिर पादलिप्ताचार्य ने भी वनाया। उन्ही कल्पो से उद्धृत कर सक्षेप से श्री जिनप्रभ सूरि ने यह श्री शत्रुजय कल्प प्रणीत किया है।

इस कल्प को वाचने, ध्यान करने, व्याख्यान करने, पढने और श्रवण करने पर भक्तिशाली भव्य तीसरे भव मे सिद्धि प्राप्त करते हैं।

हे शत्रुजय शैलेश ! तुम्हारे गुण कौन विद्वान थोडा-सा भी कहने मे समर्थ हो सकते हैं ? इस तीर्थ के प्रभाव से यात्रा करने वाले और नमस्कार करने वाले मनुष्य के मन-परिणाम शुभ होते हैं और वृद्धिगत होते हैं।

हे गिरिराज ! तुम्हारी यात्रा को चलते हुए सघ के रथ, घोडे, ऊँट और मनुष्यो के चरणो से पवित्र हुई रज भव्य-जनो के अग मे लगने पर पाप को नष्ट करती है। अन्यत्र मासक्षमण करने पर जितने पापो का क्षय होता है उतना आपको नमस्कार करने मात्र से हो जाता है।

श्री नाभेय-ऋषभ के द्वारा जहाँ निवास किया गया है और इन्द्र से प्रशसित वैभव वाला है, ऐसे हे गिरिराज ! हे सिद्धक्षेत्र ! मन वचन और काया से तुम्हे नमस्कार करता हूँ। मैंने सरल मन से तुम्हारा कल्प वना कर जो पुण्य अर्जन किया है, उससे सारा विश्व वास्तविक सुख वाला वने।

पोथी मे रहे हुए इस कल्प को जो पूजेगा उसे समस्त इच्छित सम्पत्तियाँ और सिद्धि प्राप्त होगी।

इसके प्रारभ करने पर संघ मे 'राजाधिराज' प्रसन्न हुए थे, इसलिये यह 'राजप्रासाद' नामक कल्प चिरकाल पर्यन्त जयवन्त रहे।

स० १३८५ वैक्रमीय मे ज्येष्ठ शुक्ल ७ शुक्रवार को यह कल्प पूर्ण किया।

२. रैवतगिरि-कल्प संक्षेप

श्री नेमिनाथ जिनेश्वर को मस्तक नमाकर—नमस्कार कर, रैवतगिरिराज—गिरनार का कल्प जैसा श्री वज्रस्वामी के शिष्य और पादलिप्त सूरि ने कहा है, (कहूँगा)।

छत्रशिला के समीप शिलासन पर भगवान श्री नेमिनाथ ने दीक्षा ली, सहस्राम्रवन मे उन्हे केवलज्ञान हुआ, लक्खाराम मे मे देशना दी और 'अवलोकन' के उच्च शिखर पर निर्वाण पाये। रैवतगिरि की मेखला मे श्रीकृष्ण ने वहाँ तीन कल्याणक के स्वर्ण-रत्नमय प्रतिमालकृत जीवित स्वामी के तीन चैत्य कराके अम्विका देवी (प्रतिमा) भी कराई। इन्द्र ने भी वज्र से पहाड को कोर के स्वर्ण बलानक और रौप्यमय चैत्य, रत्नमय वर्ण और प्रमाणोपेत्त प्रतिमा, अम्बा शिखर पर रंगमण्डप, अवलोकन शिखर, बालानक मण्डप मे शाम्ब ने इतने कराये। श्री नेमिनाथ के मुख से निर्वाण स्थान ज्ञातकर निर्वाण के पश्चात् श्रीकृष्ण ने सिद्धविनायक प्रतिहार की प्रतिमा स्थापित थी। तथा दामोदर के अनुरूप १ कालमेघ, २ मेघनाद, ३. गिरिविदारण ४ कपाट, ५ सिंहनाद, ६ खोडिया और ७ रैवत तीव्रतप क्रीडन से क्षेत्रपाल उत्पन्न हुए। इनमे मेघनाद सम्यग्दृष्टि और भ० नेमिनाथ का चरणभक्त है। गिरिविदारण ने कचन बालानक मे पाँच उद्धार विकुर्वण किये। वहाँ एक अम्बा देवी के आगे उत्तर दिशा मे एक सौ सात कदम पर गुफा है, जहाँ अष्टम तप करके वलि-विधानपूर्वक शिला उठाने पर बीच में गिरिविदारण प्रतिमा है। वहाँ से पचास कदम जाने पर बलदेवकारित शाश्वत जिनप्रतिमा को नमस्कार कर उत्तर

दिशा में पचास कदम जाने पर तीन वारी आती है। पहली वारी तीन सौ कदम जाने पर गोदोहनासन से प्रविष्ट हो पाँच उपवास पूर्वक भ्रमर रूप दारुण सत्त्व से उठाकर सात कदम अधोमुख प्रवेश करके वालानक मण्डप मे इन्द्र के आदेश से धनद कारित अम्बा देवी की पूजा करके स्वर्ण जाली मे स्थापन करना। वहाँ स्थित होकर मूलनाथ श्री नेमिनाथ जिनेन्द्र को वन्दन करना चाहिए। दूसरी वारी मे एक पाद पूजा करके स्वयवर वापी से नीचे चालीस कदम जाने पर मध्यवारी आती है। वहाँ से सात सौ कदम पर एक कुँआ है। वहाँ वर हंस स्थित होकर यहाँ भी मूलनायक को वन्दन करना। तीसरी वारी का मूल द्वार-प्रवेश अम्वा देवी के आदेश से होता है, अन्यथा नही। ऐसा वचन वालानक का मार्ग है और वहाँ अम्बा के आगे वीस हाथ पर विवर है। अम्वा देवी के आदेश से यहाँ तीन उपवास पूर्वक शिलोद्घाटन द्वारा वीस हाथ जाने पर सात सम्पुट और पाँच पेटियो के नीचे रसकूपिका है, जो प्रत्येक अमावस्या के दिन खुलती है। यहाँ भी तीन उपवास करके अम्वा देवी के आदेश से वलिविधान-पूजन करके (रस) ग्रहण करना चाहिए।

इसी प्रकार जीर्णकूट पर तीन उपवास करके वलिपूजन द्वारा सरल मार्ग से सिद्ध विनायक उपलब्ध होता है। और वहाँ चिन्तित कार्य की सिद्धि होती है। यदि वैसे प्रत्यक्ष हो जाय तो एक दिन ठहरना चाहिए। वैसे हो राजिमती गुफा से एक सौ कदम पर गो-दोहिका (आसन) द्वारा रसकूपिका और कृष्ण चित्रकवल्ली हैं एव राजीमती की प्रतिमा रत्नमय है और अम्बिका की भी वहाँ है, अनेक रूप्यमय औषधियाँ भी वहाँ रही हुई है।

वहाँ छत्रशिला, घटशिला और कोटिशिला—तीन शिलाएँ वतलाई है। छत्रशिलाके वीचो-वीच कनकवल्ली है। सहस्राम्रवन

मे रजत-स्वर्णमय चौवीस एवं लक्खाराम में चौबीस जिनेश्वरो की वहत्तर गुफाएँ कही हैं।

कालमेघ के आगे स्वर्णवालुका नदी से तीन सौ आठ कदम उत्तर दिशा मे जाकर गिरि-कन्दरा मे प्रविष्ट होकर जल से स्नान करके उपवासपूर्वक रहने से द्वार खुलता है। प्रथम द्वार मे स्वर्ण-खान, दूसरे द्वार मे रत्न-खान है जो सघ के लिए अम्बा देवी द्वारा विकुर्वित है। वहाँ कृष्ण के पाँच भण्डार है, अन्य दामोदर के समीप हैं। अंजनशिला के अधोभाग में वीस पुरुष नीचे रजत-स्वर्ण-धूलि वतलायी है।

उसके पश्चिम मे मगलक देवदाली है जिससे रस-सिद्धि होती है। संघ के समुद्धार कार्य के लिए श्री वज्रस्वामी ने वतलाई है।

शस्य कड़ाह मे लेकर कोटिविन्दु का सयोग करने पर घण्ट-शिला चूर्ण के योग से अजन-सिद्धि होती है।

विद्यापाहुड उद्देशक से रैवत कल्प समाप्त हुआ। (ग्रथाग्र० ३८)

●

३. श्री उज्जयन्तस्तवः

श्री रैवतक, उज्जयन्त आदि नामो से प्रसिद्ध, श्री नेमिनाथ भगवान द्वारा पवित्रित श्री गिरनार गिरीश्वर की स्तवना करता हूँ।

भुवन मे यह स्थान सौराष्ट्र देश नाम से विख्यात है जिसकी भूमि रूपी कामिनी के ललाट पर यह गिरिराज तिलक के समान है।

इसकी उपत्यका मे ऋषभदेवादि (जिनालयो से) अलंकृत खंगार दुर्ग है और भगवान पार्श्वनाथ भूषित तेजलपुर है ।

इसके दो योजन ऊँचे शृंग पर जिनालयो की श्रेणी शरच्चन्द्र की किरणो जैसी निर्मल पुण्यराशि की भाँति सुशोभित है ।

यहाँ श्री नेमिनाथ का सुन्दर चैत्य है और उसपर स्वर्णमय दण्ड-कलश और आमलसार सुशोभित है ।

यहाँ शिवादेवीनन्दन श्री नेमिनाथ भगवान् की चरणपादुका के दर्शन, स्पर्शन और पूजन से शिष्ट लोगो के पाप-व्यूह नष्ट होते हैं ।

विशाल राज्य को पुराने तृण की भाँति छोडकर व स्नेहपूर्ण बन्धुओ को त्याग कर प्रभु ने यहाँ महाव्रत स्वीकार किये ।

उन प्रभु ने यही केवलज्ञान पाया और वे जगज्जनो का हित-साधन कर यही से मोक्ष प्राप्त हुए । अतएव यहाँ मन्त्रीश्वर श्री वस्तुपाल ने भव्य जनो के चित्त मे चमत्कृति करनेवाले तीन कल्याणक मन्दिरो का निर्माण कराया ।

यहाँ जिनेश्वर की प्रतिमाओ से पूर्ण इन्द्र-मण्डप मे श्री नेमिनाथ भगवान का स्नान कराते हुए लोग इन्द्र की तरह लगते हैं ।

इस गिरिराज पर अमृतमय जल से पूर्ण गजेन्द्रपद नामक कुण्ड है, जहाँ के जल से अर्हन्त भगवान का स्नात्र-न्हवण कराया जाता है ।

यहाँ वस्तुपाल के बनवाये हुए शत्रुञ्जयावतार चैत्य मे ऋषभ-देव, पुण्डरीक, अष्टापद और नन्दीश्वर (स्थापित) हैं । स्वर्ण वर्ण वाली सिंहवाहिनी अम्बिका सिद्ध[1] बुद्ध[2] पुत्रो से युक्त है, वह आम्र-लुम्बधारिणी संघ के विघ्न हरण करती है ।

श्री नेमिनाथ प्रभु के चरण-कमलो से पवित्रित अवलोकन नामक शिखर के दर्शन करते भव्यजन कृतार्थता प्राप्त करते हैं ।

जाम्ववती की कुक्षी से उत्पन्न कृष्ण के पुत्र शाम्ब ने और प्रद्युम्न एव महाद्युम्न ने ऊँचे शृग पर दुष्कर तपश्चर्या की। यहाँ नाना प्रकार की औषधियाँ रात्रि मे जाज्वल्यमान-चमचमाहट करती हैं। घण्टाक्षरशिला व छत्रशिला ऊँचे स्थान पर शोभित है।

सहस्राम्रवन व लक्षाराम एव दूसरे भी वनसमूह मयूर, कोयल और भँवरो के सगीत से सुभग लगते हैं।

ऐसा वृक्ष, वल्ली, पुष्प या फल कोई नही है जिसे यहाँ इह-लौकिक विद्वान भी न चाहते हो। जहाँ रथनेमि को उन्मार्ग से सन्मार्ग मे लाया गया था, उस राजिमती की गुफा के अन्दर कौन वंदन नही करते ?

यहाँ पर भव्य जनो द्वारा सम्पन्न पूजा, स्नात्र, दान और तप मोक्ष सुख प्राप्ति के हेतु होते हैं। यहाँ जो इस पहाड़ पर दिग्भ्रम से भी किसी भी मार्ग मे चला जाय तो वह भी चैत्य स्थित जिनेश्वर को स्थापित और पूजित-अर्चित देखता है।

काश्मीर से आये हुए रत्नश्रावक ने यहाँ कुष्माण्डी–अम्बिका के आदेश से लेप्यमय बिम्ब के स्थान पर पाषाणमय नेमिनाथ प्रतिमा स्थापित की।

नदी-झरने-कुण्ड-खानो और लताओ की संख्या को कौन गिनने वाला (गिनती कर सकता) है ? चैत्यो से अलकृत शिखरो वाले रैवतगिरि को नमस्कार हो, जिस महातीर्थ का अभिषेक मुक्तिदायक है।

सूरीन्द्रो से वर्णित और देवताओ के समान प्रभा वाले इस गिरिराज की मैंने स्तुति की है ऐसा गिरनार और रजत-हेम सिद्धि वाली भूमि आप सबको हर्षित करे। कवि ने युक्ति से अपना जिनप्रभसूरि नाम भी इस गाथा मे दे दिया है।

❁

४. उज्जयन्त महातीर्थ-कल्प

सौराष्ट्र देश मे उज्जयन्त नामक रम्य पर्वत है जिसके शिखर पर चढ कर भक्तिपूर्वक नेमि जिनेश्वर को नमस्कार करो।

अम्बिका देवी को न्हवण-अर्चन-गध-धूप-दीपक से पूजन कर प्रणाम करके धनार्थी अर्थ प्राप्त करता है।

गिरिशिखर, कुहर, कन्दरा, झरणे, कपाट, विकट कूपादि मे खत्तवाय को देखो, जैसा कि पूर्वाचार्यो ने कहा है।

कन्दर्प के दर्प को काटने वाले, कुगति दूर करने वाले, भगवान नेमिनाथ का मन्दिर निर्वाण-शिला नाम से जगत मे विख्यात है।

उसके उत्तर की ओर दश धनुप पर अधोमुख विवर है, जिसके द्वार पर चार धनुष नीचे अवदात्न लिंग है, वहाँ पशु मूत्र गन्ध वाला रस है। सौ पल तांबे के साथ मिलाने पर चन्द्रमा और कुन्द के समान उज्वल चाँदी सहसा वन जाती है।

पूर्व दिशा से धनुष्यान्तर पर वैसा ही है जैसे आगे वताया, वह पाषाणमय है और दक्षिण दिशा मे बारह धनुप जाने पर वहाँ हिंगुल वर्ण वाला दिव्य प्रवर रस दिखाई पडता है जो अग्नि के सग से सर्व प्रकार के लोहे को स्पर्श मात्र से ही वेध कर सोना वना देता है।

उज्जयन्त पर विहला नामक नदी है और पार्वती की प्रतिमा है जिसे अगुली से दवाने पर पर्वतीय द्वार खुल जाता है।

उज्जयन्त गिरिराज पर शक्रावतार है जिसके उत्तर की ओर सोपान पक्तियाँ है और कवूतर के वर्ण वाली मिट्टी है। पच गव्य से वाँधकर पिण्डी बनाकर धमन करने पर श्रेष्ठ चाँदी वनती है

जो दारिद्रय व्याधि को नष्ट करती है और दुख-कान्तार से पार लगा देती है।

शिखर के विशाल श्रृग पर जहाँ पाद कुट्टिमा दिखाई पडती है उसके समीप शिखर पर कव्वड-हडा है उस पर पामह नामक चाँदी है।

उज्जयन्त-रैवत वन मे जहाँ सुद्दार वानर है, उसका वाँया कान कटा हुआ है, वह विवर के श्रेष्ठ द्वार को खोल देता है। उस विवर मे प्रविष्ट होकर सौ हाथ जाने पर सुवर्ण वर्ण वाले वृक्ष दिखाई पड़ते है, उनसे नीला रस झरता है वह निश्चय से सहस्रवेधी रस हैं। उसे लेकर निकलते हुए वानर-हनुमत को वाम पाद से स्पर्श करना चाहिए, वह उस श्रेष्ठ द्वार को ढँक देता है जिससे कोई भी मनुष्य जानने नही पाता।

उज्जयन्त शिखर पर कोहडि-अम्बिका गृह विख्यात है उसके पीछे शिला है। उसके दोनो ओर औषधि है जिसे अलसी के तेल से मिश्रित कर (प्रयोग करने पर) वह प्रतिवात वकित अंगो को ठीक कर देती है। जिस पर अंबिका तुष्ट हो जाती है, उसकी दुर्गति व सभी व्याधियाँ दूर हो जाती हैं। वहाँ पर प्रधान मन-शिल वर्णवाली वेगवती नामक नदी है, उसकी मिट्टी को धमन करने पर श्रेष्ठ रजत वन जाती है।

उज्जयन्त पर ज्ञानशिला है, जिसके नीचे सोने के समान वर्ण वाली मिट्टी है, जिसका बकरे के मूत्र मे पिण्ड वनाकर खैर के अंगारो मे धमन करने पर सोना बनता है। ज्ञानशिला के नीचे की मिट्टी पचगव्य से पिण्डी वनाकर हडे के नीचे रस हैं, उससे सहस्र वेध करने पर सोना वनता है। गिरिराज के निकट 'तिल-विसारण नामक औषधि है उसको लाकर शिला पर गाढी बाँवे, उसमे दो लाख द्रम्म प्राप्त होते है। सुवर्ण तीर्थ पर लड्डुअ प्रधान सेना नाम की नदी है, उसके पिण्ड से भी सोना बनता है, इसमें कोई सन्देह नही।

विलक्ष नगर मे मधुक गृह नामक दिव्य शिखर है, उसके बीच मे गणपति रस-कुण्ड है जिसके ऊपर उपवास करके पूजन करने पर गणपति के चलाया हुआ प्रवर-रस "पामापेवी" (?) है और वग को स्तम्भित कर देता है, इसमे सन्देह नहीं।

सहस्राश्रव नामक तीर्थ करज वृक्ष से मनोहर और सुन्दर है। वहाँ पर तुरियाचार नाम के पाषाण है, उसके दो भाग हैं। एक भाग पारदमूत्र से पीसकर अधमूषा मे धमन करने पर चाँदी बन जाती है, जिससे मनुष्य दुःखरूपी कान्तार से पार उतर जाता है।

अवलोकन शिखर की शिला के पीछे वहाँ श्रेष्ठ रस झरता है जो तोते के पख के समान वर्ण वाला है और 'सुव्व' को श्रेष्ठ सोना बना देता है।

प्रद्युम्नगिरि पर अम्बिकाश्रम पद नामक स्थान है, वहाँ भी पीली मिट्टी है और हेमवाद से श्रेष्ठ सोना बनती है।

उज्जयन्त पर जहाँ ज्ञानशिला है और उसके नीचे भी पीली मिट्टी है, उसे 'साहामिय' लेप से छाया मे सुखाने पर सोना बनता है।

उज्जयन्त के प्रथम शिखर पर चढकर दक्षिण की ओर उतरने पर तीन सौ धनुष 'पूतिकर' नाम की गुफा है, उसे उघाड कर निपुण व्यक्ति को देखकर वहाँ जाना चाहिए। वहाँ बारह दण्ड के अन्तर पर जवू फल जैसा दिव्य रस है, जिसे भाड मे सहस्र भाग चाँदी के साथ घोलने पर सहसा बाजारू सोना हो जाता है।

अम्बिका भुवन के पूर्व दिशा से उत्तर दिशा पर्यन्त तापस-भूमि है, वहाँ वासुदेव की पाषाणमय प्रतिमा दीखती है, उससे उत्तर दिशा मे दश हाथ जाने पर पार्वती की प्रतिमा दिखाई पडती है। जिसे अवराह मुहर अगुष्टिका से दवाने पर रास्ता देती है। नौ धनुष प्रवेश करने पर दक्षिणोत्तर दिशा मे कूप

दिखाई पडता है उसमें निश्चय ही हरिताल लक्ष वर्ण वाला सहस्र-वेधी रस है।

उज्जयन्त पर ज्ञानशिला विख्यात है, वहाँ पाषाण है, उसके उत्तर पार्श्व मे दक्षिण अधोमुख विवर है, उसके दश धनुष दक्षिण जाने पर हिंगुल वर्ण वाला शतवेधी रस है सो "सुव्व" को वेध देता है इसमे कोई सन्देह नही।

वृषभ-ऋषभादि कूट पर पाषाण है, वहाँ पर सगम है। हाथी को लीद के साथ स्पर्श करने पर वह सोना बन जाता है। जिनालय के दक्षिण की ओर जानेपर जलुकचरी मिट्टी है, तिर्यञ्च और मनुष्य के रक्त से विद्ध होने पर ताँवे को सोना वना देती है।

वेगवती नामक नदी है, उसमे मनगिल वर्ण वाले पाषाण है। 'सुव्व' को पचवेध करने पर स्रवित होता है और धमन करने पर ताँवे को शीघ्र सोना वना देता है।

यह उज्जयन्त कल्प अविकल्प है, अम्विका को प्रणाम कर जो जिनभक्त करता है वह इच्छित सुख को प्राप्त करता है।

उज्जयन्त महातीर्थ का कल्प समाप्त हुआ।

●

५. रैवतगिरि-कल्प

पश्चिम दिशा मे सौराष्ट्र देश मे पर्वत-राज रैवत के शिखर पर श्री नेमिनाथ भगवान का उत्तुग शिखर वाला भवन है। पूर्वकाल मे वहाँ भगवान नेमिनाथ स्वामी की लेप्यमय प्रतिमा थी। एक वार उत्तरदिशा-विभूषण कश्मीर देश से अजित और रतन

नाम के दो भ्राता सघपति होकर गिरनार आये। उन्होने शीघ्रता-वश वहुत से पचामृत भरे कलशो द्वारा न्हवण-स्नात्र कराया जिससे श्री नेमिनाथ भगवान की लेप्यमय प्रतिमा गल गई। उन्होने अपने पर (गल्ती) अत्यन्त खेद करते हुए आहार का प्रत्याख्यान कर दिया। इक्कीस उपवास के अनन्तर स्वयं भगवती अम्बिका देवी आई, सघपति को उठाया। उसने देवी को देखकर जय जय कार शब्द किया। देवी ने कहा—यह विम्ब ग्रहण करो, पर पीछे मत देखना। अजित सघपति एक तार से खीचते हुए श्री नेमिनाथ भगवान का रत्नमय विम्व कचनवालानक से लाये। प्रथम भवन की देहली मे आरोपण कर सघपति ने अत्यन्त हर्षपूर्वक पृष्ठ भाग मे देखा। प्रतिमा वही पर निश्चल हो गई। देवी ने कुसुम-वृष्टिपूर्वक जय जयकार किया। यह प्रतिमा वैशाखी पूर्णिमा के दिन सघपति ने नव्यकारित प्रासाद मे पश्चिमाभिमुख स्थापित किया। स्नात्र-महोत्सव करके अजित सघपति अपने भाई के साथ स्वदेश लौट गया। कलिकाल मे देवी ने लोगो का कलुषित चित्त ज्ञात कर रत्नमय प्रतिमा की झलकती हुई कान्ति को आच्छादित कर दिया।

पहले गुजरात मे जयसिंह देव ने राजा खेगार को मार कर सज्जन को दण्डाधिप स्थापित किया। उसने विक्रम सवत् ११८५ मे श्री नेमिनाथ भगवान का अभिनव जिनालय वनवाया। मालव-देशमण्डन सेठ भावड साह ने स्वर्णमय आमलसार-कलश कराया। चालुक्यचक्री श्री कुमारपालदेव नरेन्द्र सस्थापित श्री श्रीमाल कुलोद्भव सौराष्ट्र दडनायक ने विक्रम सवत् १२२० मे पाज (पद्या-सीढियाँ) करवायी। उसी भावना से धवल ने अतराल मे पर्व-प्रपा भराये। पाज चढते हुए लोगो को दक्षिण दिशामे लक्षा-राम दिखाई देता है।

अणहिल वाड पाटण मे पोरवाडकुलमण्डन आसराज-कुमार

देवी के पुत्र और गुर्जराधिपति श्री वीरधवल की राज्यधुरा को चलाने वाले मन्त्रीश्वर वस्तुपाल तेजपाल नामक दो भ्राता हुए। उनमे तेजपाल मत्री ने गिरनार की तलहट्टी मे स्वनामाङ्कित तेजलपुर नामक प्रवर गढ, मठ, प्रपा, मन्दिर और बाग-बगीचो से सुन्दर वनवाया। वहाँ अपने पिता के नामाङ्कित 'आसराज विहार' नामक पार्श्वनाथ जिनालय कराया। अपनी माता कुमार-देवी के नाम से 'कुमर सरोवर' निर्माण करवाया। तेजलपुर के पूर्व दिशा मे उग्रसेनगढ नामक दुर्ग मे युगादिनाथ-प्रमुख जिन-मन्दिर सुशोभित है। उसके उग्रसेनगढ, खगारगढ और जूनागढ तीन नाम प्रसिद्ध है। गढ के बाहर दक्षिण दिशा मे चँवरी-वेदी, लड्डुओ के ओरे, पशुवाटक आदि स्थान है। उत्तर दिशा मे विशाल स्तभ शाला शोभित दश दशार-मण्डप, गिरिद्वार मे पचम हरि, दामोदर आदि स्थान स्वर्ण रेखा नदी के पार मे वर्त्तमान है।

कालमेघ के समीप तेजपाल मत्री ने वहुत दिनो से नही आए हुए सघ को बुलाकर उज्जयन्त शिखर पर एकत्र किया। वस्तु-पाल मत्री ने शत्रुञ्जयावतार मन्दिर, अष्टापद-समेत शिखर मण्डप, कपर्दियक्ष एव मरुदेवी प्रासाद कराये। तेजपाल मत्री ने तीन-कल्याणक चैत्य कराया। देपाल मंत्री ने इन्द्रमण्डप का उद्धार कराया।

ऐरावण गज-पद-मुद्रा अलकृत गजेन्द्रपद कुण्ड है, वहाँ अग प्रक्षालन कर आये हुए यात्री लोग दुखो को जलाञ्जलि देते हैं। छत्रशिला के नीचे सहस्राम्रवनोद्यान है जहाँ यादवकुल-प्रदीप, समुद्रविजय शिवादेवीनन्दन भगवान नेमिनाथ के दीक्षा केवल-ज्ञान और निर्वाण कल्याणक हुए है। गिरिशिखर पर चढते ही अम्बिका देवी का मन्दिर दिखाई देता है। वहाँ से अवलोकन शिखर है, जहाँ पर स्थित होकर दशो दिशा से भगवान नेमिनाथ

स्वामी को अवलोकन किया जाता है। फिर पहले शिखर पर शांवकुमार और दूसरे पर प्रद्युम्न (के बिम्ब) है।

इस पर्वत पर स्थान-स्थान पर चैत्यो मे रत्न-स्वर्णमय जिन-बिम्ब नित्य पूजा किए हुए दिखाई देते हैं। यहाँ की भूमि स्वर्ण-मंडिनी है और अनेक प्रकार के धातु रसो का भेदन करने वाली देदीप्यमान दिखाई पडती है। रात्रि मे दीपक की भाँति प्रज्वलित औषधियाँ दिखाई देती हैं। नाना प्रकार के वृक्ष-वल्ली-पत्र-पुष्प-फलादि पद-पद पर उपलब्ध होते हैं। अनवरत खल-खलाहट शब्द करके झरते हुए झरणो का जल और मत्त कोयल व भ्रमरो के झंकार सुनाई देते है।

उज्जयन्त महातीर्थ कल्प शेप सक्षेप से यह श्री जिनप्रभसूरि जी ने यथाश्रुत लिखा है।

श्री रैवतगिर का कल्प समाप्त हुआ। इसके ग्रथाग्रं० (अनुष्टुप छंद के अक्षरो वाला) १६१ अक्षर २७ है।

■

६. श्री स्तंभन पार्श्वनाथ-कल्प

सुर असुर खेचर किन्नर ज्योतीश्वर आदि विविध मधुकर कलित, तीन भुवन श्री लक्ष्मी के निवासस्थान जिनेश्वर भगवान के चरण-कमलो मे मैं नमस्कार करता हूँ।

सुर नर धरणेन्द्र द्वारा पूजित श्री पार्श्वनाथ जिनेश्वर का चरित्र जो पूर्व मुनिगणो ने निर्विकल्पतया अनल्प कल्प मे कहा है, मैं उसे सकीर्ण शास्त्र निक्षिप्त-चित्त वृत्ति वाले अर्थात् संक्षेप

रुचि धार्मिक जनो के सन्तोषार्थ श्री पार्श्वनाथ का कल्प लेश-मात्र कहूँगा।

भव दुख रूपी भार से परिपूर्ण अगो वाले भव्यो के भव-भ्रमण नष्ट करने के लिए मैं इस कल्प को सक्षेप से कहता हूँ, सुनिए।

विजया, जया, कमठ, पद्मावती, पार्श्वयक्ष, वैकट्या, धरणेन्द्र और सोलह विद्या देवियाँ जिनके अधिष्ठायक हैं। प्रतिमोत्पत्ति-निदानकल्प मे कलित होने पर भी यहाँ उसे विस्तार भय से सकलित नही किया क्योकि पीछे इसे कोई नही पढेगा।

जो व्यक्ति समुद्र को चुलु के समान कर ले व ताराओ के विमानो की गिनती कर ले वह भी पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा की महिमा को कहने मे समर्थ नही हो सकता।

यह पुराणप्रतिमा अनेक स्थानो मे सस्थापित होकर उपसर्ग शान्ति के हेतु खेचरो, देवो और उत्तम पुरुषो से पूजी गई है।

जो इन्द्रादि द्वारा कीर्त्तित और महिमा कृत पार्श्वनाथ-प्रतिमा है उसे मैं जन-मानस मे निश्चल भाव करने के लिए कहूँगा।

भारतवर्ष रूपी सरोवर मे भव्यजन-कमल को विकसित-बोधित करते हुए सुर-असुरो द्वारा वन्दित चरणो वाले श्री मुनिसुव्रत भगवान दिनकर की भाँति विचरते थे तब श्री पार्श्वनाथस्वामी की यह प्रतिमा चम्पा नामक श्रेष्ठ नगरी के रत्नाकरोपकठ मे ज्योतीश्वरो से वर्णित थी।

कार्त्तिक सेठ के भव मे शक्र को इन्ही के ध्यान से व्रत ग्रहणानन्तर सौ की सख्या मे अभिग्रह सिद्ध हुए थे। अत प्रतिमा के माहात्म्य से मुग्ध सौधर्मेन्द्र महान् दिव्य विभूति से वही स्थित हो पूजा-अर्चा करने लगा।

इस प्रकार कितना काल बीतने पर जब श्री रामचन्द्र जी ने वनवास किया तो इन्द्र के वचन से लोगो को राघव का प्रभाव

दिखाने के लिए दण्डकारण्य मे देवयुगल ने आकाशगामी घोड़ो सहित रत्नजटित रथ और प्रतिमा रामभद्र को दी।

वहाँ रघुपुङ्गव श्री रामचन्द्र ने सात मास और नव दिन तक विदेहदुहिता—सीता के उपनीत कुसुमो से भक्तिपूर्वक पूजा की।

राम के प्रवल कर्मो को अलघनीय और दुख से छूटने वाले ज्ञातकर उस पूज्य प्रतिमा को देवता उसी स्थान पर वापस ले गये। अव फिर शक्रेन्द्र प्रकृष्ट भक्तिपूर्वक दिव्य भोगो से पूजा करने लगा, इस प्रकार ग्यारह लाख वर्ष पूरे हो गए।

उस समय जव यदुवश मे वलदेव-कृष्ण और नेमिनाथ तरुणावस्था को प्राप्त हुए और केशव को राज्य मिला और जरासध से युद्ध मे अपनी सेना को उपसर्ग होने पर कृष्ण ने भगवान नेमिनाथ से उस उपसर्ग के शीघ्र विनाश होने का उपाय पूछा।

प्रभु ने आदेश दिया—"पुरुषोत्तम! मेरे सिद्ध होने के तेयासी हजार सात सौ पचास वर्ष वाद विविध अधिष्ठायको द्वारा नतचरण श्री पार्श्व अर्हन्त होगे, जिनकी पूजा—स्नात्र जल सीचने पर लोक मे अशिव की शाति होगी।" "स्वामी! वर्तमान मे उन जिनेश्वर की प्रतिमा कही भी विद्यमान है?" इस प्रकार चक्रधर श्रीकृष्ण के पूछने पर स्वामी ने कहा—"वह इन्द्रपूजित है"। तव नेमि जिन और जनार्दन के मनोगत भाव को ज्ञात कर मातलि सारथी सहित एक रथ मे वह प्रतिमा शक्रेन्द्र ने दी।

मुरारि ने प्रमुदित हो प्रतिमा को न्हवण कराके वहुत से घनसार रस, चन्दन रस और उत्तम सुगन्धित पुष्पो से पूजा की। पीछे सेना पर स्वामी के न्हवण जल को सिंचित किया जिससे योगी के चित्त-विलय की भाँति सारे उपसर्गो का विलय हो गया। वहुत दुखदायी प्रतिवासुदेव के निधन प्राप्त होने पर यादव सेना मे जयजयकार हो गया। उसी विजय के स्थान पर जिनेश्वर नेमि-

नाथ के आदेश से सखपुर नामक अभिनव नगर निर्माण कराके श्री पार्श्वप्रभु का बिम्ब स्थापित किया। इस प्रतिमा को लेकर कृष्ण के अपने नगर मे आने पर राजाओ ने वासुदेवत्वाभिषेक उत्सव किया। कृष्ण नरेश्वर ने मणि-कचन रत्नो से रचित प्रासाद मे सस्थापित प्रतिमा की सात सौ वर्ष तक पूजा की।

द्वारिका के दाह और यादव जाति के प्रलय होने पर भी स्वामी के प्रभाव से देवालय मे अग्नि नही लगी। समुद्र ने अपनी लोल लहरो के द्वारा नगरी के साथ रुचिर मनोहर मन्दिर सहित स्वामी (की प्रतिमा) को जल के अन्दर ले लिया।

नागकुमारियो के साथ क्रीडा के हेतु आये हुए तक्षक नागेन्द्र ने प्रभु की पापनाशक प्रतिमा को देखा और उसने प्रमुदित चित्त से वहुत प्रकार की नृत्य-कला से महामहोत्सवपूर्वक अस्सी हजार वर्ष पर्यन्त पूजा की। दिग्पालश्रेष्ठ वरुण ने समुद्र की सफाई करते हुए तक्षक द्वारा पूजी जाती हुई त्रिभुवनपति पार्श्वनाथ की प्रतिमा को देखा और सोचा—अरे ये तो वही स्वामी हैं जो देवेन्द्र द्वारा पहले पूजित थे, अब मुझे भी स्वामी के चरणो की सेवा करना योग्य है। ऐसा विचार कर वह जिनेश्वर की अनवरत पूजा, प्रार्थना, सेवा करने लगा। उस समय प्रभु वहाँ चार हजार वर्ष पर्यन्त वही स्थित रहे।

जव श्री वर्द्धमानस्वामी भरत क्षेत्र मे जलद तिलक-पुष्करावर्त्त मेघ की भाँति अविरल धारा से भव्य शस्यो को सिंचन कर रहे थे तव अपनी कान्ति से देवलोक की कान्ति को कलुषित करने वाली कान्तिनगरी मे धनेश्वर नामक सार्थवाह सुखपूर्वक निवास करता था। एक वार वह महाइभ्य (सेठ) यान मे समुद्र-यात्रा के लिए निकला और सायात्रिक आदि के साथ सिंहल द्वीप पहुँचा। और माला वेचकर वहाँ से शीघ्रतापूर्वक लौटते हुए सहसा जलराशि के अन्दर प्रवहण स्तभित हो गया। जव वह दुखी होकर

चिन्ता करने लगा तो शासनदेवी पद्मावती ने प्रकट होकर कहा—वत्स! डरो मत! बात सुनो! दिग्पाल वरुण विनिर्मित महिमा वाले, पृथ्वी मे मोह का मान मर्दन करने वाले श्री पार्श्वनाथ भगवान यहाँ पानी के नीचे रहे हुए है। हे भद्र! तुम उन्हे अपने स्थान पर ले जाओ।

धनेश्वर ने कहा—देवी! समुद्र जल के मूल से जिनेश्वर को निकाल कर ग्रहण करने की मेरे मे शक्ति कहाँ है? तब शासन देवी ने कहा—मेरे पीछे-पीछे लगकर प्रविष्ट हो जाओ और कच्चे सूत के तार से बाँधकर प्रभु को निकालो और जहाज मे चढाकर हे श्रावक! अपने नगर ले जाओ।

देवी के निर्देशानुसार यह सब करके वह महासत्वशाली सेठ त्रैलोक्यपति प्रभु को ग्रहण कर हर्ष प्रकर्ष से पुलकितगात्र हो गया। और क्षणमात्र मे स्वस्थान आये और पट-कुटी बनवा कर लोक सन्मुख स्वागतार्थ आवे तब तक के लिए वहाँ रहे। गन्धर्वों के गीत-वाजित्र और सधवा स्त्रियो के धवल मङ्गलपूर्वक दान देते हुए स्वामी को बहिर्दिशि प्रदेश-स्थल मे प्रवेश कराया।

सेठ ने कान्तिनगरी मे रजत की भाँति निर्मल, स्वच्छ प्रासाद कराया और उसमे प्रभु को विराजमान करके भक्तिपूर्वक प्रतिदिन पूजन करने लगा। धनेश्वर के काल-प्राप्त होनेपर प्रवर नागरिकों द्वारा प्रभु की पूजा होते हजार वर्ष बीत गए। तब देवाधिदेव की परिकर रहित प्रतिमा को आकाश मार्ग से रस-स्तंभन निमित्त कान्तिनगरी से कालत्रय कला कलित श्री पादलिप्तसूरि गणधर के उपदेश से योगीन्द्र नागार्जुन अपने स्थान पर लाया। योगिनी-गत कार्य सिद्ध होनेपर वह स्वामी को अटवी मे छोड गया और रस स्तम्भित होने के कारण स्तम्भनक नामक तीर्थ हो गया।

उद्भिन्न वशजाल के अन्दर स्थित, जो दुग्धस्नपित अंग वाले

प्रभु के आकण्ठ क्षिति निमग्न रहने से लोगो ने उनका नाम यक्ष प्रसिद्ध कर दिया। उस अवस्था मे पाँच सौ वर्ष तक जिनेश्वर भगवान् की पूजा होगी। फिर धरणेन्द्र के सानिध्य से श्रुतसागर के पारगामी श्री अभयदेवसूरि जी सघ सहित दृस्थित रोग को दूर करके देदीप्यमान माहात्म्य वाला तीर्थ प्रकट करेंगे।

कान्तीपुरी से भगवान् पुन समुद्र मे जावेंगे। बहुत प्रकार से नगर मे भारी महिमा से देदीप्यमान होगे।

यदि कोई सहस्र मुख वाला होकर लाल जिह्वा धारण कर ले तो भी त्रिकाल मे कौन प्रतिमा स्थानो को साधन करने में समर्थ है ?

पावापुरी, चम्पापुरी, अष्टापद, गिरनार, समेतशिखर, विमलाचल, काशी, नाशिक, मिथिला, राजगृह प्रमुख तीर्थो में यात्रा, पूजन, दान से जीवो को जो फल होता है वह यहाँ पार्श्वनाथ प्रभु की प्रतिमा के दर्शनमात्र से प्राप्त करता है।

पार्श्वनाथ भगवान को वन्दन करने की विचार-बुद्धि से मासक्षमण का फल और प्रतिमा को दृष्टिगोचर करने से छम्मासी तप का फल मिलता है। प्रभु के दर्शन से नि सन्तान बहुत से पुत्रो वाला और निर्धन धनकुबेर जैसा हो जाता है और दुर्भग भी सौभाग्यशाली होता है।

प्रभु प्रतिमा को नमन करने वाले पुरुषो को भवान्तर मे मूर्खत्व, कुकलत्रत्व, कुजाति मे जन्म, कुरूपत्व और दीनत्व नही होता।

अडसठ तीर्थो की यात्रा करने के लिए मुग्ध लोग क्यो भ्रमण करते हैं ? उससे तो अनन्तगुण फल पार्श्वनाथ भगवान् देते है। जो प्रभु-प्रतिमा का एक कुसुम से भी परम भक्तिपूर्वक पूजा करते हैं उनके देवेन्द्रादि पद तो कर-कमलो मे स्थित है। जो प्रभु के

उत्तम मुकुट, कुण्डल, केयूरादि करवाता है वह त्रिभुवनमुकुट होकर शीघ्र ही शिव-सुख प्राप्त करता है।

जिसने त्रिभुवन चूडामणि, लोगो के नयनो के लिए अजन-शलाका जैसी इस प्रतिमा को नही देखा उसका मनुष्य जन्म ही निरर्थक है। श्री सघदास मुनि द्वारा प्रतिमा का लघु कल्प निर्मित है। मैंने तो वडे कल्प से सम्वन्ध मात्र समुद्धृत किया है।

जो इस कल्प को पढता, सुनता व चिन्तन करता है वह कल्पवासियो का नाथ (इन्द्र) होकर सातवे भव मे सिद्धि प्राप्त करता है। और जो पुस्तक लिख कर इस कल्प की गृह चैत्य मे पूजा करता है वह चिरबोधि नरक और तिर्यञ्चगति मे नियमा से नही जाता।

दैनिक पढने से सिंह, समुद्र, अग्नि, हाथी, चोर, साँप, ग्रह, वैरी का निवारण होकर प्रेत, वैताल, शाकिनी आदिका भय नष्ट होता है।

कल्प वृक्ष की भाँति यह कल्प हृदय स्थान मे धारण करने वाले भव्यो की पुण्य-शोभा विलसित और वाछित प्रदान करे।

जहाँ तक नरक्षेत्र मे मेरु रूपी प्रदीप पृथ्वी तल पर समुद्र जल रूपी तेल से उद्योदित विद्यमान है यह कल्प वहाँ तक जयवन्त रहे।

यह पार्श्वनाथ का सक्षिप्त कल्प समाप्त हुआ।

श्री स्तंभनक-कल्प

दृढ व्याधि से शरीर अशक्त हो जाने पर अनशन ग्रहण करने के लिए (श्री अभयदेव सूरि जी महाराज ने) सघ को वुलाया, रात्रि मे देवी ने सूत की नौ कोकडी सुलझाने के लिए कहा। हाथो से अशक्ति प्रकाशित करने पर (देवी ने) नवाङ्ग विवरण कथा से चमत्कृत कर स्तभन पार्श्वनाथ वन्दन करने को आरोग्य-विधि उपदिष्ट की। सभाणा से चलकर धवलकपुर आने के वाद पादविहारी होकर स्तम्भनपुर के सेढी नदी के तट पर स्थित खोखरे पलाश वन मे पहुँचे। गो-दुग्ध झरने से स्थान को पहिचान कर जयतिहुअण स्तोत्रार्द्ध से पार्श्वनाथ स्वामी को प्रत्यक्ष किया और स्तवन पूर्ण कर प्रभावशाली वृत्त द्वय को गुप्त कर दिया।

सघ द्वारा निर्मापित जिनालय मे श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा को स्थापित किया वे गतरोग हुए नवाङ्गो वृत्तिकारक श्री अभयदेव सूरि जी महाराज विजयवन्त हो।

जन्म से भी चार हजार वर्ष पूर्व देवालय में पूजित हुए और भगवान की वासव, वासुदेव और वरुण ने समुद्र मे पूजा की। कान्तिनगरी के सेठ धनेश्वर ने पूजा की, और नागार्जुन ने भी अर्चन किया वे स्तंभनपुर के श्री पार्श्वनाथ जिनेश्वर आपकी रक्षा करे।

श्री स्तभनक कल्प समाप्त हुआ ग्र० १०० (पाठान्तर १११) है।

७. अहिच्छत्रानगरी-कल्प

तीन भुवन मे भानु के नाम से प्रकट श्री पार्श्वनाथ जिनेश्वर को नमस्कार करके अहिच्छात्रा नगरी का कल्प किंचित् यथाश्रुत कहूँगा ।

इसी जवूद्वीप के भारतवर्ष मे मध्य खण्ड स्थित कुरुजागल जनपद मे सखावती नामक ऋद्धि-समृद्धि नगरी थी । वहाँ भगवान पार्श्वनाथ स्वामी छद्मस्थ विहार मे विचरते हुए कायोत्सर्ग स्थित रहे । पूर्व निवद्ध वैर के कारण कमठासुर ने अविच्छिन्न धारा-प्रवाह से वर्षता हुआ मेघ विकुर्वण किया, जिससे सारे भूमण्डल मे जल-जलाकार होकर भगवन्त के आकण्ठ जल आ गया ।

पञ्चाग्निसाधक कमठ तापस द्वारा जलाए काठ मे दग्ध साँप को निकाले गए प्रभु के उपकार को स्मरण कर नागराज धरणेन्द्र ने अवधि-ज्ञान से देखा और अपनी अग्रमहिषियो के साथ आकर मणिरत्नमय सहस्रफणालकृत छत्र प्रभु के ऊपर करके कुण्डलीकृत नागराज ने उन्हे ग्रहण कर उस उपसर्ग को निवारण किया । तभी से उस नगरी का नाम अहिच्छत्रा हो गया ।

वहाँ प्राकार-कारको ने जैसे-जैसे उरग रूपी धरणेन्द्र ने कुटिल गति से सर्पण किया उसी प्रकार से ईंट निवेश किया । आज भी वैसा ही प्राकाररत्न दृष्टिगोचर होता है । सघ ने श्री पार्श्वनाथ भगवान का चैत्य निर्माण कराया । चैत्य के पूर्व दिशा मे अति मधुर प्रसन्नोदक कमठ जलधर से भरे हुए सात जलपूर्ण कुण्ड हैं । उन कुण्डो के जल मे विधिपूर्वक स्नान करने वाली मृतवत्सा स्त्रियाँ स्थिरवत्सा होती हैं । उन कुण्डो की मिट्टी से धातुर्वादी लोग धातु-सिद्धि होना वतलाते हैं । पाषाण शिला से मुद्रित मुख

वाली सिद्ध रसकूपिका भी यहाँ दृष्टिगोचर होती है। जहाँ म्लेच्छ राजा द्वारा अग्निदाह आदि अनेक उद्घाटनोपक्रम निष्फल हो गए।

उस नगर के भीतर और वाहर सवा लाख कुएँ और वापिकाएँ हैं। मधुरोदक की यात्रा के लिए आये हुए लोगो और पार्श्वनाथ चैत्य मे स्नात्र करते हुए लोगो को आज भी कमठ प्रखर तूफान और काली मेघ घटा और गर्जन व बिजली आदि दिखाता है। मूल चैत्य के निकट सिद्ध क्षेत्र मे श्री पार्श्वनाथ स्वामी का धरणेन्द्र-पद्मावती सेवित चैत्य है। प्राकार के समीप श्री नेमिनाथ भगवान की प्रतिमा सहित सिद्ध-वुद्ध कलित आम्रलुम्बधारिणी सिहवाहिनी अम्विका देवी विद्यमान है। चन्द्र किरणो की भाँति निर्मल जल से परिपूर्ण उत्तरा नामक वापी है जहाँ स्नान करके और वहाँ की मिट्टी का लेपन करने से कुष्ठियो का कुष्ठ रोग शान्त हो जाता है। धन्वन्तरि कूप की विचित्र वर्ण वाली मिट्टी से गुरु आम्नाय से सोना बनता है। ब्रह्म कुण्ड के तट पर ऊगी हुई मण्डूक ब्राह्मी के पत्तो का चूर्ण एक वर्ण वाली गाय के दूध के साथ पीने से प्रज्ञा-मेधा सम्पन्न, निरोग और किन्नर की भाँति स्वर होता है। वहाँ उपवन के समस्त वृक्षो मे औषधियाँ उपलब्ध होती है जो उन-उन कार्यो को सिद्ध करती है जैसे जयन्ती, नागदमणी, सहदेवी, अपराजिता, लक्ष्मणा, त्रिवर्णी, नकुली, सकुली, सर्पाक्षी, सुवर्ण-शिला, मोहनी, सामली, रविभक्ता, निर्विषी, मोरशिखा, शल्या, विशल्या प्रभृति महौषधियाँ यहाँ विद्यमान है। यहाँ हरिहर, हिरण्यगर्भ, चण्डिकाभवन, ब्रह्मकुण्ड आदि लौकिक तीर्थ हैं। तथा यह नगरी महातपस्वी सुगृहीतनामधेय कृष्णर्षि की जन्मभूमि है। तत्पद पंकज पराग कण निपात से पवित्रीकृत एक वस्त्र वाले पार्श्वनाथ भगवान को स्मरण करने से आधि व्याधि, सर्पविष, सिह, हाथी, रण, चोर, जल, अग्नि, राज्य, दुष्ट ग्रह, मारि, भूत,

प्रेत, शाकिनी प्रमुख क्षुद्रोपद्रव विशेष कर भव्य जीवो को पराभव नही करते। सकल अतिशयो की निधान रूप यह नगरी है।

यह अहिच्छत्रा नगरी का कल्प पद्मावती धरणेन्द्र और कमठ के प्रिय श्री जिन प्रभुसूरि ने संक्षेप से वर्णन किया है।

॥ अहिच्छत्रा-कल्प समाप्त हुआ ग्रथाग्र० ३६ ॥

८. अर्बुदगिरि-कल्प

श्री आदिनाथ और नेमिनाथ अर्हन्तो को नमस्कार करके अर्बुद महागिरि का कल्प लेशमात्र कहता हूँ। पहले श्रीमाता देवी की उत्पत्ति यथाश्रुत कहूँगा, जिसके अधिष्ठान से यह पर्वत पृथ्वी मे प्रख्यात हुआ है।

श्री रत्नमाल नगर मे रत्नशेखर राजा हुआ, निःसन्तान होने से दुखी हो उसने शाकुनिक लोगो को बाहर भेजा। उन्होने शिर पर काष्ठ-भार लिए कष्टपूर्वक चलने में दुर्गत स्त्री को देख कर राजा को बतलाया कि इसका पुत्र आपके पद पर राजा होगा। राजा के आदेश से उन लोगो ने उस सगर्भा को मारने के लिए गर्त्त मे डाल दिया। वह कायचिन्ता के बहाने उससे बाहर निकली और उस भयार्त्ता ने पुत्र प्रसव कर झाडी मे रख दिया। इस घटना से अज्ञात उन लोगो ने गर्त्त मे लाकर उसे मार डाला।

पुण्ड से आकृष्ट होकर एक मृगी उस बालक को दोनो समय स्तन पान करा देती। अन्यदा महालक्ष्मी ने टङ्कशाला मे मृगी के चारो पैरो वाली नयी मुद्रा-नाणा की वृद्धि कर दी। यह सुन कर शिशु रूप मे उत्पन्न होने की वार्त्ता फैल गई। कोई नया राजा हुआ, सुन कर राजा ने सुभटो को भेजा, उन्होने उसका वध करने के लिए आकर नगर के गोपुर मे उसे देखा और बाल-हत्या से वचने के लिए गायो के झुण्ड के आने के मार्ग मे रख दिया। उसके उसी प्रकार रहते भाग्यवश एक उक्षा—धान वटोर ने वाली स्त्री के रूप मे शक्ति विशेष—आगे हो गई, उससे प्रेरित हो पशुओ के बीच से उस शिशु को उठा कर रख लिया। यह सुन कर मत्री के समझाने से राजा ने उसे लेकर अपना औरस पुत्र मान लिया।

क्रमश वह श्रीपुञ्ज नामक राजा हुआ और उसकी पुत्री श्रीमाता रूप सम्पन्न वानर जैसे मुख वाली हुई। वह जाति-स्मृति प्राप्त वैराग्यवान-निर्विषयी हुई। उसने अपने पिता से अपना पूर्व भव निवेदन किया कि मै पहले वानरी थी और अर्बुदगिरि की वृक्ष शाखा पर किसी ने मेरा शिरोश्छेद कर दिया। मेरा रुण्ड वृक्ष के नीचे कुण्ड मे जा गिरा। उस अमित तीर्थ के प्रभाव से मै नर देह धारिणी हुई। मेरा मस्तक आज जी उसी तरह है अत मैं वानरमुखी हुई हूँ। श्रीपुञ्ज ने उसे अपने पुरुषो के साथ भेज कर कुण्ड मे उसका मुख डुबाया, जिससे वह नरमुखी हो गई और आवू पर तपश्चर्या करने लगी।

एक वार आकाशगामी योगी उसे देख कर रूपमुग्ध हो गया। उसने आकाश से उतर कर प्रेमालाप पूर्वक कहा—शुभे! तुम मुझे किस प्रकार वरण करोगी? उसने कहा—रात्रि का प्रथम प्रहर जव तक कुर्कुट बोले उससे पहिले किसी विद्या से यदि इस पर्वत-ह्लद पर मनोहर वारह सीढियाँ वना दो तो मैं तुम्हे वरण करूँगी!

योगी ने अपनी विद्या से दो प्रहर में वैसा कर दिया। श्रीमाता ने अपनी शक्ति से बनावटी कुर्कुट शब्द किया और उसके निषेध करने पर भी वह उसका छल जानता हुआ विवाह के लिए ठहर गया। योगी ने नदी के किनारे विवाह सामग्री सहित उसे बैठाया। श्रीमाता ने कहा—त्रिशूल छोड कर विवाह करने के लिए मेरे पास बैठो। वह वैसा ही करके बैठा तो श्रीमाता ने कुत्ते लगा कर उसकी आँखो को विकृत कर दिया और उसी की शूल से उसका हृदय वेध कर वध कर डाला। इस प्रकार आजन्म अखण्ड शील पालन करके श्रीमाता स्वर्ग को प्राप्त हुई। राजा श्री पुञ्ज ने उस शिखर पर उसका प्रासाद बनवाया।

छह महीनो के बाद अर्बुद नामक साँप पहाड़ के नीचे चलता है जिसके पहाड कम्पन होता है इसी से सभी प्रासाद बिना शिखर के हैं। लौकिक मे भी कहते हैं कि—

पहले यह हिमाचल का पुत्र नन्दिवर्द्धनगिरि था, कालान्तर में अर्बुदनाग का अधिष्ठान होने से "अर्बुद" नाम हो गया। इस पर धनवानो के बारह गाँव बसते हैं। गोग्गलिक तापस और राष्ट्रीक लोग मे हजारो हैं। न तो ऐसा वृक्ष है न वल्ली, न पुष्प, न कन्द और न फल है एवं न ऐसी खान है जो यहाँ न देखी जाती हो। यहाँ प्रदीप्तिमान् महौषधियाँ हैं जो रात्रि मे ज्वाज्व-ल्यमान रहती हैं। सुगन्धित और रसाढ्य दोनो प्रकार के वन हैं।

स्वच्छद छलकती हुई स्वच्छ लहरो वाली मन्दाकिनी नदी है जिसके तट पर फूलो के वृक्ष हैं और पिपासुओ को तृप्त—आनन्दित करने वाली सुशोभित है। इस गिरिराज के हजारो उत्तुग शिखर प्रकाशित है जहाँ सूर्य का रथ-सारथी भी क्षण मात्र स्खलित हो जाता है। चण्डाली-वज्र-तैलेभ कन्दादि कन्दो की जातियाँ उन-उन कार्यों को सिद्ध करने वाली पद-पद पर देखी जाती हैं। यहाँ के आश्चर्यजनक कुण्ड, धातु-खाने तथा

अमृत जल वाले झरणो के कारण यह समृद्ध प्रदेश है। कोयल के उच्च स्वर से कूकने पर शीघ्र कोकूयित कुण्ड से खल-खल शब्द करता हुआ जल का प्रवाह प्रादुर्भूत होता है।

श्रीमाता, अचलेश्वर, वशिष्ठाश्रम आदि लौकिक तीर्थ और मन्दाकिनी आदि भी है। इस महागिरिराज के नेता परमार नरेश्वर हैं जिनकी राजधानी चन्द्रावती नगरी लक्ष्मी की निधान है। विमलवुद्धिकलित विमल दण्डनायक ने यहाँ ऋषभदेव भगवान की पित्तलमय प्रतिमावाला चैत्य वनवाया। उसने चम्पक वृक्ष के सान्निध्य मे पुत्र सम्पदा एव तीर्थोद्धार की वाञ्छा से भगवती अम्बा की आराधना करके श्रीमाता के मन्दिर के पास पुष्प-मालादि से रुचिर और गोमय गोमुख देखकर वहाँ शुल्क देकर जमीन ग्रहण की। गुर्जरेश्वर पर क्रुद्ध राणा श्री धाधूक को भक्ति से प्रसन्न कर चित्रकूट से लाकर उसके वचनो से विक्रम स० १०८८ मे प्रचुर द्रव्य व्यय द्वारा उसने "विमल वसति" नामक उत्तम प्रासाद बनवाया। यहाँ बहुत प्रकार से पूजित अम्बिका देवी यात्रागत सघ के गहन विघ्नो का नाश करती है। युगादिदेव के चैत्य के सामने यहाँ एक रात्रि मे शिल्पी ने पाषाण-मय घोडा घड कर तैयार किया।

विक्रम सवत् १२८८ मे सचिवो मे चन्द्र के समान तेजपाल ने लूणिगवलही नामक नेमिनाथमन्दिर का निर्माण कराया। श्री स्तभतीर्थ मे निष्पन्न कसौटी का नेत्रामृताञ्जन बिम्ब तेजपाल मत्री ने वहाँ स्थापित किया। उसने श्री सोम दिग्पाल के निर्देश से अपने पूर्वजो की मूर्तियाँ हस्तिशाला मे विराजमान की।

अहो! सूत्रधार शिरोमणि शोभन देव ने इस चैत्य शिल्प की रचना से अपना नाम सार्थक कर दिया। इस अर्वुद के अनुज मैनाक पर्वत की समुद्र ने वज्र से रक्षा की और इसने भवदण्ड से मत्रीश्वरो की रक्षा की।

दैवात् म्लेच्छो द्वारा दोनो तीर्थो के भग्न कर देने पर भी इसका उद्धार शक सवत् १२४३ (वि० स० १३७८) मे करवाया। प्रथम तीर्थ का उद्धार महण सिंह के पुत्र लल्ल ने और दूसरे का चण्ड सिंह के पुत्र पीथड ने करवाया। चालुक्य कुल चन्द्रमा कुमारपाल भूपाल ने इसके ऊँचे शिखर पर श्री वीर चैत्य का निर्माण कराया।

उन-उन औषधियो से पूर्ण और उन-उन कौतूहलो से भरे हुए अनेक तीर्थो से पवित्रित इस अर्बुदगिरि के दर्शन धन्य जन ही करते हैं।

श्री जिन प्रभसूरि ने श्रोत्रसुधाकल्प यह श्रीमद् अर्बुद कल्प बनाया है, चतुर जन इसका परिचय प्राप्त करे।

श्री अर्बुद कल्प समाप्त हुआ। ग्रथा ग्र० ५२ अक्षर १२ है।

९. मथुरापुरी-कल्प

जगत मे शरण्यभूत सातवे और तेईसवे जिनेश्वर को नमस्कार करके भव्य जनो को मगल कारी मथुरा-कल्प कहूँगा।

सुपार्श्वनाथ भगवान के तीर्थ मे वर्त्तमान धर्मरुचि और धर्म घोप नामक दो मुनिवर्य सिंह के सदृश निस्सग थे।

वे मुनिराज छट्ठ, अट्ठम, दशम, द्वादशम, पक्षोपवास और मास, दो मास और चार मासक्षमण की तपश्चर्या करते हुए, भव्यजीवो को प्रतिबोध करते हुए किसी समय मथुरा नगरी मे

विचरे। उस समय मथुरा नगरी बारह योजन लम्बी और नौ योजन विस्तीर्ण एव पार्श्व स्थित यमुना नदी के जल से प्रक्षालित प्रकार विभूषित धवलगृह, देवकुल, वापी, कूप, पुष्करिणी, जिनभवन और हाटो से सुशोभित थी। वहाँ विविध चारो विद्याओ को पढने वाले ब्राह्मणो का समूह था।

वहाँ वे मुनिराज अनेक फल फूलो से लदे हुए भूतरमण नामक उपवन मे अवग्रह लेकर उपवास करके वर्षाकाल—चातुर्मास स्थित रहे। उनके स्वाध्याय, तपश्चरण और प्रशमादि गुणो से आवर्जित-आकृष्ट उपवन स्वामिनी कुबेरा देवी ने रात्रि मे प्रकट होकर कहा—भगवन्! आपके गुणो से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ, कुछ वर माँगिए! मुनिराजो ने उसे—हम निस्सग हैं, हमें कुछ नही चाहिए! कहते हुए—धर्म सुनाकर अविरति श्राविका बनायी।

अन्यदा कार्त्तिक शुक्ल अष्टमी की रात्रि मे मुनिराजो ने कुबेरा देवी से कहा—तुम शय्यातर हो, हे श्राविके! तुम दृढ सम्यक्त्व वाली हो, अत जिन वन्दन, पूजन मे प्रवृत्त रहना। वर्त्तमान योग से चातुर्मास करके पारणे के लिए हम अन्य गाँवो मे विचरण करेंगे। देवी ने शोकपूर्वक कहा—भगवन्! आप सर्वदा इसी उपवन मे क्यो नही रहते! साधुओ ने कहा—

"श्रमणो, पक्षियो, भ्रमरो, गोकुल, चतुष्पदो, पासा सारी और मेघ का निवास अनियत होता है।"

उसने प्रार्थना की—यदि ऐसा है तो धर्म कार्य कहिए, जिसे मैं सम्पादन करूँ, क्योकि देवदर्शन अमोघ होता है। साधुओ ने कहा—यदि ऐसा ही आग्रह है तो हमे सघ के साथ मेरुपर्वत ले जाकर चैत्यो की वन्दना कराओ! देवी ने कहा—मैं आप दोनो को देव-वन्दन करा दूगी! मथुरा सघ चलने से अन्तराल मे कोई मिथ्यादृष्टि देव विघ्न करेगे! साधुओ ने कहा—हमने आगम बल

से मेरु देखा है, यदि संघ को ले जाने की तुम्हारी शक्ति न हो तो केवल हम दोनो तो वहाँ जाने से रहे।

देवी ने उदास होकर कहा—यदि ऐसा है तो मैं यही प्रतिमाओ से शोभित मेरु पर्वत का आकार बना दूगी। जहाँ आप संघ सहित देववन्दन करें। साधुओ ने स्वीकार किया। देवी ने कंचन घटित्त, रत्न मण्डित, अनेक सुर परिवृत, तोरण-ध्वज-मालालकृत्त शिखर व छत्रत्रय शाली स्तूप रात्रि मे निर्माण किया। वह स्तूप मेखला-त्रय मण्डित था, एक-एक मेखला मे चारो दिशाओ मे पच वर्ण रत्नमय बिम्ब थे। उस स्तूप पर मूल प्रतिमा श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिष्ठापित थी।

प्रात. काल लोगो को मालूम हुआ तो उस स्तूप को देखकर वे परस्पर कलह करने लगे। कोई कहता ये वासुकि लक्षण युक्त स्वयम्भूदेव हैं, कोई उसे शेष शय्या स्थित नारायण एवं ब्रह्मा, धरणेन्द्र, सूर्य चन्द्रादि बतलाया, बौद्ध कहते ये स्तूप नही पर "बुद्धण्ड" है। तब मध्यस्थ पुरुषो ने कहा—कलह मत करो, ये जिस देव ने निर्मित किया है, वही संशय दूर करेंगे। अपने-अपने देवो को पट पर चित्र-आलेखित कर अपनी गोष्ठी सहित रहे। जिनका देव होगा उसी का एक पट रहेगा, दूसरे देवो के पट नष्ट हो जावेंगे। सघ ने भी सुपार्श्वनाथ भगवान का पट लिखा। सभी लोग अपने-अपने देवो के पट गोष्ठी सहित पूजा करके नवमी की रात्रि मे सर्व दर्शनी लोग गाते हुए स्थित रहे। आधी रात के समय तृण-धूलि और पत्थर युक्त उद्दण्ड तूफान चलने लगा जिससे सभी पट टूट कर उड गए। प्रलय गर्जारव से लोग दशो-दिश पलायन कर गए। एक सुपार्श्वनाथ भगवान का पट स्थित रहा। लोक विस्मित हुए और "ये अरिहन्त देव हैं"—कहने लगे। उस पट को सारे नगर में घुमाया, पट-यात्रा प्रवर्त्तित हुई।

उसके वाद न्हवण प्रारम्भ हुआ। प्रथम न्हवण के लिए श्रावक लोग कलह करने लगे। प्रतिष्ठित लोगो ने यह व्यवस्था की—जिसके नाम का गोलक (चिट्ठी) कुमारी कन्या के हाथ में प्रथम आवेगा वह चाहे दरिद्र हो धनाढ्य प्रथम न्हवण करावेगा। दशमी की रात्रि मे यह व्यवस्था हुई। ग्यारस के दिन दूध, दही, घृत, कुंकुम, चन्दनादि से हजार कलशो से श्रावकों ने न्हवण कराया। देवताओ ने प्रच्छन्न स्थित रहकर न्हवण कराया, आज भी वे उसी प्रकार यात्रार्थ आते हैं।

क्रमश सभी के द्वारा न्हवण कराने पर पुष्प, धूप, वस्त्र, महाध्वज, आभरणादि चढाए गए। साधुओ को वस्त्र, घृत, गुडादि दिया। बारहवी रात्रि मे माला चढाई गयी। इस प्रकार वे मुनिराज देववन्दन कर सकल सघ को आनन्दित कर पारणा करके अन्यत्र चातुर्मास के लिए तीर्थ प्रकट कर क्रमश' कर्मो का नाश कर सिद्धि प्राप्त हुए, वहाँ सिद्ध क्षेत्रतीर्थ हुआ।

मुनिराजो के वियोग से दुखित देवी ने नित्य देव-पूजा-रत अर्द्ध-पल्योपम का आयु पूर्ण कर च्यवकर मनुष्यत्व पाया और उत्तम पद प्राप्त किया। उसके स्थान पर जो-जो उत्पन्न होती है वह 'कुवेरा' नाम से प्रसिद्ध होती हैं। उसके द्वारा परिरक्षित स्तूप चिरकाल—पार्श्वनाथ स्वामी के उत्पन्न होने तक खुला रहा। इसके बीच मथुरा के राजा ने लोभ के वशीभूत होकर आदमी को वुला कर कहा कि इस स्तूप का स्वर्ण और रत्न निकाल कर मेरे भण्डार मे रखो। लोग लोहे के कुदालो से स्तूप पर आघात करने लगे पर उनके घाव उस पर न लग कर स्वय घातको पर लगने लगे। तव प्रतीतिहीन राजा ने स्वयं कुहाड़े की चोट दी, कुहाडा ने उछलकर राजा के मस्तक को छिन्न कर डाला। तव कोपाय-मान देवी ने प्रकट होकर लोगो के कहा—अरे पापियो! यह क्या काम प्रारंभ किया है, राजा की तरह तुम लोगो को भी मरना

है ? भयभीत लोगो ने हाथ मे धूप लेकर देवी से क्षमा याचना की। देवी ने कहा—जो जिनालय पूजेगा उसके उपद्रव दूर करूँगी। जो जिन प्रतिमा या सिद्धालय की पूजा करेगा उसी का घर स्थिर रहेगा अन्यथा गिर जायगा।

यही से मंगल चैत्यो की प्ररूपणा हुई, ऐसा छेद ग्रथ वृहत्कल्प मे मथुरा के भवनो का निदर्शन किया है।

यहाँ प्रतिवर्ष जिन पटह की नगरमे यात्रा-भ्रमण कराना व कुहाड छट्ठी मनाना एव यहाँ जो भी राजा हो उसे जिनप्रतिमा प्रतिष्ठित कराके भोजन करना, अन्यथा वह जीवित नही रहेगा। देवी की इस आज्ञा को लोगो ने पालन करना प्रारभ कर दिया।

एक बार पार्श्वनाथ स्वामी केवली अवस्था मे विचरते हुए मथुरा नगरी पधारे। समवशरण मे धर्मोपदेश देते हुए दूषम काल के भविष्य को उन्होने प्रकाशित किया। भगवान के अन्यत्र पधार जाने पर देवी कुबेरा ने लोगो को पुकार कर कहा—"प्रभु ने दूषम काल निकट बतलाया है। लोग व राजा लोभ ग्रस्त होगे, मै भी प्रमादी हूँ और चिरायु नही अत. इस खुले स्तूप की सर्वकाल रक्षा नही करने सकूँगी। सघादेश से मै इसे ईंटो से ढँक दूँगी, तुम लोग शैलमय पार्श्वनाथ स्वामी की बाहर से पूजा करना। मेरे स्थान मे दूसरी जो भी देवी होगी, वह अभ्यन्तर की पूजा करेगी। सघ के मानने पर देवी ने वैसा ही कर दिया।

भगवान महावीर के निर्वाण को तेरह सौ से अधिक वर्ष बीतने पर वप्पभट्टिसूरि उत्पन्न हुए, उन्होने इस तीर्थ का उद्धार किया, पार्श्वनाथ भगवान को पूजाया। शास्वत पूजा करने के लिए कानन, कूप और कोट करवाया। चौरासी · दिलाई।

- सघ ने ईंटें खिसकती हुई ज्ञात कर उखडे जाते स्तूप को पत्थरो से मढने के विचार से खोलना प्रारभ किया तो देवी ने स्वप्न मे स्तूप को खोलना मना किया। तब देवी के वचनो से

स्तूप को बिना खोले सुघटित पत्थर जड़ कर जीर्णोद्धार किया गया। आज भी देवो द्वारा यह महास्तूप रक्षित है, देउल मे हजारो प्रतिमाएँ है, आवासनिक प्रदेश मे मनोहर गन्धकुटी मे चिल्लणिका अम्बा और अनेक क्षेत्रपालादि सयुक्त यह जिनभवन विराजमान है।

इस नगरी मे भावी तीर्थंकर श्री कृष्ण वासुदेव का जन्म हुआ। यहाँ आर्य मगू तथा हुडिक यक्ष—जो चोर का जीव यक्ष हुआ था—का देव कुल है।

यहाँ पाँच स्थल हैं, यथा—१ अर्क स्थल, २ वीर स्थल, ३. पद्म स्थल, ४ कुश स्थल, ५ महा स्थान। एव बारह वन इस प्रकार है—१. लोहजघ वन, २ मधुवन, ३. विल्व वन, ४ ताल वन, ५ कुमुदवन, ६ वृन्दावन, ७ भण्डीर वन, ८ खदिर वन, ९ कामिक वन, १० कोल वन, ११ वहुलावन, १२ महावन।

यहाँ पाँच लौकिक तीर्थ है, यथा—१ विश्रान्तिक तीर्थ, २ असिकुण्ड तीर्थ, ३ वैकुण्ठ तीर्थ, ४ कालिंजर तीर्थ, ५ चक्र तीर्थ।

शत्रुञ्जय मे ऋषभदेव, गिरनार पर नेमिनाथ, भरौंच मे मुनि सुव्रत, मोढेरा मे महावीर और मथुरामे सुपार्श्व—पार्श्व को दो घडी के भीतर वन्दन कर सोराष्ट्र के ढुढण मे विहार कर के जो ग्वालियर मे आहार करते थे उन आमराय सेवित चरण-कमल श्री वप्पभट्टि सूरि जी महाराज ने वि० स० ८२६ मे मथुरा मे श्री महावीर भगवान का विम्ब स्थापित किया।

यहाँ श्री वीर वर्द्धमान स्वामी के जीव विश्वभूति ने अपरिमित वल प्राप्ति का नियाणा किया था। यहाँ यमुना वंकयमुन राजा के द्वारा निहित दण्ड अणगार के केवल ज्ञान उत्पन्न होने पर महिमा करने के लिए इन्द्र आया था।

यहाँ जितशत्रु राजा के पुत्र कालवेशिक मुनि ने अर्श रोगार्त्त स्वदेह मे पुद्गलगिरि पर निष्प्रभ उपसर्ग सहन किया था।

यहाँ शख राजर्षि के तप प्रभाव को देख सोमदेव द्विज गजपुर नगर मे दीक्षा लेकर स्वर्ग जाकर काशी मे हरिकेश वल ऋषि देव पूज्य हुआ।

यहाँ उत्पन्न राजकन्या निवृत्ति राधवेध द्वारा सुरेन्द्र दत्त को स्वयवरा हुई।

यहाँ कुवेरदत्ता ने माता कुवेर सेना और भाई कुवेरदत्त को अवधि ज्ञान द्वारा अठारह नातो के सम्वन्ध वता कर प्रतिवोध दिया।

यहाँ श्रुतसागर पारगामी आर्य मगु ने ऋद्धिगारव, रस गारव, शाता गारव से यतत्व प्राप्त कर साधु को अप्रमादी करने के लिए जिह्वा प्रसारित कर प्रतिवोध दिया।

यहाँ सवल कवल नामके वछडे सेठ जिनदास के ससर्ग से प्रतिवोध पाकर नागकुमार देव हुए और भगवान महावीर के नौकारूढ होने पर उपसर्ग निवारण किया।

यहाँ अन्निका पुत्र ने पुष्पचूल को प्रवर्जित कर ससार समुद्र से पार किया।

यहाँ गवाक्ष स्थित मिथ्यादृष्टि इन्द्रदत्त पुरोहित को—नीचे मार्ग मे चलते हुए साधु के मस्तक पर पाँव करने पर—श्रावक ने गुरुभक्तिवश पगु कर दिया था।

यहाँ भूतगृह स्थित निगोद स्वरूप व स्व आयु पूछ कर सन्तुष्ट चित्त शक्रेन्द्र ने आर्यरक्षित सूरि को वन्दन किया। उपाश्रय के द्वार को अन्य दिशा मे कर डाला।

यहाँ वस्त्र पुष्यमित्र, घृत पुष्यमित्र और दुर्वलिक पुष्यमित्र लब्धि-सम्पन्न विचरे। यहाँ वारह वर्ष व्यापी दु सह दुष्काल

व्यतीत होने पर सकल सघ को एकत्र कर स्कदिलाचार्य ने आगमानुयोग-वाचना प्रवृत्त की।

यहाँ देव-निर्मित स्तूप के समक्ष पक्षक्षमणपूर्वक देवता को आराधना कर जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने दीमक भक्षित त्रुटित पाठ भग्न महानिशीथ सूत्र ग्रथ को परिपूर्ण किया।

यहाँ साधुओ के तपश्चरण से सन्तुष्ट शासन देवी ने तदर्चनिक परिगृहीत तीर्थ को सघ के वचनानुसार जैनो को दिलाया। पीछे देवी ने लोगो की लोभवृत्ति ज्ञातकर स्वर्णमय स्तूप को प्रच्छन्न करके ईंटो का बना दिया। श्री वप्पभट्टिसूरि के वचनो से आम राजा ने उसे प्रस्तर शिल्प से मण्डित कराया।

यहाँ शख राजा और कलावती ने पाँचवे जन्म देवसिंह-कनक-सुन्दरी नाम के श्रमणोपासको ने राज्यलक्ष्मी का उपभोग किया।

इस प्रकार अनेक प्रकार के सविधान वाला इस नगरी का उत्पत्ति-इतिहास है। यहाँ नरवाहना कुवेरा, सिंहवाहिनी अम्बिका व श्वानवाहन क्षेत्रपाल तीर्थ की रक्षा करते है।

इस प्रकार श्री जिनप्रभ सूरि ने इस मथुरा-कल्प का कुछ वर्णन किया। इह लोक-परलोक के सुखार्थी भव्यजन इसे पढे।

मथुरा तीर्थ की यात्रा से जो पुण्य-ऋद्धि फल प्राप्त होता है वही इस कल्प को तल्लीनतापूर्वक सुनने से होता है।

श्री मथुरा-कल्प समाप्त हुआ। इसकी श्लोक सख्या ११३ और २९ अक्षर हैं।

●

१०. अश्वावबोध तीर्थ-कल्प

मात्र परोपकार रसिक, श्याम कान्ति वाले श्री मुनिसुव्रत जिनेश्वर को नमस्कार करके मैं श्री अश्वाववोध तीर्थ का कल्प सक्षेप से कहता हूँ।

श्री मुनिसुव्रत स्वामी केवल ज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात् विचरते हुए एकवार पैठानपुर (पैठण) (प्रतिष्ठानपुर) से एक रात्रि मे पाठ योजन उल्लघन करके जितशत्रु राजा के अश्वको प्रतिवोध देने के लिए लाट देश मडन नर्मदा नदी अलकृत भरुअच्छ (भरोच) नगर के कोरिंट वन में पहुँचे। जितशत्रु ने अपने प्रारभ किए हुए अश्वमेध यज्ञ में अपने सर्वलक्षणसम्पन्न अश्व को होमने की इच्छा की थी। अत आर्त्तध्यान के द्वारा दुर्गति मे न जाय इसीलिए भगवान उसे प्रतिवोध देने के लिए पधारे थे। उन्हे वन्दन करने के लिए लोग समवशरण मे आये, राजा भी गजारूढ होकर आया और भगवान को वदन किया। इसके वाद अश्व भी अपने साथ चलने के लिए नियुक्त पुरुषो के साथ स्वेच्छा से विचरता हुआ समवशरण मे आया और स्वामी का अनुपम रूप देखकर निश्चल खडा हो गया। उसने धर्म-देशना सुनी, प्रभु ने उसे पूर्व भव इस प्रकार कहा—

पूर्व भव मे मैं इसी जम्बूद्वीप के पश्चिम विदेह क्षेत्र के पुष्कल विजय की चम्पा नगरी मे सुरसिद्ध नामक राजा था। तुम मेरे परम मित्र मतिसार नामक मत्री थे। मैं नन्दन गुरु के चरणो मे प्रव्रजित होकर प्राणत कल्प–देवलोक मे गया। वहाँ वीस सागरोपम की आयु पूर्ण की, वहाँ से च्यव कर तीर्थंकर हुआ हूँ। तुम

नरायु बाँधकर भारत वर्ष के पद्मिनीखड नगर मे सागरदत्त नामक सार्थवाह हुए। तुम विनीत परन्तु मिथ्यादृष्टि थे। एक वार तुमने शिवायतन वनवाया, उसमे पूजा के लिए वगीचा भी लगाया और एक तापस को उसकी सार सभाल के लिए नियुक्त कर दिया। गुरु के आदेश से तुम सभी क्रिया कलाप करते हुए काल निर्गमन करते थे। जिनधर्म नामक श्रावक के साथ तुम्हारी गाढ मित्रता हो गई। एक वार तुम उसके साथ साधुओ के पास गए। उन्होने देशना के पश्चात् कहा—"जिसने अगूठे के पैरवे जितनी भी जिनेश्वर भगवान की प्रतिमा वनवायी है उसने निश्चित ही नरक-तिर्यंच गति के द्वार के अर्गला लगा दी है।"

तुम ऐसा सुनकर घर आये और सोने की जिनप्रतिमा वनवायी। उसकी प्रतिष्ठा करवा के तुमने त्रिकाल पूजा करना प्रारभ कर दिया। एक वार माघ-मास मे लिंगपूरण पर्वाराधन के के लिए तुम शिवायतन गये तव जटाधारी ने चिरसचित घृत के घडे लिंग-पूरणार्थ निकाले। उनमे लगी घृतेलिकाओ को तापस के द्वारा निर्दयता पूर्वक पाँवो से मसले जाते देख कर तुम शिर धुनते हुए कहने लगे—ये दर्शनी लोग भी इतने निर्दयी है तो हमारे जैसे गृहस्थ बिचारे क्या जीवदया पालेगे? फिर तुमने अपने वस्त्राञ्चल से प्रमार्जन करना प्रारभ किया। जटी ने तुम्हे फटकारते हुए कहा—'अरे धर्म सकर! कायर! तुम अरहन्त-पाखण्डियो द्वारा विडम्वित हो!' तव से तुम सव धर्मों से विमुख हो गए। निर्दयता पूर्वक धर्म रसिक लोगो को हँसते हुए मायारभ से तुम तिर्यंचायु वाँधकर भव भ्रमण करते हुए राजा के वाहन अश्व हुए। तुम्हे प्रतिवोध देने के लिए ही हमारा यहाँ आगमन हुआ है।

स्वामी के ऐसे वचनो को सुनकर उस घोडे को जाति स्मरण हो गया। उसने सम्यक्त्व मूल श्रावक धर्म स्वीकार कर सचित्त

का त्याग कर दिया और प्रागुक जल व सूखा घास ग्रहण करने लगा। छह मास पर्यन्त इन नियमो का पालन करते हुए मरके सौधर्म कल्प मे महर्द्धिक देव हुआ। उसने अवधि ज्ञान से अपना पूर्व भव ज्ञात कर भगवान के समवशरण स्थान रत्नमय चैत्य कराया। उसमे भगवान मुनिसुव्रत स्वामी की प्रतिमा और अपना भी अश्वरूप स्थापित कर वह देवलोक में लौट गया। तव से अश्वाववोध तीर्थ प्रसिद्ध हुआ। वह देव यात्री सघ के विघ्न दूर कर तीर्थ को प्रभावना करता हुआ मानव भव प्राप्त कर यथा-समय मोक्ष जावेगा।

कालान्तर मे वह तीर्थ शमलिका विहार नाम से प्रसिद्ध हुआ। कैसे ? यह वतलाते है। इसी जम्वू द्वीप के सिहल द्वीप मे रत्नासय देश के श्रीपुर नगर मे चन्द्रगुप्त नाम का राजा था, उसके चन्द्रलेखा भार्या थी। रानी के सात पुत्रो के वाद नर-दत्ता देवी की आराधना से सुदर्शना नामक पुत्री हुई। उसने समस्त कला और विद्याओ का अध्ययन कर तरुणावस्था प्राप्त की। एक दिन वह राज-सभा मे पिता के गोद मे वैठी थी तव धनेश्वर नामक एक व्यापारी भरोच से आया। वैद्य से पास रही हुई कटुक गन्ध के प्रभाव से छीकते हुए उसने "णमो अरहंताण" उच्चारण किया जिसे सुनकर राजकुमारी मूर्छित हो गई, वणिक पीटा गया। सचेत होकर जाति-स्मरण प्राप्त राजकुमारी अपने धर्म-वन्धु को देख कर प्रमुदित हुई। राजा द्वारा मूर्च्छा का कारण पूछने पर उसने कहा—

मैं पूर्वजन्म मे भरुअच्छ मे नर्मदा तट पर कोरिंट वन स्थित वट वृक्ष पर शमली-पक्षी थी। प्रावृष काल मे सात रात्रि तक महा-वृष्टि हुई, आठवें दिन नगर मे क्षुधातुर भ्रमण करते हुए मैं व्याध के गृहाङ्गण से मास-पिण्ड ले उडी। पीछा करते हुए व्याध ने

मुझ वट-शाखा पर बैठी हुई को तीर से बीध डाला और मुह से गिरे हुए मास-पिंड व तीर को लेकर व्याध अपने स्थान चला गया। मुझे करुण चीत्कारपूर्वक बिलबिलाते-छटपटाते हुए देखकर एक आचार्य महाराज ने जलपात्र से पानी छीट कर नवकार मन्त्र सुनाया। मैंने श्रद्धा की और मरकर आपकी पुत्री हुई हूँ।

तब से वह राजकुमारी विषयला विरक्त हो गई और माता-पिता को पूछ कर उसी श्रावक के साथ सात सौ जहाजो को लेकर भरौच के लिए रवाना हो गई। उनमे १०० जहाज वस्त्र, १०० जहाज द्रव्य निचय, अगर-चन्दन, धान्य, जल, ईंधन, नाना पक्वान्न, फल, प्रहरणादि के कुल छ सौ जहाज थे, पचास जहाजो मे शस्त्र धर व पचास मे भेंट प्राभृत थी। इस प्रकार सात सौ वाहन युक्त वह भरौंच के समुद्र तट पर पहुँची। राजा ने वाहन समूह को देख कर सिंहल नरेश की चढाई की आशका से नगर क्षोभ को दूर करने के लिए सेना को सुसज्जित किया और भेट-प्राभृत देने के लिए गया तो उस श्रावक ने राजकुमारी सुदर्शना के आने की सूचना दी। राजा ने निश्चिन्त होकर राजकुमारी को भेंट देकर प्रणाम किया। प्रवेश महोत्सव हुआ। राजकुमारी सुदर्शना ने मन्दिर देखा, विधिपूर्वक वन्दन-पूजन करके तीर्थोपवास किया एव राजा के दिये हुए प्रासाद मे रहने लगी।

राजा ने आठ सौ गाँवो के आठ वेलाकुल, आठ सौ किल्ले और आठ सौ नगर दिए। एक दिन मे जितनी भूमि मे घोडा जाय उतनी पूर्व दिशा मे और जितनी दूर हाथी जाय उतनी पश्चिम दिशा मे भूमि दी। राजा के आग्रह से उसने सब स्वीकार किया।

एक दिन उसने उन्ही आचार्य महाराज को अपना पूर्व भव पूछा—भगवन्! मैं किस कर्म से शमली हुई और उस व्याध ने मुझे मारा? आचार्य महाराज ने कहा—भद्रे! वैताढ्य पर्वत की

उत्तर श्रेणी मे सुरम्या नामकी नगरी मे विद्याधरेन्द्र सख नामका राजा था जिसकी तुम विजया नामक पुत्री थी एक वार दक्षिण श्रेणी के महिस ग्राम मे जाते हुए तुमने नदी तट पर कुक्कुट सर्प देखा और उसे रोप वश मार डाला। वहाँ नदी तट पर स्थित जिनायतन देखकर तुमने अत्यन्त भक्ति पूर्वक भगवान के दर्शन किये जिससे परम आनन्द हुआ। मन्दिर से वाहर निकलते तुमने मार्गश्रम से खिन्न एक साध्वी को देखा। उनकी चरण-वन्दना कर धर्म श्रवण किया। तुम भी उसकी विश्रामणादि द्वारा सुश्रुषा करके देर से घर आई। क्रमश तुम आर्त्त ध्यान से मर के कोरिष्टक वन मे शमली हुई। वह कुक्कुट सर्प मर के व्याध हुआ और पूर्व भव के वैर से उसने तुम्हे शमली के भव मे वाण से मारा। पूर्व भव मे जिन भक्ति और ग्लान साध्वी की सुश्रुषा के कारण तुम अन्त मे वोध प्राप्त हुई और जिनप्रणीत दानादि धर्माचरण कर रही हो। "इस प्रकार गुरु-महाराज के वचनो को श्रवण कर सुदर्शना अपने समस्त द्रव्य को सात क्षेत्रो मे व्यय करने लगी। चैत्योद्धार कराया, चौवीस देव कुलिकाए, पौषधशाला, दानशाला, अध्ययनशालाएँ कराई। अत. वह तीर्थ पूर्व भव के नाम से "शमलिका विहार" कहलाया। अन्त मे उसने द्रव्य भाव से संलेखना पूर्वक अनशन किया और मिती वैशाख शुक्ल ५ को ईशान देव लोक प्राप्त हुई।

श्री मुनिसुव्रत भगवान के मोक्ष जाने के पश्चात् ग्यारह लाख चौरासी हजार चार सौ सत्तर वर्ष वीतने पर विक्रमादित्य संवत्सर प्रवृत्त हुआ। पुन मुनिसुव्रत स्वामी के जीवितकाल (की तत्कालीन गणना) से ग्यारह लाख पचाणवें हजार मे अट्ठाईस वर्ष न्यून समय के वर्ष मे विक्रमादित्य होगा। यह शमली विहार की उत्पत्ति हुई।

भरु अच्छ (भृगुकच्छ-भरोच) मे अनेक लौकिक तीर्थ भी है।

क्रमश उदयन के पुत्र वाहडदेव ने शत्रुञ्जय-प्रासाद का उद्धार कराया। उसके अनुज अम्वड़ ने अपने पिता के पुण्यार्थ 'शमली विहार' का उद्धार कराया। मिथ्यादृष्टि सिन्धवा देवी ने प्रासाद शिखर पर नाचते हुए अम्बड को उपसर्ग किया जिसे आचार्य श्री हेमचन्द्र सूरि ने अपने विद्यावल से निवारण किया।

अश्वाववोध तीर्थ का यह कल्प सक्षेप से श्री जिनप्रभसूरि ने रचा है, भव्य जन इसे त्रिकाल पढें।

॥ अश्वाववोध तीर्थ कल्प समाप्त हुआ। यह ८२ श्लोक और अक्षर २० का है ॥

११. वैभारगिरि-कल्प

श्री जिनप्रभसूरि द्वारा वैभारगिरि का यह कल्प सक्षिप्त रुचि वालो की सतुष्टि के लिए स्तवन के रूप मे वनाया जाता है।

वैभारगिरि के गुण-प्राग्भार वर्णन करने मे वुद्धि से परिपूर्ण भारती भी समर्थ नही है वहाँ हम कौन चीज है?

जड-(वुद्धि) होते हुए भी हम तीर्थ की भक्ति रस-सिक्त गुणो से युक्त उस सुशोभित तीर्थराज की किञ्चित् स्तवना करते हैं।

यहाँ दारिद्रयविद्राविका रसकूपिका, गरम और ठण्ढे पानी के कुण्ड किसे कौतूहलपूर्ण नही करते? यहाँ त्रिकूट खण्डिकादि शिखर एव करण ग्राम के अवशेष घर और वन प्रकाशित हैं।

विविध व्याधियो को नष्ट करने के गुणयुक्त औषधियाँ, मनोहर जल वाले ह्रद एव सरस्वती आदि पुण्यसलिला नदियाँ यहाँ हैं।

यहाँ वहुधा मगधालोचनादि लौकिक तीर्थ हैं। यहाँ के चैत्यो मे अर्हन्त भगवान की प्रतिमाएँ और खण्डित-भग्न मूर्त्तियाँ भी हैं।

जो मेरु पर्वत के चारो उद्यानो की पुष्प सख्या जानते हैं वे ही यहाँ के सर्व तीर्थों की जानकारी वता सकते हैं।

श्री शालिभद्र-धन्ना ऋषि ने यहाँ तप्त शिलाओ पर कायोत्सर्ग किया, उन्हे देखने से पुरुषो के पाप नष्ट हो जाते हैं।

यहाँ सिह, शार्दूल, भालू भेडिये आदि तीर्थ के माहात्म्य से कभी भी उपद्रव नही करते।

यहाँ वौद्ध विहार भी प्रति प्रदेश मे देखे जाते हैं। यहाँ उन महर्षियो ने आरोहण कर निर्वाण प्राप्त किया था।

यहाँ जो दुर्गम अन्धेरी गुफा है, सुना जाता है कि यहाँ पूर्व काल मे रोहिणेय चोर आदि वीरो का निवास रूप था।

राजगृह के प्राचीन नामादि

इसकी उपत्यका मे राजगृह नगर सुशोभित है, जिसके क्षिति-प्रतिष्ठादि नाम जव तव हुए हैं। क्षितिप्रतिष्ठ, चणकपुर, ऋषभपुर, कुशाग्रपुर नामो के पश्चात् क्रमश राजगृह नाम हुआ।

यहाँ नयनो को शीतल करने वाला गुणशिल चैत्य था जहाँ भगवान महावीर स्वामी का समवशरण होता था।

जहाँ पर मेतार्य ने सोने का किल्ला वनवाया और पूर्व भव के मित्र देवता ने वहाँ मणियाँ लगवाई।

जगत् मे चमत्कार उत्पन्न करने वाली लक्ष्मी का भोग करने वाले यहाँ शालिभद्रादि अनेक महा धनिक सेठ हुए हैं।

यहाँ छत्तीस हजार वणिको के घर थे, जिनमे आधे वौद्ध और आधे जैन थे।

यहाँ के प्रासादों की श्रेणी अत्यन्त प्रेक्षणीय, कल्याणकारी थी जिनके आगे स्वर्ग के विमानो ने भी अभिमान छोड दिया था।

जहाँ जगत के मित्र सुमित्रवशरूपी कमल को प्रकाशित करने मे सूर्यवत् मुनिसुव्रत जिनेश्वर हुए, जिनके द्वारा अश्व को अववोध हुआ और वह व्रती वना।

जहाँ श्रीमान् जरासन्ध, श्रेणिक, कोणिक, अभयकुमार, मेघकुमार, हल्ल विहल्ल नन्दिषेण हुए। जम्बू स्वामी, कयवन्ना, शय्यभवसूरि आदि मुनि और नन्दादि पतिव्रता स्त्रिया हुई।

यहाँ श्रीमहावीर प्रभु के ग्यारह गणधर पादपोपगमनपूर्वक मोक्ष प्राप्त हुए। भगवान के ग्यारह गणधरो मे प्रभास नामक गणधर ने यही जन्म लेकर इसे पवित्र किया था।

जहाँ श्री वीर प्रभु ने चौदह चातुर्मास किए, ऐसे नालदालकृत स्थान वाली नगरी कैसे पावन नही है ? जहाँ के अनेक तीर्थ अशेष नयनाभिराम और भव्यो को आनन्ददायक है वह नालंदा हमे पावन करे।

रणाङ्गण मे शत्रुओ को अपने नाद से भगा देने वाला क्षेत्रपाल मुख्य मेघनाद किन पुरुषो की इच्छा पूर्ण नही करता ?

कल्याणक स्तूप के पास जो गौतम स्वामी का मन्दिर है, दर्शन मात्र से नमस्कार करने वाले प्राणियो की प्रीति को पुष्ट करता है।

विक्रम सवत् १३६४ मे देवताओ द्वारा सेवित वैभारगिरि तीर्थ का शिखर रूपी कल्पवृक्ष सेवा करने वालों को लक्ष्मी प्रदान करे। वैभारगिरि के स्वामी का गुणसमूह कहने मे सलग्न श्री जिनप्रभ सूरि की यह सूक्ति भक्तियुक्त धीरवुद्धिवाले मनुष्य इसके कोमल और विशद पदो को पढे।

श्री वैभारगिरि महातीर्थ का कल्प ग्र० ३१ अक्षर २ मे है।

•

१२ कौशाम्बीनगरी-कल्प

वत्स जनपद मे कौशाम्बी नामक नगर थी, जहाँ चन्द्र और सूर्य श्री वर्द्धमान स्वामी को वन्दनार्थ अपने विमान सहित आये। उनके प्रकाश के कारण समय न जानने से मृगावती समवशरण मे बैठी रही। चन्द्र-सूर्य के स्वस्थान जाने पर वह आर्या चन्दन-बालादि साध्वियो के प्रतिक्रमण करने के पश्चात् उपाश्रय पहुची। आर्या चन्दना से उपालम्भ पाकर चरणो मे गिर के स्व अपराध को खमाते हुए केवलज्ञान प्राप्त किया।

जहाँ उज्जयिनी से पुरुषपरम्परा द्वारा लायी हुई ईंटो चण्ड-प्रद्योतन राजा द्वारा मृगावती के कहने से बनवाया हुआ दुर्ग आज भी खडा है।

जहाँ मृगावती की कुक्षी से उत्पन्न गन्धर्ववेदनिपुण शतानीक पुत्र उदयन वत्स देशाधिप हुआ।

वहाँ के मन्दिरो से प्रेक्षक जनो के नयनाभिराम अमृताञ्जन सदृश जिन प्रतिमाएँ है। वहाँ कालिन्दी-यमुना नदी की जल लहरियो से आलिंगित होते हुए वन है।

यहाँ पौष कृष्ण प्रतिपदा के दिन अभिग्रह धारण करने वाले भगवान महावीर का पाँच दिवस न्यून छ मासी तप का पारणा चन्दनबाला ने सूप के कोने मे रहे हुए उडद के बाकुलो से कराया। देवो ने साढे बारह कोटि वसुधारा-वर्षा की, जिससे आज भी वसुहार नाम से प्रसिद्ध गाँव नगरी के पास बसता है। पच दिव्य प्रकट हुए। उस दिन से ज्येष्ठ शुक्ल १० को स्वामी के पारणा के दिन तीर्थ स्नान-दानादि आचार वहाँ आज भी लोको मे प्रवृत्त है।

यहाँ पद्मप्रभ स्वामी के च्यवन-जन्म-दीक्षा और केवलज्ञान-कल्याणक हुए हैं।

यहाँ स्निग्ध छाया वाले को सव वक्ष अधिक परिमाण मे देखे जाते है।

यहाँ पद्मप्रभ भगवान के मन्दिर मे प्रभु को पारणा कराती हुई चन्दनवाला की मूर्त्ति दिखायी देती है।

आज भी वहाँ उस मन्दिर मे प्रशान्तमूर्त्ति सिंह प्रतिदिन आकर भगवान की भक्ति करता है।

जिनेश्वर के जन्म से पवित्रित कोशाम्वी नगरी महातीर्थ श्री जिनप्रभ सूरि द्वारा स्तुत्य हमे शिव-मोक्ष दे।

कौशाम्वी नगरी का यह कल्प समाप्त हुआ, इसके श्लोक १८ और अक्षर २१ हैं।

•

१३. अयोध्यानगरी-कल्प

अयोध्या नगरी के अउज्झा, अवज्झा, कोसला, विनीता, साकेत, इक्ष्वाकुभूमि, रामपुरी, कोसल आदि सव एक ही पर्याय हैं। यह श्री ऋषभदेव, अजितनाथ, अभिनन्दन, सुमतिनाथ और अनन्तनाथ जिनेश्वर तथा महावीर स्वामी के नौवें गणधर अचल भ्राता की जन्मभूमि है और रघुवंशोद्भव दशरथ, राम, भरत आदि का राजस्थान है। विमलवाहन आदि सात कुलकर यही उत्पन्न हुए थे।

भगवान ऋषभदेव स्वामी का राज्याभिषेक युगलियो ने पत्र-सम्पुट मे जल लेकर चरणो मे छोड कर किया तो शक्रेन्द्र ने उन्हे विनीत पुरुष कहा, जिससे विनीता नगरी नाम रूढ हुआ।

यहाँ महासती सीता ने आत्म-शुद्धि करते हुए अपने शील के वल से अग्नि को जलपूर्ण किया। वह जल का पूर जव नगरी को डुबाने लगा तो उस सती ने ही अपने शील के माहात्म्य से उसकी रक्षा की।

यह अर्द्ध भरत-गोलार्द्ध पृथ्वी के मध्य मे नवयोजन विस्तीर्ण और वारह योजन दीर्घ है। यहाँ आयतनस्थित रत्नमय चक्रेश्वरी प्रतिमा और गोमुख यक्ष विघ्नो को शीघ्र हरण करते हैं। यहाँ घग्घर दह सरयू नदी के साथ मिल कर स्वर्गद्वार नाम से प्रसिद्धि प्राप्त है।

यहाँ से उत्तर दिशा मे वारह योजन पर अष्टापद पर्वत है जहाँ आदीश्वर भगवान सिद्धि को प्राप्त हुए। वहाँ भरतेश्वर ने सिंह-निषद्या नामक आयतन तीन कोरा ऊँचा कराया। अपने-अपने वर्ण और सस्थान युक्त चौवीस जिन-तीर्थंकरो के विम्व स्थापित किए। वहाँ पूर्व द्वार मे ऋषभ अजित दो, दक्षिण द्वार मे सभव-नाथादि चार, पश्चिम द्वार मे सुपार्श्वनाथादि आठ, उत्तर द्वार मे धर्मनाथादि दस तीर्थङ्कर एव अपने सौ भ्राताओ के स्तूप भी उसी ने वनवाये।

इस नगरी के वास्तव्य लोग अष्टापद की उपत्यका मे क्रीडा करते थे।

जहाँ से नवाङ्गी वृत्तिकारक (श्री अभयदेवसूरि) की शाखा मे समुद्भूत श्री देवेन्द्रसूरि दिव्य शक्ति से आकाश मार्ग द्वारा चार महाविम्ब सेरीसयपुर मे लाये।

जहाँ आज भी नाभिराजा का मन्दिर-महल है। वहाँ पार्श्व-नाथ वाटिका, सीताकुण्ड व सहस्रधारा है। प्राकार स्थित मत्त-

गयंद यक्ष है जिसके आगे से आज भी हाथी नही निकलते, यदि जाते है तो मर जाते है।

गोपदराई आदि अनेको लौकिक तीर्थ वहाँ वर्त्तमान है।

इस अयोध्यानगरी के गढ की दीवाले सरयू नदी के जल से सिंचित है। जैनशास्त्र विहित सप्ततीर्थी यात्रा से पवित्रित जन जयवन्त है।

श्री देवेन्द्रसूरिजी महाराज अयोध्यापुरी से चार बिम्ब कैसे लाए ? यह बतलाते हैं। सेरीषक नगर मे विचरने वाले, धरणेन्द्र-पद्मावती आराधित छत्तावल्लीय श्री देवेन्द्रसूरि ने उक्कुरुडि स्थान पर कायोत्सर्ग किया था। उनके कई बार ऐसा करने पर श्रावको ने पूछा—भगवन्! यहाँ कायोत्सर्ग करने मे क्या विशेषता है ? सूरि महाराज ने कहा—यहाँ पाषाणफलक है, जिसकी पार्श्वनाथ प्रतिमा बनवाने पर सन्निहित प्रातिहार्य होगी। श्रावको की प्रार्थना से सूरिजी ने अष्टम तप करके पद्मावती का आराधन किया। भगवती ने प्रत्यक्ष होकर कहा—सोपारक मे अन्धा सुथार है, वह यदि यहाँ आकर अष्टम तपपूर्वक सूर्यास्त के समय फलक घड़ना प्रारम्भ करे और दूसरे दिन सूर्योदय से पूर्व पूर्ण करे तो वह प्रतिमा निष्पन्न हो जायगी। श्रावकों ने उसे बुलाने के लिए सोपारक नगर पुरुष भेजे। वह सुथार आ गया और उसी प्रकार घडना प्रारम्भ किया। धरणेन्द्र को धारण की हुई पार्श्वनाथ प्रतिमा निष्पन्न हुई। सूत्रधार द्वारा घडते हुए प्रतिमा के हृदय पर मस्सा प्रादुर्भूत हुआ। उसने उसकी उपेक्षा करके बाकी प्रतिमा घटित्त की। फिर प्रतिमा को समारते हुए मस्सा देखा। उसने टंकी चलाई, रुधिर निकलने लगा। सूरि महाराज ने कहा—तुमने यह क्या किया ? इस मस्से के रहते यह प्रतिमा अतीव अद्भुतहेतुकि सप्रभाव होती। उन्होने अँगूठे से दबा कर रुधिर बन्द कर दिया।

उस प्रतिमा के वनने पर अन्य भी चौवीस जिन-विम्व खान से लाकर स्थापित किए। फिर दिव्य शक्ति से अयोध्या से तीन महाविम्व रात्रि मे आकाश मार्ग से लाये। चौथी प्रतिमा को लाते हुए रात्रि वीत गई और धारासेणक ग्राम के खेत मे वह रह गई। चालुक्यचक्रवर्त्ती महाराजा कुमारपाल ने चतुर्थ विम्व की स्थापना की। आज भी सेरीसा मे महाप्रभावक पार्श्वनाथ भगवान संघ द्वारा पूजे जाते हैं। वहाँ म्लेच्छ लोग भी उपद्रव नही कर सकते। शीघ्रतावश घड़ने के कारण वैसे सलावण्य अवयव नही देखे जाते। उस गाँव मे वह विम्व आज भी मन्दिर मे पूजा जाता है।

श्री अयोध्यापुरी का कल्प समाप्त हुआ, यह ४४ श्लोक व ९ अक्षर परिमित है।

●

१४. अपापा (पावा) पुरी संक्षिप्त-कल्प

जिसके समीप सिद्धार्थ वणिक के कहने से खरक वैद्य ने स्नान द्रोणी मे वैठाकर दोनो कानो मे शल्य खीचे जाने पर तीव्र पीडा से अन्तिम जिनेश्वर के चीत्कार शब्द से प्रस्फुटित गिरि दरी मे निकलने वाला पूर आज भी दिखाई पडता है।

जृम्भिका से रात्रि मे ही महसेन नामक वन मे आकर चरम जिनेश्वर-महावीर स्वामी ने वैशाख शुक्ल ११ को तीर्थ प्रवर्त्तन किया और वहाँ पर गौतम स्वामी आदि ग्यारह गणधरो को

उनके छात्रो सहित दीक्षित किया था। उन्होने त्रिपदी से भव-सागरनिस्तारिणी द्वादशाङ्गी ग्रथित की थी।

जहाँ हस्तिपाल राजा की शुल्कशाला मे अधिष्ठित श्री वर्द्ध-मान प्रभु ने दो दिन का अनशन करके अन्तिम देशना-वृष्टि की। स्वाति नक्षत्र के दिन अमावस्या की रात्रि के अन्त मे अतुलनीय सुखश्री का स्थान शिव-मोक्ष प्राप्त किया, वह नगरियो मे श्रेष्ठ पावा सर्वजनो को पापरहित बनावे।

जहाँ आज भी नागकुमार साँप के रूप मे प्रभाव दिखाते हैं। जहाँ अमावस्या की रात्रि मे तैलरहित जल से भरे हुए दीपक जलते हे। अनेक आश्चर्यो की भूमि चरम जिनेश्वर—महावीर स्वामी—के स्तूप से मनोहर स्वरूप वाली श्रेष्ठपुरी वह मध्यमा पावा यात्रियो की समृद्धि के लिए हो।

श्री अपापा (पावापुरी) कल्प सपूर्ण हुआ, इसके ग्रंथाग्र० १० अक्षर २१ हैं।

•

१५. कलिकुण्ड कुर्कुटेश्वर-कल्प

अग जनपद मे करकण्डु राजा के राज्यकाल मे चम्पा नगरी से अनतिदूर कादम्बरी नामक अटवी थी। वहाँ कली नामक पर्वत था जिसकी अधोभूमि मे कुण्ड नाम का एक सरोवर था। वहाँ यूथाधिपति महीधर नाम का एक हाथी (रहता) था। एक बार छद्मस्थ अवस्था मे विचरते हुए भगवान श्री पार्श्वनाथ स्वामी

कलिकुण्ड के समीप देश मे कायोत्सर्ग पूर्वक रहे। प्रभु को देखकर उस यूथाधिपति हाथी को जातिस्मरण उत्पन्न हुआ। उसने सोचा—मैं विदेह क्षेत्र मे हेमंधर नामक वामन था। युवक लोग और विट पुरुष मेरा उपहास करते थे। वैर के वशीभूत होकर नये हुए वृक्ष की शाखा पर फासी खाकर मरने की तैयारी मे मुझे सुप्रतिष्ठ सेठ ने देखा। उन्होने मुझे कारण पूछा, मैंने यथास्थित कहा तो वे मुझे सद्‌गुरु के पास ले गए। सम्यक्त्व ग्रहण कराया, अन्त मे अनशन करके मैंने निदान किया कि मैं भवान्तर मे ऊँचा होऊँ। फिर मर के इस वन मे हाथी हुआ। अव इन भगवन्त की पर्युपासना करूँ। ऐसा सोचकर वही सरोवर से सरस कमलो को लाकर उनसे जिनेश्वर भगवान को पूजा की। पूर्वगृहीत सम्यक्त्व परिपालित होने से अनशन करके वह व्यन्तर जाति मे महर्द्धिक देव हुआ। चरो के मुँह से यह अत्यन्त विचित्र वात सुनकर करकण्डू राजा वहाँ आया। भगवान को न देखकर राजा अत्यन्त आत्मनिन्दा करने लगा कि—वह हाथो ही धन्य हो गया जिसने भगवान की पूजा की, मैं तो अधन्य हूँ। इस प्रकार चिन्तन करते उसके आगे धरणेन्द्र के प्रभाव से वहाँ नौ हाथ प्रमाण वाली प्रतिमा प्रादुर्भूत हुई। राजा ने प्रसन्नतापूर्वक जय जयकार करते हुए वन्दन-पूजन किया। और वहाँ चैत्य भी वनवाया। वहाँ पुष्पादि से त्रिकालदर्शन-पूजन-स्तुति करते हुए राजा ने कलिकुण्ड तीर्थ प्रकाशित किया। वहाँ वह हाथी व्यन्तर सान्निध्य करता है, परचे पूरता है। नव यत्री आदि यन्त्र और कलिकुण्ड मन्त्र, षट् कर्म कार्य प्रकाशित किए। जैसे ग्रामवासी जन गाँव के नाम से पुकारे जाते है वैसे ही कलिकुण्ड निवासी जिनेश्वर भी कलिकुण्ड—पार्श्वनाथ कहलाते हैं। यह कलिकुण्ड की उत्पत्ति हुई।

पहले छद्मस्थावस्था मे श्री पार्श्वनाथ स्वामी राजपुरी मे कायोत्सर्ग ध्यान मे रहे। वहाँ घुडसवारी के लिए जाते हुए उस

नगर के स्वामी ईश्वर राजा के वन्दी वाणार्जुन ने भगवान को देखकर गुणकीर्त्तन किया। "ये अश्वसेन राजा के पुत्र जिनेश्वर देव है" यह ज्ञात कर राजा हाथी से उतर कर प्रभु के पास आकर मूर्छित हो गया। चेतना प्राप्त होने पर मत्री के पूछने पर वह अपना पूर्व भाव कहने लगा—जव मै चारुदत्त होकर पूर्व भव मे वसतपुर नगर मे पुरोहितपुत्र दत्त था और कुष्ठादि रोगो से पीडित हो गंगानदी मे पडते हुए चारण मुनि से बोध पाकर अहिंसादि पचव्रत पालन करते इन्द्रिय-शोषण व कषायविजय करने लगा।

अन्यदा चैत्यगृह मे आकर जिन-प्रतिमा को प्रणाम करते हुए पुष्कलि श्रावक ने देखा, उसने मुनि गुणसागर से पूछा—भगवन्! इसे मन्दिर मे आने मे दोष है या नही? मुनिराज ने कहा—"दूर से देव को प्रणाम करने मे क्या दोष है?" आज भी यह कुर्कट होगा" यह सुनकर खेद करते हुए फिर मुझे गुरु महाराज ने सम्बोधित किया कि—तुम जातिस्मरण-अनशन से मर के राजपुरी मे ईश्वर नामक राजा होओगे। तव मै सन्तुष्ट हुआ और वह सव अनुभव करके क्रमश राजा हुआ। प्रभु को देख कर मुझे जातिस्मरण हो गया।

इस प्रकार मत्री को कह कर भगवान को नमस्कार कर वहाँ सगीत करवाया।

प्रभु के अन्यत्र विहार कर जाने पर राजा ने वहाँ प्रासाद वनवाया, विम्व की प्रतिष्ठा करवाई। कुक्कुड श्रेष्ठ ईश्वर राजा का वनवाया हुआ कुक्कुडेश्वर नामक तीर्थ प्रसिद्ध हुआ। वह राजा क्रमश कर्म खपा कर सिद्ध होगा। यह कुक्कुडेश्वर की उत्पत्ति हुई।

कलिकुण्ड और कुक्कुडेश्वर, दो तीर्थो का श्री जिनप्रभसूरि द्वारा वर्णित कल्प भव्य जीवो का कल्याण करे।

कलिकुण्ड-कुक्कुटेश्वर कल्प समाप्त हुआ। इसकी ग्रन्थ सख्या ३५ और अक्षर एक है।

१६. हस्तिनापुर-कल्प

गजपुर (हस्तिनापुर) स्थित श्री शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ और मल्लिनाथ स्वामी को नमस्कार कर के हस्तिनापुर तीर्थ का कल्प सक्षेप से कहता हूँ।

श्री आदीश्वर भगवान तीर्थंकर के भरत और वाहुवली नाम के दो पुत्र थे। भरत के सहोदर अठाणवे कुमार थे। भगवान ने दीक्षा लेते समय भरत को अपने पद पर अभिषिक्त किया और वाहुवली को तक्षशिला दी, वाकी पुत्रो को भी उन देशो मे राज्यादि दिए। अग कुमार के नाम से अग देश हुआ, कुरु के नाम से कुरुक्षेत्र प्रसिद्ध हुआ। इसी प्रकार वग, कलिङ्ग, सूरसेन, अवन्ती आदि हुए। कुरु राजा का पुत्र हस्ति नामक राजा हुआ उसने हस्तिनापुर वसाया। वहाँ भागीरथी महानदी पवित्र जल से पूर्ण प्रवाहित है।

वहाँ सोलहवे शान्तिनाथ, सत्तरहवे कुन्थुनाथ, अठारहवे अरनाथ तीर्थङ्कर हुए। इन्होने क्रमश. पाँचवे, छठे और सातवें चक्रवर्त्ती हो कर छ खण्ड भरत की ऋद्धि भोगी। यही उनका दीक्षा-ग्रहण और यही उनको केवलज्ञान हुआ।

यही वर्षोपवासी भगवान ऋषभदेव को वाहुवली के पुत्र श्रेयास कुमार ने त्रिभुवन गुरु प्रभु के दर्शनो से जातिस्मरण द्वारा दानविधि ज्ञात कर अक्षय तृतीया के दिन इक्षु रस से प्रथम पारण कराया। वहाँ पञ्च दिव्य प्रकट हुए।

भगवान मल्लिनाथ स्वामी इसी नगर में समोसरे।

यहाँ महर्षि विष्णुकुमार ने तपोवल से लक्ष योजन प्रमाण

शरीर विकुर्वित कर के तीन पाँव से त्रैलोक्याक्रान्त करके नमुचि को शासित किया।

इस नगर मे सनत्कुमार, महापद्म, सुभूम और परशुराम आदि महापुरुष उत्पन्न हुए।

इसी नगर मे पाँच पाण्डव चरम शरीरी उत्तम पुरुष हुए। दुर्योधनादि अनेक महाबलवान राजा यहाँ उत्पन्न हुए।

यहाँ सात करोड स्वर्ण का अधिपति गङ्गदत्त सेठ हुआ। तथा सौधर्मेन्द्र का जीव कार्त्तिक सेठ हुआ जिसने राजाभियोग से परिव्राजक को परोसने से वैराग्यपूर्वक हजार व्यापारियो के साथ श्री मुनि सुव्रत भगवान के पास दीक्षा ली।

इस महानगरी मे श्रीशान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ और मल्लिनाथ जिनेश्वर के मनोहर चैत्य हैं, एव अम्बा देवी का भी देवकुल है।

इस प्रकार अनेक आश्चर्यो के निधान इस महातीर्थ मे जो विधिपूर्वक यात्रा महोत्सव आदि से जिन-शासन की प्रभावना करते हैं वे कुछ भवो मे ही कर्म क्लेश नष्ट कर सिद्धि प्राप्त करते हैं।

श्री हस्तिनापुर तीर्थ का यह सक्षिप्त कल्प भी सत्पुरुषो की सङ्कल्प-पूर्त्ति मे कल्प-वृक्ष की भाँति बने।

श्री हस्तिनापुर का कल्प समाप्त हुआ इसकी ग्रन्थ संख्या चौबीस और ११ अक्षर है।

●

१७. सत्यपुर-साचौर-तीर्थकल्प

श्री ब्रह्मशान्ति यक्ष सेवित्त श्री वीर जिनेश्वर को नमस्कार करके श्री सत्यपुर तीर्थ का कल्प किञ्चित् यथाश्रुत कहूँगा। (वीर स०) १३०० मे श्रीकन्नौज नरपति द्वारा कारित देवदारुमय जिनभवन मे श्री वीर जिनेश्वर सच्चपुर मे जयवन्त वर्त्तें।

इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे भारतवर्ष मे मरुमण्डल मे सत्यपुर (सच्चउर) नामक नगर है। वहाँ चैत्यगृह मे नाहड राय कारित और गणधर-आचार्य श्री जज्जिग सूरि प्रतिष्ठित पित्तल-मय श्री वीरप्रभ की प्रतिमा है। नाहडराय ने उसे कब और कैसे बनाया, उसकी उत्पत्ति बतलाते हैं—

पूर्वकाल में नड्डूल-मण्डल मण्डन मण्डोवर नगर के स्वामी राजा को बलवान भाइयो ने मार कर उस नगर को अधिष्ठित कर लिया। उस राजा की गर्भवती महादेवी भगकर ब्रह्माणपुर पहुँची। वहाँ उसने सकल लक्षण युक्त पुत्र प्रसव किया। फिर नगर के बाहर एक वृक्ष पर झोली मे उस बालक को रखकर तत्पार्श्ववर्त्ती स्थान मे कुछ काम करने लगी। दैवयोग से वहाँ श्री जज्जिगसूरि जी महाराज पधारे। वृक्ष की छाया को अपरि-वर्त्तित देखकर "यह पुण्यवन्त होगा"—ऐसा विचार कर चिर-काल तक वे उसे देखते रहे। उस राजपत्नी ने सूरि महाराज के निकट आकर पूछा—भगवन्! क्या यह लडका कुलक्षयकारी, अपलक्षणो वाला दिखाई देता है? सूरिजी ने कहा—भद्रे! यह महापुरुष होगा। अत इसे सर्व प्रयत्नो से पालन करना योग्य है। तब गुरु महाराज ने उसे अनुकम्पापूर्वक चैत्यगृह के कार्य पर नियुक्त कर दिया। उस लडके का नाम 'नाहड' रखा। गुरु

महाराज के मुख से उसने पच परमेष्ठी नवकार मत्र सीखा। वह चपलतावश धनुष-तीर लेकर अक्षय पट्ट (चावल चढाने का पाटा) पर आते हुए चूहो को अचूक लक्ष से मारने लगा। तब श्रावको ने उसे मन्दिर से निकाल दिया। अव वह लोगो की गायो की रक्षा करने लगा।

एक दिन नगर के वाहर भ्रमण करते हुए उसे किसी योगी ने देखा और उसे वत्तीस लक्षण धारी ज्ञात कर स्वर्णपुरुष सिद्ध करने के लिए उसके पीछे-पीछे जाकर उसकी माँ की अनुज्ञा लेकर वहाँ निवास कर लिया। अवसर पाकर एक दिन उस योगी ने नाहड़ से कहा—"गायो की रखवाली करते हुए तुम्हे रक्त दुग्ध वाला कुलिस वृक्ष (थोहर ?) मिले, यहाँ चिन्ह करके मुझे कहना।" वालक ने कहा—ठीक है। दैवयोग से एक दिन उसने वैसा देख कर योगी को वतलाया। दोनो वहाँ गए, यथाविधि अग्नि ज्वला-कर उसमे रक्तक्षीर प्रक्षिप्त कर योगी के प्रदक्षिणा देने पर नाहड़ ने भी अग्नि की प्रदक्षिणा दी। किसी प्रकार योगी की दुष्ट चित्त-वृत्ति ज्ञात कर राजपुत्र नाहड़ ने नवकार मन्त्र का स्मरण किया। उसके प्रभाव से योगी निष्प्रभ हो गया, नाहड़ ने उसे ही अग्नि मे डाल दिया, वह स्वर्णपुरुष वन गया।

नाहड ने विचार किया—अहो! मन्त्र का कैसा माहात्म्य है। इसके दाता गुरु महाराज का मैं कैसे प्रत्युपकार करूँगा ? फिर उसने गुरुचरणो मे आकर नमस्कार किया और सारा स्वरूप वताते हुए कहा—कुछ आज्ञा दीजिए!

गुरु महाराज के वचनो से नाहड ने चौवीस उत्तुङ्ग शिखर वाले चैत्य वनवाये। क्रमश वह प्रवर राज्यश्री को प्राप्त हुआ। वडी भारी सेना के साथ जाकर उसने अपना पैतृक स्थान ग्रहण किया।

देवपत्तन गयी। वीर प्रभु की रथारूढ प्रतिमा अदृश्य रूप से चल कर आश्विन-पूर्णिमा के दिन श्रीमालपुर (भीनमाल) मे आयी। अन्य सातिशय देवप्रतिमाएँ भी यथोचित स्थान मे चली गयी। नगरदेवता ने श्री वर्द्धमानसूरि को सकेत दिया कि जहाँ भिक्षा मे प्राप्त क्षीर रुधिर हो कर पुन क्षीर हो जाय वही साधुओ को रह जाना है।

हमीर की उस सेना ने विक्रम सवत् ८४५ मे वल्लभी भग कर के वहाँ के राजा को मार डाला। हमीर अपने स्थान लौट गया।

इसके बाद एक बार अन्य गजनीपति म्लेच्छ राजा गुजरात का भग कर के लौटते हुए विक्रम स० १०८१ मे साचौर पहुँचा। उसने वहाँ भ० महावीर का मनोहर जिनालय देखा। मारो-मारो बोलते हुए म्लेच्छ लोग प्रविष्ट हुए और हाथी जोत कर भगवान महावीर को खीचा, भगवान स्वस्थान से लेशमात्र भी न चले। फिर बैल जोत कर खीचने पर पूर्वभव राग से ब्रह्मशान्ति ने प्रभु को चार अगुल सरकाया। गजनीपति के स्वय हाँकने पर भी भगवान निश्चल हो कर रहे, मलेच्छपति उदास हो गया। फिर घन-हथोडो से महावीर स्वामी (प्रतिमा) को ताडन किया, जिसकी चोटें अन्त पुर की स्त्रियो के लगने लगी। तब मात्सर्य-विह्वल तुर्कों ने तलवार से भगवान महावीर की अगुली काट ली और उसे लेकर वे चल पडे। तब घोडो की पूँछें जलने लगी और म्लेच्छ लोग मूर्छित होने लगे। फिर वे घोडो को छोड कर पैदल ही भगे और धसमसते हुए जमीन पर गिर पडे। वे सर्वबल-क्षीण हो कर दीनतापूर्वक बिलबिलाते हुए रहमान को याद करने लगे। तब अदृश्य आकाशवाणी हुई कि वीर प्रभु की अगुली लाने से तुम लोगो का जीवितव्य ही संशय मे पड गया है।

गजनी बादशाह ने तब विस्मित चित्त से मस्तक धुनते हुए

सेनापति को आज्ञा दी कि यह अंगुली वापस ले जा कर वही लगा दो। वे लोग भीतिपूर्वक अंगुली वापस लाये और वह तुरंत स्वामी के हाथ पर जा लगी। यह आश्चर्य देख कर तुर्क लोग कभी स्वप्न मे भी साचोर का मार्ग नही पकडेगे। चतुर्विध सघ सन्तुष्ट हुआ, वीर प्रभु के मन्दिर मे गीत, नृत्य, वाजित्र, पूजा दानादि से धर्म-प्रभावना होने लगी।

अन्यदा वहुत सा काल बीत जाने पर मालवपति गुजरात का भग करने साचोर की सीमा पर पहुँचा। उस समय ब्रह्मशान्ति यक्षराज ने प्रचुर सैन्य विकुर्वण करके उसे भग्नबल अर्थात् पराजित कर दिया। उसके आवास-शिविर मे वज्राग्नि उठी। मालवपति कोश और कोष्ठागार छोड कर भाग छूटा।

फिर एक वार स० १३४८ मे प्रबलका फिर सेना देश का भग करती हुई नगर ग्रामो को नष्ट करती हुई चली आ रही थी तो जिनालय के द्वार वन्द करके चार योजन मे ब्रह्मशान्ति यक्ष के माहात्म्य से अनाहत गम्भीर स्वर युक्त वाजित्र श्रवण कर श्री सारगदेव महाराजा की सेना के आगमन की आशका से मुगल सेना भाग छूटी और साचौर की सीमा पर भी पैर नही दिया।

विक्रम सवत् १३५६ मे अलाउद्दीन सुलतान का छोटा भाई उलूखान ने मत्री माधव से प्रेरित हो कर दिल्ली से गुजरात की ओर प्रस्थान किया। उस समय चित्रकूटाधिपति समरसिंह ने दण्ड दे कर मेवाड देश की रक्षा की। तब हमीर युवराज वागड देश के मुहडासा आदि नगरो को भग करके आसावाल्ली (अहमदावाद) पहुँचा। राजा कर्णदेव भग गया। सोमनाथ को घन-घात से तोड कर गाडो में भर के दिल्ली भेजा। वामनस्थली जा कर मण्डलीक राजा को दण्डित किया। सौराष्ट्र मे अपनी आज्ञा प्रवर्त्तित कर आसावल्ली मे रहा। उसने मठ-मन्दिर और देव-कुलो को जलाया।

एक दिन उसने श्रीजज्जिगसूरि से प्रार्थना की—भगवन्! कुछ ऐसा आदेश दीजिए जिस कार्य से आपकी और मेरी कीर्त्ति चिरकाल तक फैले। तब गुरु महाराज ने जहाँ चारो थणो से गाय दूध झरती थी, वह भूमि अभ्युदयकारी ज्ञात कर राजा को दिखाई।

राजा ने गुरु महाराज के आदेश से सत्यपुर (साचौर) मे भगवान महावीर के ६०० वर्ष बीतने पर एक गगनचुम्बी शिखर वाला जिनालय बनवाया। आचार्य श्री जज्जिगसूरि ने वहाँ पित्तलमय श्री महावीर भगवान की प्रतिमा प्रतिष्ठित की। जब सूरि महाराज प्रतिष्ठा कराने के लिए चले तो अन्तराल मे एक उत्तम लग्न के समय नाहड राजा के पूर्वपुरुष विझराय की अश्वारूढ प्रतिमा का प्रतिष्ठा की। दूसरे लग्नविशेष मे पृथ्वी के मैण जैसी नरम होने पर शख नामक शिष्य ने गुरु महाराज के आदेश से दण्डघात द्वारा कुँआ बनाया। आज भी वह शख-कूप कहलाता है। वह कुँआ अन्य दिनो मे सूखा होनेपर भी वैशाखी पूर्णिमा के दिन पानी से भर जाता है। तीसरे लग्न में भगवान महावीर स्वामी की प्रतिष्ठा की। उसी लग्न मे "दुग्गा सूअ" गाँव मे और 'वयणप' गाँव मे साधु श्रावक के हाथ से वासक्षेप भेजकर महावीर भगवान की दो प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित कराई। उस (सत्यपुरीय) वीर प्रभु की प्रतिमा को राजा नित्यप्रति पूजा करता है। इस प्रकार नाहड राजा ने वह बिम्ब कराया।

वहाँ ब्रह्मशान्तियक्ष की सन्निहित प्रातिहार्य से अहर्निश पर्युपासना होती है। वह यक्ष पहले धनदेव सेठ का वृषभ था। उसने वेगवती नदी से पाँच सौ गाडे निकाले। सेठ ने सन्तुष्ट हो कर बैल के चारा-पानी के लिए वर्द्धमान ग्राम निवासी लोगो को वेतन-धन समर्पण किया। उन ग्रामीणो ने धन्न लेकर भी उस वृषभ की कोई सार-सभाल नही की। वह अकाम निर्जरा से मर

के व्यन्तर जाति मे शूलपाणि नामक यक्ष उत्पन्न हुआ। विभग-ज्ञान से अपना पूर्व जन्म का व्यतिकर ज्ञात कर उस गाँव मे मात्सर्यवश मारि उत्पन्न कर दी। गाँव वालो ने दुखी हो कर स्नान वलि-कर्म पूर्वक हाथ मे धूप लेकर कहा—जिस देव-दानव का हमारे से कुछ भी अपराध हुआ हो वह प्रसन्न हो। तब उस यक्ष ने पूर्वभव-वृषभ का वृत्तान्त कहा। लोगो ने उसी वृषभ के अस्थि-पुँजपर देवल वनवाया और उसकी प्रतिमा करवाई। देवशर्मा को वहाँ देवार्चक—पुजारी स्थापित किया। इस प्रसग से वर्द्धमान गाँव आस्तिक ग्राम प्रसिद्ध हुआ। शान्ति हुई।

श्री वर्द्धमान स्वामी छद्मस्थ विहार से विचरते हुए क्रमशः दुइज्जन्त तापसाश्रम से वर्षावास के लिए उस गाँव मे पधारे। गाँव वालो से पूछ कर भगवान उसी देवकुल मे रात्रि के समय कायोत्सर्ग स्थित रहे। उस मिथ्यादृष्टि देव ने भयङ्कर अट्टहास किया। हाथी-नाग-पिशाचादि रूप वना कर उपसर्ग किया। शिर, कान, नासिका, दाँत, आँख, नख और पीठ मे भीषण वेदना उत्पन्न की। सर्व प्रकार से प्रभु को अक्षुण्ण ज्ञात कर देव उपशान्त हो हो गया और गीत-नृत्य-स्तुति आदि से पर्युपासना करने लगा। इसके वाद उस यक्ष शूलपाणि का नाम ब्रह्मशान्ति प्रसिद्ध हुआ। वही यक्ष साचौर के वीर-चैत्य मे प्रतिष्ठाविशेष से निवास करता है।

पश्चिम गुजरात मे वल्लभी नामकी समृद्धिशाल नगरी थी जिसमे शीलादित्य नाम का राजा था। उसने रत्नजटित कागसी के लोभ मे आकर राका नामक सेठ का पराभव किया। कुपित सेठ उसे विग्रहणार्थं गज्जणपति हमीर को प्रचुर धन देकर उसकी विशाल सेना चढा लाया। उस समय चन्द्रप्रभ स्वामी की प्रतिमा, अम्वा और क्षेत्रपाल युक्त अधिष्ठायक के वल से गगन-मार्ग द्वारा

क्रमश सात सौ देग में आया। तव साचौर मे उसी प्रकार अनाहत वाजित्रो को सुन कर म्लेच्छो का दल पलायन कर गया। इस प्रकार पृथ्वीमण्डल मे साचौर के वीर प्रभु के अनेक अवदान पवाडे (पायडा) सुने जाते हैं।

व्यन्तर देव केलिप्रिय होते ही है अव अलघनीय भवितव्य और दूषमकाल के विलसित प्रभाव के कारण मदिर मे गोमांस-रुधिर के छीटने से देवता लोग दूर चले जाते है। अधिष्ठायक ब्रह्मशान्ति यक्ष के प्रमादवश असन्निहित अवस्था मे राजा (सुलतान) अलाउद्दीन ने उस अनल्प माहात्म्य वाले भगवान महावीर की प्रतिमा को सवत् १३६७ विक्रमीय मे दिल्ली लाकर आशातना भाजन किया।

कालान्तर मे फिर भी दूसरी प्रतिमाएँ वहाँ प्रगट प्रभावी और पूजनीय होगी।

साचोर तीर्थ का यह कल्प अप्रमेय महिमा वाला और वांछित फल-सिद्धिकारक है। श्रीजिनप्रभसूरि कहते हैं भव्यजन नित्य पढें।

श्री सत्यपुर-साचोर तीर्थ कल्प समाप्त हुआ, इसकी ग्रन्थसख्या १६१ और ३ अक्षर हैं।

•

१८. अष्टापद महातीर्थ-कल्प

(श्री धर्म घोपसूरि कृत)

जो श्रेष्ठ धर्म, कीर्त्ति और विद्याओ के आनन्द के आश्रम भूत भगवान ऋषभदेव द्वारा पवित्रित है और देवेन्द्रो से वन्दित है उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (१)

जहाँ आपदाएँ नष्ट करने वाले अष्टापद आदि एक लाख दोषो को दूर करने वाले स्वर्ण की जैसी आभा वाले भगवान ऋषभदेव हैं, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (२)

भगवान ऋषभदेव के बाहूबलि आदि ९९ पुत्र-प्रवर मुनिगण जहाँ अजरामर पाये, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (३)

जहाँ प्रभु के वियोग से भीरु दस हजार महर्षि प्रभु के साथ ही अनशन करके मुक्त हुए उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (४)

जहाँ भगवान ऋषभदेव के साथ आठ पौत्र और ९९ पुत्र एक समय मे मुक्त हुए, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (५)

तीन चिताओ के स्थान मे जहाँ मूर्त्त रत्नत्रय की भाँति इन्द्र ने तीन स्तूपो की स्थापना की, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (६)

जहाँ भरत चक्रवर्ती ने सिद्धायतन के समान सिंहनिषद्या नामक चतुर्मुख चैत्य बनवाया, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (७)

जहाँ एक योजन लम्बा और उससे आधा चौडा एव तीन कोश ऊँचा चैत्य विराजमान है, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (८)

जहाँ भरत ने भाइयो की प्रतिमाएँ, चौबीस तीर्थंकरो की प्रतिमाएँ एव अपनी भी प्रतिमा बनवायी, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (९)

जहाँ भरत ने अपने-अपने आकार और वर्ण वाले वर्त्तमान (चौबीसी) के जिनेश्वरो के बिम्ब भरवाये, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (१०)

जहाँ ९९ प्रतिमाओ से युक्त भाइयो के स्तूप एव अर्हन्त भगवान के स्तूप बनवाए, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (११)

भरत द्वारा जहाँ मोहरूपी सिंह का नाश करने के हेतु अष्टा-पद सिंह की भाँति आठ योजनो वाली पैड़ियो से सुशोभित है, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (१२)

जहाँ भरत चक्रवर्ती आदि अनेको कोटि महर्षियो ने सिद्धि-साधना की, वह अष्टापद गिरिराज की जय हो। (१३)

जहाँ सगर राजा के पुत्रो के आगे भरत महाराजा के वंशज महर्षियो के सर्वार्थसिद्ध एव मोक्ष प्राप्ति करने वालो का सुबुद्धि ने वर्णन किया, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (१४)

जहाँ समुद्र के समान विशाल आशय वाले सगर राजा के पुत्रो ने गिरिराज के चारो ओर रक्षा के लिए परिखा—सागरखाई बनाई, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (१५)

जहाँ जैन लोग अपने पापो को प्रक्षालन करने के लिए ही मानो चारो ओर गगा से आश्रित है और हमेशा चचल लहरो से शोभायमान है उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (१६)

जहाँ जिनेश्वर भगवान को तिलक चढाने से दमयन्ती ने अपने भालस्थल पर स्वाभाविक तिलक रूप अनुरूप फल प्राप्त किया, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (१७)

जहाँ क्रोधपूर्वक उठ कर समुद्र मे फैंकने को प्रस्तुत रावण को चरणो से दबा कर वालि मुनि ने रुला दिया, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (१८)

लकेन्द्र रावण द्वारा जिन-पूजोत्सव के समय अपनी भुजाओ की ताँत निकाल कर वीणा बजाने से धरणेन्द्र के द्वारा अमोघ विजया शक्ति उसे मिली, उस अष्टापद गिरिराज की हो (१९)

जहाँ चारो दिशाओ मे चार, आठ, दश और दो जिन प्रति-माओ को गणधर (श्रीगौतम स्वामी) भगवान ने वन्दन किया, उस अष्टपद गिरिराज की जय हो। (२०)

अपनी शक्ति से जो इस गिरि को वन्दन करते है वे अचल उदय को प्राप्त करते है—ऐसा भगवान महावीर ने वर्णन किया, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (२१)

प्रभु के कहे हुए पुण्डरीक अध्ययन को गौतम द्वारा पढने से (बोध पाकर) तिर्यक जृम्भिकदेव दशपूर्वी वज्रस्वामी हुए, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (२२)

जहाँ जिनेश्वरो का स्तवन कर लौटते श्रीगौतम स्वामी ने पन्द्रह सौ तापसो को दीक्षित्त किया उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (२३)

इस प्रकार अष्टापद पर्वत के समान अष्टापदमय चिरस्थायी महातीर्थ वर्णन किया गया हैं, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। (२४)

यह अष्टापद महातीर्थ-कल्प समाप्त हुआ, यह श्रीधर्मघोष सूरि की रचना हैं। इसके ग्रन्थाग्र० ३० और २२ अक्षर सख्या है।

१९. मिथिलातीर्थ-कल्प

देवताओसे प्रणत श्री मल्लिनाथ और नमिनाथ जिनेश्वर के चरणकमलो मे प्रणाम कर के मैं मिथिला महानगरी का कल्प लेशमात्र कहता हूँ।

इसी भारतवर्ष मे पूर्व देश मे विदेह नामक जनपद है तो वर्त्तमान काल मे तिरहुत देश कहलाता है। वहाँ प्रत्येक घर मे

मधुर मञ्जुला फलो के भार से नत कदलीवन दृष्टिगोचर होते हैं। पथिक लोग भी दूध मे सिद्ध हुए चिउडा और क्षीर का भोजन करते हैं। पद-पद पर मीठे पानी वाली वापी, कूप, तालाव और नदियाँ हैं। प्राकृत—ग्राम्य जन भी सस्कृत भाषा विशारद, अनेक शास्त्रो के प्रशस्त विद्वान् और अतिनिपुण लोग हैं। वहाँ ऋद्धि से समृद्ध मिथिला नामक नगरी थी जो वर्त्तमान मे जगई नाम से प्रसिद्ध है। इसके निकट ही जनक महाराजा के भ्राता कनक का निवासस्थान कनकपुर है।

इस मिथिला नामक नगरी मे कुम्भ राजा और प्रभावती की कुक्षी से सभूत भगवान मल्लिनाथ स्त्रीतीर्थंकर और विजयनृप-वप्रादेवी के नन्दन नमि जिनेश्वर का च्यवन, जन्म-दीक्षा और केवलज्ञान कल्याणक हुए हैं।

यहाँ श्री वीर प्रभु के अष्टम गणधर अकम्पित का जन्म हुआ है।

यहाँ जुगवाहु-मयणरेहा के पुत्र नमी नामक महाराजा वलय—चूडियो के शब्द से प्रत्येकवुद्ध हुए और सौधर्मेन्द्र परीक्षित वैराग्य निश्चय वाले हुए।

यहाँ ही लक्ष्मीगृह चैत्य मे आर्य महागिरि के शिष्य कौण्डिन्य-गोत्रीय अश्वमित्र श्री वीर-निर्वाण के दो सौ वीस (२२०) वर्ष वीतने पर अणुप्रवाद पूर्व मे रही हुई नैपुणिका वस्तु को पढते हुए श्रद्धाहीन हो गया। प्रवचन-स्थविरो द्वारा अनेकान्तिक युक्तियो से समझाकर मना करने पर भी वह उत्सूत्र प्ररूपणा कर चतुर्थ निह्नव हुआ।

श्री महावीर स्वामी के पद-पङ्कजो से पवित्रित जल वाली वाणगगा और गडकी नदियो का सगम इस नगरी को पावन करता है।

यहाँ चरम तीर्थङ्कर-श्री महावीर भगवान ने वर्षाकाल विताया था।

यहाँ जनकसुता महासती सीता की जन्मभूमि का स्थान विशाल वट विटपी प्रसिद्ध है।

यहाँ श्री राम-सीताका विवाह-स्थान साकल्लकुण्ड नाम से लोक मे रूढ है। और यहॉ पाताललिङ्ग आदि अनेक लौकिक तीर्थ भी विद्यमान हैं।

यहाँ मल्लिनाथ चैत्य मे वैरुट्या देवी, कुबेर यक्ष एव नमिनाथ चैत्य मे गधारी देवी और भृकुटि यक्ष आराधक जनो के विघ्न अपहरण करते हैं।

जिनमार्ग मे स्थित जो लोग इस मिथिला कल्प को सुनते और पढते हैं, उनके कण्ठ मे मुक्ति श्रीवरमाला डालती है। ('जिणपह' शब्द से कल्प रचयिता श्री जिनप्रभ सूरि का नाम भी समझना चाहिए)।

श्री मिथिला तीर्थ का कल्प समाप्त हुआ। यह ग्रथाग्रं० ३४ अक्षर १८ परिमित है।

■

२०. रत्नवाहपुर-कल्प

श्री रत्नवाहपुर स्थित श्री धर्मनाथ भगवान को नमस्कार करके उसी पुर-रत्न का कल्प किंचित् करता हूँ। इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे भारतवर्ष के कोशल जनपद मे नानाजातीय उच्च-

स्तरीय शाखा वाले वहुल दलकुसुम-फलाच्छादित, सूर्य-रश्मि अगम्य गहन वन मण्डित, निर्मल-शीतल वाले निर्झर, घर्घर नद से मनोहर रत्नवाह नामक नगर है। वहाँ इक्ष्वाकु कुल दीपक स्वर्ण वर्ण और वज्र लाछन युक्त ४५ धनुष प्रमाण देह वाले पन्द्रहवे तीर्थङ्कर विजयविमान से अवतीर्ण होकर भानु नरेन्द्र के घर सुव्रता देवी की कुक्षी से पुत्ररूप मे अवतरित हुए और गुरुजनो द्वारा धर्मनाथ नाम रखा गया। उनके जन्म-दीक्षा और केवलज्ञान कल्याणक भी यही हुए और समेत शिखर पर निर्वाण हुआ। इसी नगर मे लोगो के नेत्रो को शीतलता प्रदान करने वाला, नाग-कुमार देव द्वारा अधिष्ठित श्री धर्मनाथस्वामी का चैत्य समय आने पर बना।

उस नगर मे एक कुम्भार अपने शिल्प मे निष्णात था। उसका पुत्र तरुणावस्था प्राप्त करके भी क्रीडा की दुर्लिप्सा से घर से वहाँ के रामणीयक शालिनी चेत्य मे आकर यथेच्छ द्यूतादि क्रीडा किया करता था। वहाँ एक केलिप्रिय नागकुमार देव भी मानव देह धारण कर कुम्भार के लडके के साथ प्रतिदिन क्रीडा करने लगता। अपने कुलक्रमागत कुलाल कर्म का धन्धा न करने के कारण उसका पिता हमेशा उसे दुर्वचनो से फटकारता। जव वह पिता की वात नही मानता तो पिता उसे मार-पीट कर मिट्टी खोदने व लाने आदिका काम कराता। फिर भी वह मौका पाकर बीच-बीच मे उसी चैत्य मे जा कर नागकुमार के साथ खेलने लगता।

नागकुमार ने पूछा—पहिले की तरह निरन्तर खेलने नही आते ? उसने कहा—मेरा पिता क्रुद्ध होता है अत उदर-पूर्त्ति के लिए कुछ अपना काम भी करना पडता है। नागकुमार ने कहा—यदि ऐसी वात है तो खेल के पश्चात् मैं पृथ्वी पर लोट

कर साँप हो जाऊँगा, तुम मेरी चार अगुल पूँछ अपनी मिट्टी खोदने की कुदाली से काट कर ले लेना। वह स्वर्णमय हो जायगी उसी सोने से तुम्हारे कुटुम्ब का निर्वाह होता रहेगा। सौहार्द के कारण प्रतिदिन इसी प्रकार प्रवृत्ति चलने लगी। प्रतिदिन सोना पाकर भी उसका पिता इस रहस्य से अनभिज्ञ रहा।

एक वार पिता ने उसे बाँध कर पूछा तो भय से उसने यथा-स्थित कह दिया तो विस्मयपूर्वक उसके पिता ने कहा—रे मूर्ख! चार अगुल ही क्यो काटते हो? अधिक काटने से अधिक प्राप्ति होती है! पुत्र ने कहा—पिताजी! मित्र के वचनो का उल्लघन कर अधिक काटने की मेरी इच्छा नही है। पर पिता तो लोभाभि-भूत था, वह लडके की क्रीडा के समय चैत्य मे छिपा खडा रहा। खेल के पश्चात् जव नागकुमार साँप वन कर भूमि पर लोटता हुआ विल मे प्रवेश करने लगा तो पिता ने कुदाली से उसका आधा शरीर काट डाला। नागकुमार ने क्रुद्ध होकर—रे पापी! तुमने रहस्य खोल दिया—कहते हुए गहरा फटकारा और पिता-पुत्र दोनो को काट खाया। इतना ही नही, नागकुमार ने तीव्र क्रोधावेश मे समस्त कुंभारो के वश का नाश कर दिया। उसके वाद आज तक कोई कुभार का काम करने वाला वहाँ नही रहता। वहाँ की जनता मिट्टी के वर्त्तन अन्य स्थानो से लाती है।

वहाँ उसी प्रकार नागमूर्त्तियुक्त धर्मनाथस्वामी की प्रतिमा सम्यग्दृष्टि यात्रियो के द्वारा वडे समारोहपूर्वक पूजी जाती है। आज भी वहाँ इतर धर्म वाले धर्मराज के नाम से उन्हे पुकारते है और वर्षा न होने पर हजारो घडे दूध से भगवान का अभिषेक कराते है। उसी समय वहाँ प्रचुर मेघवृष्टि हो जाती है।

कन्दर्पा शासनदेवी और किन्नर शासनयक्ष भगवान धर्मनाथ के भक्त-पूजको के विघ्न दूर कर अर्थ की प्राप्ति भी कराते हैं।

श्रीरत्नवाहपुर या रत्नपुर का यह कल्प श्री जिनप्रभ सूरिजी ने यथाश्रुत निर्माण किया है।

॥ श्री धर्मनाथ की जन्मभूमि रत्नपुर तीर्थ का कल्प समाप्त हुआ। इसकी ग्रथाग्र० ३२ और अक्षर २३ है ॥

२१. पावापुरी-दीपावली-बृहत्कल्प

श्री महावीर भगवान को नमस्कार करके उन्ही के मोक्षगमन से पवित्रित, दीवाली महोत्सव की उत्पत्ति से प्रतिवद्ध पावापुरी का कल्प कहूँगा।

गौड़ के पाडलिपुर मे त्रिखण्ड भरत का स्वामी राजा सम्प्रति परमश्रावक प्रणत हो कर आर्य सुहस्ति गणधर को पूछता है कि भगवन्! लोक और लोकोत्तर का गौरवान्वित यह दीवाली पर्व कैसे हुआ? गुरु महाराज कहते हैं—राजन्! सुनो।

उस काल उस समय मे श्रमण भगवान महावीरस्वामी प्राणतकल्प स्थित पुष्पोत्तर विमान मे वीस सागरोपम आयु परिपूर्ण कर, वहाँ से च्यव कर तीन ज्ञान के सहित इसी अवसर्पिणी के तीन आरो के व्यतिक्रान्त होने पर चतुर्थ आरे के पचहत्तर वर्ष और साढे नौ मास अवशेष रहने पर मिति आषाढ शुक्ल ६ के दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र मे माहणकुण्ड ग्राम नगर मे ऋषभदत्त ब्राह्मण की भार्या देवानन्दा की कुक्षी मे—सिंह, गज, वृषभादि चतुर्दश महास्वप्न ससूचित—अवतीर्ण हुए। वहाँ ८२ दिन के

अनन्तर शक्रेन्द्र के आदेश से हरिणेगमेषी ने आश्विन कृष्ण १३ को उसी उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में क्षत्रियकुण्ड ग्राम नगर मे सिद्धार्थ राजा की त्रिशला देवी के गर्भ से विनिमय कर के गर्भ मे रखा। सातवें महीने मे माता का स्नेह ज्ञात कर प्रभु ने ऐसा अभिग्रह लिया कि "मैं माता पिता के जीवित्त रहते श्रमण नही बनूँगा!" नौ मास और साढे सात दिन वीतने पर चैत्र शुक्ल त्रयोदशी की अर्द्ध रात्रि मे उसी उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र मे प्रभु का जन्म हुआ। माता पिता ने वर्द्धमान नामकरण किया। मेरु-कम्प, देव गर्व खर्वण (विनाश), इन्द्र व्याकरण प्रणयन अवदान प्रगट कर भोगो को भोग कर, माता-पिता के स्वर्ग जाने पर, तीस वर्ष गृहस्थावास मे रह कर, सम्वत्सरी दान देकर, चन्द्रप्रभा शिविका मे अकेले एक देवदूष्य से मार्गशीर्ष कृष्ण १० के दिन उसी उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र मे छट्ठ तपपूर्वक अपराह्न मे ज्ञात खण्ड वन मे निष्क्रान्त—दीक्षित हुए। दूसरे दिन वहल विप्र ने पायस-क्षीर से पारणा कराया। पञ्च-दिव्य प्रादुर्भूत हुए। फिर बारह वर्ष साढे छ: मास तक मनुष्य, देव और तिर्यञ्चो द्वारा किये हुए उपसर्गों को सहन कर उग्र तपश्चर्या-करके जभिय गाँव मे ऋजुवालुका तट पर गोदोहनासन मे छट्ठ भक्त से उसी उत्तरा-फाल्गुनी नक्षत्र मे वैशाख शुक्ल दशमी के तृतीय प्रहर मे केवल-ज्ञान प्राप्त हुए। ग्यारस के दिन मध्यम पावा मे महसेन वन मे तीर्थ प्रवर्त्तन किया। इन्द्रभूति प्रमुख गणधरों को सपरिवार दीक्षित किया। दीक्षा-दिवस से भगवान के ४२ वर्षा-चातुर्मास हुए यथा—१ अस्थिग्राम मे, ३ चम्पा—पृष्ठचम्पा मे, १२ वैशाली—वाणियग्राम मे, १४ नालन्दा-राजगृह मे, ६ मिथिला मे, २ भद्रिका मे, १ अलभिका मे, १ पणिय भूमि मे, १ श्रावस्ती मे। फिर अन्तिम मध्यम-पावा मे हस्तिपाल राजा के अभुक्तमान शुल्क-शाला मे हुआ। वहाँ आयु शेष जानते हुए स्वामी ने सोलह प्रहर तक देशना की।

वहाँ राजा पुण्यपाल वन्दनार्थ आया और अपने देखे हुए आठ स्वप्नो का फल पूछने लगा। भगवान कहते हैं वे यों हैं—प्रथम हिलते हुए प्रासाद पर हाथी खडे हैं, उनके गिरने से कोई उधर से नही जाता। जो जाते उनमे से कितने ही निकल भी जाते हैं और कितने उसके गिरने से नष्ट भी हो जाते है। इस स्वप्न का फल ऐसा है—चलते प्रासाद के स्थान पर दुखमय गृहस्थावास, सपदाएँ, स्नेह और निवास अस्थिर हैं। अहो! दूषमकाल से दुष्प्र-जीवी इत्यादि वचनो से धर्मार्थी श्रावक गजरूप हैं। इतर पर समय प्राधान्यरूप से वे देशभगादि द्वारा प्रतिहत हो जायँ पर निकलना नही चाहते। जो लोग व्रत ग्रहण कर निकलते भी है, वे अविधि से निर्गमन करते हैं, उनका भी विनाश हो जायगा। गृहस्थ लोगो के सक्लेश मे पडने पर वे भग्न परिणाम वाले होगे। विरले ही सुसाधु हो कर आगमानुसार गृहस्थो के संक्लेश मे आने पर भी अवगणना कर के कुलीन होने से सयम का निर्वाह करेगे। यह प्रथम स्वप्न का अर्थ है।

दूसरा स्वप्न यह है—वानरो के मध्य मे वहुत से यूथाधिपति थे वे अमेध्य से अपने आपको लीप रहे है, दूसरे भी ऐसा ही करते हैं, लोग उन्हे हँस रहे हैं। वानर कहते हैं यह अशुचि नही गोशीर्ष चन्दन है। ऐसे वानर विरले हैं जो अमेध्य का विलेपन नही करते। जो नही करते उन पर करने वाले खीजते है। इसका फल यह है—वानर स्थानीय गच्छगत साधु हैं। कितने ही अप्रमत्त और कितने ही चल परिणाम वाले हैं। यूथाधिपत्तियो के स्थान पर आचार्यादि गच्छाधिपति समझना चाहिए। अशुचि-विलेपन के स्थान पर उनके द्वारा आधा कर्मादि सावद्य सेवन, अन्य विलिपन के स्थान पर अन्य साधुओ का भी वैसा ही करना और उसके कारण लोगो का हँसना, उनकी अनुचित्त प्रवृत्ति से वचनो द्वारा

हीलना है। वे कहेगे कि ये गर्हित नही किन्तु धर्म के अग है। विरले ऐसे होगे जो उनके अनुरोध करने पर भी सावद्य प्रवृत्ति नही करेगे। वे उन पर क्रोध करेगे और कहेगे—ये अवगीत है, अकिञ्चित्कर हैं। यह दूसरे स्वप्न का अर्थ है।

तीसरा स्वप्न यह था—उत्तम छाया वाले क्षीर वृक्ष के नीचे वहुत से प्रशान्त रूप वाले सिंह-शावक वैठे हैं। लोग उनकी प्रशसा करते है, अधिगमन करते है। और ववूल वृक्षो के नीचे श्वान वैठे हैं। इसका फल यो है—क्षीर तरु स्थानीय साधुओ के विचरने योग्य क्षेत्र हैं। श्रावक लोग साधुओ की भक्ति-ब्रहुमान करने वाले, धर्मोपकरण देने वाले और सुसाधुओ की रक्षा करने वाले है, वे भी वहुत से सिंहपोतक नियतावासी पार्श्वस्थ, अवसन्न, सक्लेशकारी साधुरूपी श्वानो के द्वारा रुके हुए है। वे स्वय को जन रजनार्थ प्रशान्त दिखला कर तथा प्रकार के कुतूहली लोगो के द्वारा प्रशसा पावेगे, उनके पास जावेगे और उनके वचनो का पालन करेंगे। वहाँ कदाचित् कोई धर्म श्रद्धालु व्यवहार के परिहार करने वालो से दुखी होगे तो वे तद्भावित श्वानादि से प्रतिहसित होगे। वार-वार शुद्ध धर्म कहने से उन्हे लोग कहेगे—ये तो भौंकते है। जिन ववूल के समान कुलो मे वे दुखी होगें ऐसे लोगो से अवर्णवाद के द्वारा उनका परिहास होगा। दूषमकाल के प्रभाव से धर्मगच्छ सिंहपोतक के समान होगें।

चौथा स्वप्न इस प्रकार था—कितने ही कौए वापी के तट पर तृषा से अभिभूत थे। वे मायासर को देख कर वहाँ जाने लगें। किसी ने उन्हे रोका—"यह जल नही हैं"। किन्तु उन्होने विश्वास नही किया, वहाँ गए और नष्ट हो गए। इसका फल यह है—वापी स्थानीय सुसाधु सत हैं, जो अत्यन्त गम्भीर सुभावितार्थ और उत्सर्गापवादकुशल हैं। पागल न होने पर भी पागल वने हुए राजा की भाँति यह जानकर कि कालोचित धर्मनिरत और

अनिश्रित के समीप भी रहना चाहिए। यहाँ काक के समान अत्यन्त वक्र जड अनेककलकोपहत धर्मार्थी जानना चाहिए। वे आज भी धर्म श्रद्धा से अभिभूत हैं। मायासर के स्थान पर पूर्वोक्त विपरीत धर्माचारी हैं। अत्यन्त कष्टानुष्ठान निरत भी अपरिणत होने से अनुवाद प्रवृत्तता से कर्मबन्ध के हेतु हैं। उन्हे देख कर मूढ धार्मिक जन वहाँ जायँगे। उन्हे कोई गीतार्थ कहे कि ये धर्म मार्ग नही है किन्तु धर्माभास हैं, तो भी विश्वास न करते जावेगे वे ससार मे पतन से नष्ट होगे। जो उनके वचन से रुकेंगे वे ही अमूढ धर्मसाधक होगे।

पाँचवा स्वप्न यह है—विषय वन मे मृत सिंह अनेक गीदडो से घिरा हुआ है किन्तु कोई भी शृगालादि उसका विनाश नही कर रहे है। कालान्तर मे उस मृत सिंह के कलेवर मे कीडे उत्पन्न हो गए और सिंह को खाने लगे, यह देख कर शृगालादि उपद्रव करने लगे। इसका फल—उपनय यो है कि—सिंह के स्थान पर परवादिमत दुर्द्धर्ष प्रवचन है। वन के स्थान पर प्रविरल सुपरीक्षक धर्मी जनो वाला भारतवर्ष है। शृगाल गणो के स्थान परतीर्थिकादि प्रवचन प्रत्यनीक है। वे ऐसा मानते हैं कि यह प्रवचन हमारे पूजा सत्कार दानादि का उच्छेद करने वाला है, अत. जैसे तैसे नष्ट हो जाय। वह विषम अमध्यस्थ जनो से परिपूर्ण है और वह प्रवचन मृत अतिशय व्यपगम से निष्प्रभाव होगा। तो भी प्रत्यनीक जन भय से उसे उपद्रुत नही करेंगे। वास्तव मे यह परोत्पर सुस्थित और सगत है। काल-दोष से उसमे प्रवचन निर्द्धंश करने वाले मतान्तरीय रूपी कीड़े उत्पन्न हो जाएँगे और वे परस्पर निन्दा-भण्डनादि से शासन का लाघव करायेंगे। उसे देख वे प्रत्यनीक भी "ये परस्पर न मिले" इसलिये निश्चय निरतिशेप मात्र प्रवचन को निर्भयता से उपद्रव करेंगे।

छठा स्वप्न यो हैं—पद्माकर सरोवरादि विना पद्म वाले और

गर्दभक-छीलर युक्त वन गए है। कमल विरल रूप मे ऊकरडी पर उगे हुए हैं किन्तु वैसे रमणीय नही। यहाँ पद्माकरो के स्थान पर धर्मक्षेत्र और सुकुल जानने चाहिए। धर्म प्रतिपत्ति रूप तथा साधु-श्रावक सघ रूप कमलादि उसमे नही है। जो धर्म स्वीकार करेंगे वे भी कुशील संसर्गी और लोलुप परिणाम वाले हो जाएगे। ऊकरडे के स्थान पर प्रत्यन्त क्षेत्र अथवा नीच कुलादि जानना चाहिए, उनमें धर्मप्रवृत्ति होगी वे भी अर्थानुपत्ति दोष से लोगो के द्वारा तिरस्कृत होगे! ईर्ष्यादि दोष दुष्ट होने से अपनी कार्य-सिद्धि नही कर सकेंगे।

सातवाँ स्वप्न यह है—कोई दुर्विदग्ध कृषक जले हुए और घुन लगते हुए ऊगने के अयोग्य वीजो को अच्छे वीज मानता हुआ ऊषरादि खेतो में विखेर कर वो रहा है। उन बीजो मे आया हुआ कोई विरल शुद्ध वीज वह हटा देता है। इसका फल यो है—

कृषक स्थानीय दानधर्मरुचि जीव हैं, वे दुर्विदग्ध है, किन्तु अपने आप को ज्ञायक मानते हुए अप्रायोग्य सघ भक्तादि दान को प्रायोग्य मानते हुए उन वस्तुओ को भी अपात्रो को देते हैं। यहाँ चतुर्भंगी है—एक शुद्ध अप्रायोग्य मे किञ्चित् शुद्ध देने योग्य होता है, उसको दूर कर देते हैं, अथवा आये हुए सुपात्र को परिहार कर देगे। इस प्रकार के दान, दायक और ग्राहक होगे। अन्यथा भी व्याख्या है—अबीज के स्थान पर असाधु जानना चाहिए। दुर्विग्ध लोग उन्हे भी साधु-बुद्धि से ग्रहण करेंगे। अस्थानो मे अविधि से स्थापित करेंगे। जैसे कोई दुर्विग्ध कृषक अवीजो को भी वीज और बीजो को अबीज मानता हुआ उस प्रकार से वहाँ वोता हैं जहाँ कीडे आदि खा जाते है अथवा चतुष्पदादि नष्ट कर दे। अथवा अन्यथा उगे हुए भी नही काटे जाते। इस प्रकार अज्ञानी धर्म श्राद्ध वाले सुपात्रो को भी अविधि

अवहुमान अभक्ति आदि उस प्रकार करेंगे कि जिससे पुण्य का प्रसव अक्षम हो जायगा।

आठवाँ स्वप्न यह है—प्रासाद के शिखर पर क्षीरोद से भरे सूत्रादि से अलकृत ग्रीवा वाले कलश है, दूसरे भूमि पर उतारे हुए कलश पडे हैं। कालान्तर मे वे शुभ कलश अपने स्थानो से चलित हो उन पुराने घडो के ऊपर गिरे जिससे वे फूट गए।

इसका फल यह है—कलश स्थानीय सुसाधु हैं, पहले उग्र विहार से विचरते थे। पूज्य हो कर भी कालादि दोष से सयम स्थान से चलित हो कर अवसन्नभूत शिथिलाचारी हो जावेगे। दूसरे पार्श्वस्थादि भूमिस्थित-भूमिरज उद्वेलित्त पाँवो से सैकड़ो असयम स्थान युक्त वोदे घडो के जैसे निषन्न परिणाम वाले होगे। और वे सुसाधु अन्य विहार क्षेत्रो के अभाव से घूमते हुए वोदे घडो के समान पार्श्वस्थादि के ऊपर गिर कर पीडा करेंगे। और वे स्वक्षेत्र पर आक्रमण से पीडित होते हुए निर्दयता से उनके सुष्ठुतर सक्लेश करेंगे। तव वे परस्पर विवाद करते हुए दोनो ही सयम से भ्रष्ट हो जायँगे।

"कितने ही तप का गौरव करने वाले और दूसरे स्वधर्म क्रियाओ मे शिथिल, ऐसे दोनो ही मात्सर्यवश अस्पृष्ट धर्म हो जायँगे।"

फिर कितने ही "पागल न होने पर भी पागल वने राजा" के आख्यान के अनुसार कालादि दोष होने पर भी अपना निर्वाह करेगे। उस आख्यान को पूर्वाचार्य इस प्रकार वतलाते हैं—

पूर्वकाल मे पृथ्वीपुरी मे पूर्ण नाम का राजा और उसके सुवुद्धि मत्री था। एक वार लोगदेव नामक एक नैमित्तिक आया। सुवुद्धि मत्री ने उसे भावी काल का स्वरूप पूछा। उसने कहा—महीने के वाद यहाँ मेघवृष्टि होगी, जो भी उसका जल पीयेगे वे

सभी ग्रथिलत्वग्रस्त—पागल हो जायँगे। कितना ही काल बीतने पर फिर सुवृष्टि होगी जिसका जल पी कर वे लोग पुन स्वस्थ होगे। मन्त्री ने तव राजा से यह वात कही। राजा ने ढिंढोरा पिटा कर लोगों को जल-सग्रह करने का आदेश दिया। लोगो ने जल-संग्रह भी किया। महीना होते ही मेघवृष्टि हुई। उन लोगो का सगृहीत जल समाप्त हो गया तो लोगो ने नया जल पीना प्रारम्भ कर दिया, जिससे सामन्तादि सभी लोग पागल हो कर स्वेच्छा से नाचते-गाते रहने लगे। केवल राजा और मन्त्री ने सगृहीत जल नही छोड़ा और वे स्वस्थ रहे। तव राजा और मत्री को अपने जैसा न देखकर सामन्तादि ने परस्पर मन्त्रणा की कि—"राजा और मन्त्री पागल हैं जो हमारे जैसा आचरण नही करते। अत इन्हे हटाकर अपने जैसे आचरण करने वाले दूसरे राजा और मत्री को स्थापित करेंगे। मत्री ने उनकी मन्त्रणा ज्ञात कर राजा से निवेदन किया। राजा ने कहा—इन लोगो से अपने को कैसे सुरक्षित रखना। क्योकि लोकवृन्द ही राजा के तुल्य होता है। मत्री ने कहा—राजन्! पागल न होने पर भी अपने को पागल वन कर रहना चाहिए, अन्यथा छुटकारा नही।

राजा और मत्री कृत्रिम पागल होकर उन लोगो के बीच अपनी सपत्ति की रक्षा करते हुए रहने लगे, जिससे वे सामन्ता द सन्तुष्ट होकर कहने लगे—अहो! राजा और मत्री भी हमारे जैसे हो गये। इस उपाय से उन्होने अपनी रक्षा की। कालान्तर मे सद्वृष्टि हुई और उस नवीन जल को पीकर सभी लोग प्रकृतिस्थ-स्वस्थ हो गए।

इस प्रकार दूपम काल मे गीतार्थ लोग भी अपना भविष्य सुरक्षित रखने के लिए कुलिगी लोगो के जैसे ही रहते हुए अपना निर्वाह करेगे। इस प्रकार स्वामी के मुख से दूषम काल विलसित

भावी सूचना देने वाले आठ स्वप्नो का फल श्रवण करके पुण्यपाल राजा प्रव्रजित होकर मोक्ष गए।

इस दूपम समय के विलास को लौकिक मे भी कलिकाल नाम से पुकारते हैं। जैसे—पूर्वकाल मे द्वापरयुगोत्पन्न राजा युधिष्ठिर ने राजवाटिका जाते हुए किसी स्थान पर वछडी के नीचे एक गाय को स्तन-पान करते देखा। यह आश्चर्यजनक घटना देखकर राजा ने द्विजवरो से पूछा—यह कैसे ? उन्होने कहा—देव ! यह आने वाले कलियुग का सूचक है। इस अद्भुत वात का फल यह है कि—कलियुग मे माता-पिता अपनी कन्या को किसी ऋद्धि सम्पन्न घर मे देकर द्रव्य ग्रहणादि द्वारा अपनी आजीविका चलावेंगे।

वहाँ से आगे प्रस्थान कर चलते हुए राजा ने किन्ही लोगो को पानी मे भीगी हुई वालुका की रस्सी वटते हुए देखा और क्षणमात्र मे वह रस्सी वायु के सयोग से नष्ट हो गई। राजा के पूछने पर द्विज ने कहा—महाराज ! इसका फल यह है कि जिस द्रव्य को कठिनाई से आजीविका करके वढाएँगे वह धन कलियुग मे चोर-अग्नि-राजदण्डादि से विनष्ट होगा।

फिर आगे चलकर धर्मपुत्र ने देखा आवाह (खेली) से वह कर उलटा जल कुएँ मे गिरता है। वहाँ भी ब्राह्मणो ने कहा—जिस द्रव्य को असि-मसि-कृपि और वाणिज्यादि द्वारा प्रजा उपार्जन करेगी वह सव राजकुल मे चला जायगा। जहाँ दूसरे युगो मे तो राजा लोग अपना द्रव्य देकर लोगों को सुखी करते हैं।

आगे जाते हुए फिर राजा ने राय चम्पा और शमीवृक्ष-खेजडी को एक ही प्रदेश मे देखा। वहाँ लोगो को शमी वक्ष की वेदिका वाँधकर गध-माल्यादि से अलकृत कर गीत नृत्य महिमादि करते हुए देखा और दूसरे छत्राकार वृक्ष को सुगन्धित पुष्पो से समृद्ध

होते हुए भी कोई नही पूछता था। ब्राह्मणो ने उसका फल इस प्रकार कहा—गुणवान महात्मा और सज्जनो की पूजा नही होगी और ऋद्धि भी नही होगी। निर्गुण स्थान, पापी और दुष्ट लोगो को प्राय कलियुग मे पूजा सत्कार और ऋद्धि प्राप्त होगी।

आगे चल कर राजा ने एक सूक्ष्म छिद्रो वाली शिला को केशाग्र से बधे हुए अन्तरिक्ष स्थित देखा। वहाँ भी पूछने पर श्रेष्ठ जनेऊधारी विप्र ने कहा—महाभाग! कलिकाल मे शिला की भाँति विपुल पाप होगा और वालाग्र जितना धर्म होगा। पर उतने से धर्म के माहात्म्य से ही लोग कुछ समय निस्तार करेगे, उसके टूटने पर सब डूब जायगा।

पूर्वाचार्यो ने भी लोकविख्यात कलियुग माहात्म्य को दूषम काल मे इस प्रकार वतलाया है—

कूवावाहा जीवण-तरुफलवह-गावि वच्छ धावणया।
लोह विवज्ज(च्च)य कलिमल-सप्प गरुड़पूअपूआय ॥१॥

अर्थ—आवाहोपजीवी कूप, फलो के लिए वृक्ष-वध, वछिया द्वारा गौ का पालन, लोह-कटाह मे कलिमल पाक, सर्पो-दुष्टो की पूजा और गरुड-धर्मी जनो-की अपूजा होगी।

हत्थगुलि दुग घट्टण-गय-गद्दभ-सगड़-वाल सिलधरण।
एमाई आहारणा लोयमि वि काल दोसेण ॥२॥

अर्थ—दो अंगुलियाँ हाथ का घट्टन करेगी, हाथी के योग्य शकट गर्दभ लेगे, वालो से शिलाधारण, आदि इस तरह की वाते लोक मे कालदोष से होगी।

जयघर कलह कुलेयर मेरा अणु सुद्ध धम्म पुढवि ठिई।
वालुग वक्कारभो एमाई आइ सद्धेण ॥ ३ ॥
कलिअवयारे किय निज्जिएसु चउसुपि पडवेसु तहा।
भाइ वहाइ कहाए जामि ग जोगमि कलिणाओ ॥ ४ ॥

तत्तो जुहिट्ठिल्लेण जियमि ठइयमि दाइए तमि।
एमाई अट्ठुत्तर सएण सिट्ठा नियठिइ त्ति ॥ ५ ॥

इन गाथाओ का अर्थ

कूप से आवाह आजीविका करेगा। इसका उपनय राजा कूप-स्थानीय है वह आवाहस्थानीय ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र सभी के भरण-पोषण करने योग्य है पर कलियुग-दोष से उन्ही से अर्थ ग्रहण करेगा (१)। तथा फल के लिए वृक्ष का वध और छेद होगा। फलतुल्य पुत्र तरुतुल्य पिता का वध-हानि-उद्वेग, धनप्राप्ति लेखनादि से उपार्जन करेगे (२)। वछिया तुल्य कन्या के विक्रय से गोतुल्य जननी धावन तुल्य उपजीवन करेगी (३)। लोहमयी कडाई—जो सुगन्धित तैल-घृत पाक के उचित है उसमे कलिमल रूप पिगित आदि का पाक होगा। याने स्वजाति वर्ग को छोड-कर अनालबद्ध पराये जनो मे अर्थदान होगा, ये भाव है (४)। साँप जैसे धर्मवर्जित निर्दयो का दानादि सत्कार होगा, गरुड़ स्थान पूज्य धर्माचार्यों की अपूजा होगी (५)।

दो अगुलियो से हाथ का घाटन और स्थापन होगा। हाथ के तुल्य पिता का अंगुली द्वय तुल्य बहुत से पुत्रो द्वारा जयघर झगडा करने-वशीभूत करने वाले घट्टण नामक लोग होगे (६)। हाथी से वहन करने वाले शकट को गर्दभ के द्वारा ग्रहण किए देखा। उसका फल—गजस्थानीय उच्चकुलो मे जो मर्यादा रूपी शकट वाहन के उचित थे उनमे कलह और पुनर्विवाह होगे। इतर गर्दभ स्थानीय नीच कुलो मे उत्तम नीति होगी (७)। बाल से बंधी हुई शिला आकाश मे लटकती देखी, थोडा भी सूक्ष्मतर बाल स्थानीय शास्त्रानुसार शुद्ध धर्म है। शिला तुल्य पृथ्वी उसके निवासी लोग स्थिति निर्वाह करेगे (८)। जैसे बालुका से बनाई रस्सी नही पकडी जा सकती उसी प्रकार वाणिज्य-कृषि, सेवा आदि आरभ से भी विशिष्ट प्रासादानुरूप फल प्राप्त नही होगा (९)।

शेष दो गाथाओ का अर्थ कथानकगम्य है वह इस प्रकार है—

पाँच पाडवो ने दुर्योधन, दु शासनादि सौ भाइयो और कर्ण, गागेय, द्रोणाचार्य आदि संग्राम के अग्रणी लोगो को मार दिया। वहुत काल तक राज्य का परिपालन कर कलियुग-प्रवेश के समय महापथ मे प्रस्थान किया। किसी वन-प्रान्त मे पहुचे, वहाँ रात्रि मे युधिष्ठिर ने भीम आदि को प्रतिप्रहर प्रहरिक—पहरेदार रूप से नियुक्त किया। धर्मपुत्रादि के सो जाने पर पुरुप रूप करके कलि भीम के सम्मुख उपस्थित हुआ। उसने भीम से कहा—अरे! भाइयो, गुरुओ, पितामह आदि को मार कर अव तुम धर्मार्थ जा रहे हो? यह तुम्हारा कैसा धर्म है। तव भीम क्रुद्ध हो कर उसके साथ युद्ध करने लगा जैसे जैसे भीम युद्ध करता था वैसे वैसे कलि वढता जाता था, कलि ने भीम को जीत लिया। इसी प्रकार दूसरे प्रहर मे अर्जुन को, तीसरे मे नकुल को और चौथे मे सहदेव को उसने कहा। उन्होने क्रोध किया और वे भी हार गए। कुछ रात्रि शेष रहे युधिष्ठिर उठे, कलि उनके साथ भी युद्ध करने को प्रस्तुत हुआ। तव शान्ति से ही राजा ने कलि को जीत लिया और छोटा सा वना कर सराव मे वैठा दिया और प्रात भीमादि को दिखला कर कहा—यह वही है जिसने तुम्हे जीत लिया था। इत्यादि कलिस्थिति के १०८ दृष्टान्त महाभारत मे व्यास ऋषि ने दिखाये हैं। अस्तु,

तदनन्तर गौतम स्वामी ने जानते हुए भी पूछा—भगवान्! आपके निर्वाणानन्तर क्या-क्या होगा? प्रभु ने कहा—गौतम! मेरे निर्वाण के तीन वर्ष साढे आठ मास वीतने पर पाँचवा दु षम आरा लगेगा। मेरे मोक्ष गमन के ६४ वर्ष हो जाने पर अन्तिम केवली जम्बूस्वामी मुक्ति जावेगे। उन्ही के साथ मन पर्यव ज्ञान, परमावधि ज्ञान, पुलाक लब्धि, आहारक शरीर, क्षपकश्रेणी,

उपशमश्रेणी, परिहार विशुद्ध-सूक्ष्म सपराय और यथाख्यात चारित्र, केवलज्ञान और सिद्धि गमन ये बारह स्थान भारतवर्ष में विच्छेद हो जाएँगे।

अज्ज सुहम्मप्पमुहा होहिंति जुगप्पहाण आयरिया।
दुप्पसहो जा सूरी चउरहिआ दोण्णि अ सहस्सा ॥१॥

[आर्य सुधर्म आदि से लेकर दु प्रसह सूरि पर्यन्त दो हजार चार युग प्रधानाचार्य होंगे।]

एक सौ सत्तर से कुछ अधिक वर्ष बीतने पर स्थूलिभद्र के स्वर्गस्थ होने पर अतिम चार पूर्व, समचतुरस्र सस्थान, वज्र ऋषभ नाराच सघयण, और महाप्राण ध्यान विच्छेद हो जाएँगे। पाँच सौ वर्ष बीतने पर आर्यवज्र के साथ दशवाँ पूर्व और चतुष्क संघयण नष्ट हो जायगा।

मेरे मोक्षगमन के पश्चात् पालक, नंद, चद्रगुप्त आदि राजाओ के हो जाने के पश्चात् चार सौ सत्तर वर्ष बाद विक्रमादित्य राजा होगा। इस बीच ६० वर्ष पालक का राज्य, १५५ वर्ष नन्दो का, १०८ वर्ष मौर्यवशियो का, ३० वर्ष पुष्यमित्र का, ६० वर्ष वलमित्र-भानुमित्र का, ४० वर्ष नरवाहन का, १३ वर्ष गर्दभिल्ल का, ४ वर्ष शको का फिर विक्रमादित्य का राज्य होगा। वह स्वर्णपुरुष सिद्ध किया हुआ और पृथ्वी को अनृण करके अपना सवत्सर चलायगा।

निर्वाण के चार सौ त्रेपन वर्ष बाद गुण शत कलित श्रुत प्रयुक्त, गर्दभिल्ल के छेदक कालकाचार्य होगे।

दूषम काल के प्रभाव से बडे नगर गाँव जैसे हो जाएँगें और गाँव स्मशान जैसे हो जावेंगे। राजा लोग यमदण्ड जैसे, कौटुम्बिक दासप्राय सरकारी कर्मचारी घूसखोर, भृत्य स्वामीद्रोही, सासूएँ कालरात्रितुल्य, वहुएँ सर्पिणीतुल्य, कुलाङ्गनाएँ निर्लज्ज कटाक्षो से देखने वाली वेश्याचरण शिक्षित होगी। पुत्र और शिष्य स्वच्छद-

चारी होगे। मेघ असमय वर्षी और समय पर नही वर्षने वाले होगे। दुर्जन लोग सुखी और ऋद्धि-सम्मान के पात्र होगे। सज्जन अल्प ऋद्धि वाले, अपमानपात्र और दुखी होगे। देश में परचक्र, डमर, दुर्भिक्ष, आदि दुख होगे। अधिकाश पृथ्वी क्षुद्र सत्व हो जायगी। विप्र लोग धनलोभी और अस्वाध्यायी होगे। श्रमण लोग कषाय कलुषित मन वाले मन्दधर्मी और गुरुकुल-वासत्यागी होगे। सम्यग्दृष्टि सत्पुरुष अल्पवल और मिथ्यादृष्टि प्रचुर शक्तिशाली होगे। देव दर्शन नही देंगे। विद्या-मत्र उस प्रकार के प्रभावशाली नही रहेगे। औषधियाँ, गोरस, कर्पूर, शर्करादि द्रव्यो के रस, वर्ण, गन्धादि की हानि होगी। मनुष्यो के वल, वुद्धि और आयुष्य का ह्रास हो जायगा। मासकल्पादि के योग्य क्षेत्र नही रहेगें। प्रतिमारूप श्रावक धर्म का विच्छेद हो जायगा। आचार्य भी शिष्यो को सम्यक् श्रुत नही देगे।

भरतादि दश क्षेत्रो मे श्रमण कलहकारी, डमर कारी, असमाधि करने वाले और अनिवृत्तिकारक होगे। मुनियो के दिन व्यवहार, मत्र-तत्रादि मे बीतेंगे और इन्ही की साधना मे लग जाने से उस अनर्थलुब्धो का आगमार्थ नष्ट हो जायगा। जिस प्रकार राजा व्यापारियो से धन लेने के लिए युद्ध करेगे वैसे ही साधु लोग भी श्रावको से उपकरण, वस्त्र, पात्र, वसति आदि के लिए लडेंगे। अधिक क्या ? मुण्ड वहुत किन्तु साधु अल्प होगे।

पूर्वाचार्य परम्परागत समाचारी को छोड कर स्वमति विकल्पित समाचारी को "यही सम्यक् चारित्र है!" ऐसा कहते हुए तथा विविध मुग्धजनो को मोह मे डाल कर उत्सूत्रभाषी, अल्प स्तुति और परनिन्दापरायण कितने ही साधु होगें। म्लेच्छ नृप वलवान और हिन्दू राजा अल्प वल वाले होगे।

निर्वाण के यावत् १९१४ वर्ष वीतने पर विक्रम सवत् १४४४ मे पाटलिपुत्र नगर मे चैत्र शुक्ल ८ की अर्द्ध रात्रि-वृष्टिकरण-मकर-

लग्न मे जिसके मतातर मे 'मगदण' नामक चाण्डाल कुल वाले के घर जसदेवी की कुक्षि से कल्कि गजा का जन्म होगा। कोई ऐसा भी कहते हैं

"भगवान महावीर के १९२८ वर्ष पाच मास वीतने पर चाण्डाल कुल मे कल्कि राजा होगा।" उसके तीन नाम होगे—कइ, कल्कि और चतुर्मुख। उसके जन्म-समय मे मथुरा मे राम और मधुसूदन का भवन कही भी गुप्त रहा हुआ गिरेगा। दुर्भिक्ष, डमर, रोगो से जन पीडित होगे। अठारहवे वर्ष मे कात्तिक शुक्ल पक्ष मे कल्कि का राज्याभिषेक होगा। लोगो के मुख से ज्ञात कर वह नन्द राजा के पाँच स्वर्ण स्तूप ग्रहण करेगा। चमडे के सिक्के चलावेगा। दुष्टो का पालन और श्रेष्ठ पुरुपो का निग्रह करेगा। पृथ्वी को साधन कर छत्तीसवे वर्ष मे त्रिखण्ड भरत का अधिपति होगा। खोद खोद कर सभी निधानो को ग्रहण करेगा।

उसके भण्डार मे ९९ कोटा कोटि सुवर्ण, चौदह हजार हाथी, सत्यासी लाख घोडे, पाँच करोड़ हिन्दु तुर्क और काफिरो की पदाति होगी। उसका एकछत्र राज्य होगा। द्रव्य के लिए राज-मार्ग पर खनन करते हुए पाषाणमय लवणदेवी नामक गाय प्रकट होकर गौचरी-चर्या मे गए साधुओ को सीगो से मारेगी। उनके प्रातिपदाचार्य को कहने पर वे आदेश देगे कि इस नगर की पृथ्वी पर जल का उपसर्ग होगा। तब कुछ साधु अन्यत्र विहार कर जावेगे। कितने ही वसति प्रतिवन्ध से तद्ग्रहणार्थ वही ठहरेंगे। सतरह दिन की वृष्टि से सर्वार्थ निधान प्रगट होगे। गंगा मे सारा नगर डूब जायगा। राजा और सघ उत्तर दिशा मे रहे हुए विस्तृत स्थल पर चढकर वचेगे। राजा वहाँ पर नया नगर वसावेगा। सभी धर्म वाले उससे दण्ड पावेंगे। साधुओ के पास भिक्षा मे से षष्ठाश माँगने पर कायोत्सर्ग से आहूत शासनदेवी निवारण करेगी। पचासवे वर्ष मे सुभिक्ष होगा। एक द्रम्म मुद्रा मे धान्य की द्रोणी

मिलेगी। इस प्रकार निष्कण्टक राज्य का उपभोग कर छयासीवे वर्ष मे फिर सभी पाखडियो को दण्डित कर सव लोगो को निर्धन करके साधुओ से भी भिक्षा मे षष्ठाश माँगेगा। न देने पर उन्हे कारागार मे डाल देगा। तव प्रातिपदाचार्य प्रमुख सघ शासनदेवीका ध्यान कर कायोत्सर्ग मे रहेगे। उसके वोध देने पर भी जव वह पाप निवृत्त नही होगा तब आसन काँपने पर शक्रेन्द्र ब्राह्मण का रूप धारण कर आवेगा। जव उसका भी वचन न मानेगा तो शक्रेन्द्र के चपेट से आहत होकर मर के नरक जावेगा। तव उसका धर्मदत्त नामक पुत्र राज्यारूढ किया जायगा। सघ को स्वस्थ रखने का आदेश देकर शक्र स्वस्थान चला जायगा। दत्त राजा बहत्तर वर्षायु पर्य्यन्त प्रतिदिन पृथ्वी को जिन चैत्य मण्डित करेगा और लोगो को भी सुखी करेगा। दत्त का-पुत्र जितशत्रु और उसका पुत्र मेघघोष होगा। कल्कि के पश्चात् महानिशीथ सूत्र नही रहेगा। दो हजार वर्ष की स्थिति वाले भस्मराशि ग्रह की पीडा दूर होने पर देव भी दर्शन देंगे। विद्यामत्र भी अल्प जाप से प्रभाव दिखाएँगे। अवधिज्ञान और जातिस्मरण भाव भी कही प्रगट होगे। उसके पश्चात् उन्नीस हजार वर्ष पर्यन्त जैन धर्म वर्त्तेगा। दूषम काल के शेप मे वारह वर्षीय दो हाथ शरीर वाले प्रव्रजित, दशवैकालिक आगमधर, साढे तीन श्लोक प्रमाण सूरिमत्र जाप करने वाले और उत्कृष्ट छट्ठ (वेला = दो उपवास) तप करने वाले दुप्पसह नामक आचार्य अन्तिम युग प्रधान होगे। वे आठ वर्ष सयम पालन कर वीस वर्प की आयु मे अष्टम तप से अनशन करके सौधर्म देवलोक मे पल्योपम आयु वाले एकावतारी देव उत्पन्न होगे।

दुप्पसह आचार्य, फल्गुश्री आर्या, नागिल श्रावक और सत्यश्री श्रावका—ये अन्तिम सघ पूर्वाह्न मे भारतवर्ष मे अस्तगत होगे। मध्याह्न मे विमलवाहन राजा और सुमुख मत्री भी

(शेष होगे) अपराह्न मे अग्नि नष्ट होगी, इस प्रकार धर्म-राजनीति पाक आदिका विच्छेद होगा। इस प्रकार पाँचवाँ दूपम आरा सम्पूर्ण होगा।

तत्पश्चात् छट्ठे दुषम दुपम आरे के प्रवर्त्तन होने से प्रलय वायु चलेगी, विषाक्त जलधर वर्षेगे। सूर्य वारह गुणा तपेगा, चन्द्रमा अत्यन्त शीत छोडेगा। गगा-सिन्धु के दोनो किनारो मे वैताढ्य मूल में वहत्तर विलो मे छ खण्ड भरतवासी मनुष्य और तिर्यंच निवास करेगे। वैताढ्य के इधर के पूर्व पश्चिम गगा तटो पर नौ नौ विल इसी प्रकार वैताढ्य पर भी होगे इस प्रकार छत्तीस हुए। इसी प्रकार सिन्धु तट पर भी छत्तीस होने से कुल मिलाकर बहत्तर विल होगे। रथमार्ग जितने चौडे गगा-सिन्धु के प्रवाह-जल में उत्पन्न मच्छादि को वे विलवासी रात मे निकालेगे। दिन मे वे ताप के भय से निकालने में असमर्थ होगे। सूर्य-किरणो से पकने पर वे उन्हे रात्रि में खावेंगे। औषधि, वृक्ष, ग्राम, नगर, जलाशय, पर्वतादि वैताढ्य ऋषभकूट को छोडकर कही भी निवेश स्थान नही देखेंगे। सोलह वर्ष की स्त्री और बीस वर्ष के पुरुष पौत्र-अपौत्र देखेगे। एक हाथ प्रमाण काली कुरूप देह, उग्र-कपाय, नग्न प्राय नरकगामी बिलवासी इक्कीस, हजार वर्ष पर्यन्त होगे। इस प्रकार छट्ठे आरे-अवसर्पिणी के शेष होने पर उत्सर्पिणी का पहला आरा भी ऐसा ही होगा। उसके शेष होने पर दूसरे आरे के प्रारम्भ मे सात-सात दिन पाँच प्रकार के मेघ क्रमश भारतवर्ष मे वर्षेगे। जैसे कि पहला पुष्करावर्त्त ताप दूर करेगा, दूसरा क्षीरोद धान्योत्पत्ति करेगा, तीसरा घृतोदक स्निग्धकारी होगा, चौथा अमृतोदक औषधि उत्पन्न करेगा, पाँचवाँ रसोदक भूमि को सरस करेगा। वे विलवासी प्रतिसमय शरीर आयु बढाते हुए पृथ्वी का सुख देखकर विलो से बाहर निकलेगे, धान्य और फल का भोजन करते हुए मासाहार छोड़ देंगे।

फिर मध्य देश मे सात कुलकर होगे। उन मे पहला विमलवाहन, दूसरा सुदामा, तीसरा सगत, चौथा सुपार्श्व, पाँचवाँ दत्त, छट्ठा सुमुख, सातवाँ समुची होगा। जातिस्मरण ज्ञान के द्वारा विमलवाहन नगरादि वसावेगा। अग्नि के उत्पन्न होने पर अन्न पाक, शिल्प आदि कला से समस्त लोकव्यवहार प्रवर्त्तन करेगा। फिर नवासी पक्ष अधिक उत्सर्पिणी काल के दो आरे वीतने पर पुण्ड्रवर्द्धन देश के शतद्वार पुर मे समुइ नरपति की भद्रा देवी के चतुर्दश महास्वप्न सूचित श्रेणिक राजा का जीव रत्नप्रभा के लोलकवुद्ध पाथडे से चौरासी हजार वर्ष की आयु पूर्ण कर उद्वर्त्त करता हुआ कुक्षी मे पुत्र रूप से उत्पन्न होगा। वर्ण, प्रमाण, लाछन, आयु, गर्भापहार के अतिरिक्त पाचो कल्याणक मास, तिथि, नक्षत्रादि मेरे जैसे ही होगे। अन्तर यह है कि वे नाम से पद्मनाभ देवसेन और विमलवाहन होगे।

फिर दूसरे तीर्थङ्कर सुपार्श्व के जीव सुरदेव, तीसरे उदायी के जीव सुपार्श्व, चतुर्थ पोटिल का जीव स्वयप्रभ, पाँचवे दृढायु के जीव सर्वानुभूति, छट्ठे कार्तिक के जीव देवश्रुत, सातवे संख के जीव उदय, आठवे आनंद के जीव पेढाल, नवे सुनन्द के जीव पोटिल, दशवे शतक के जीव शतकीर्त्ति, ग्यारहवे देवकी के जीव मुनि सुव्रत, वारहवे कृष्ण के जीव अमम, तेरहवें सत्यकी के जीव निष्कष्याय, चौदहवे वलदेव के जीवनिष्पुलाक, पन्द्रहवें सुलसा के जीव निर्मम, सोलहवे रोहिणी के जीव चित्रगुप्त तीर्थङ्कर होगे। फिर कुछ लोग कहते हैं कल्कि का दत्त नामक पुत्र विक्रम सवत् १५७३ मे शत्रुञ्जय उद्धार कराके जिन भवन मण्डित वसुधा करके, तीर्थङ्कर नाम कर्म उपार्जन कर स्वर्ग जाकर चित्रगुप्त नामक जिनेश्वर होगे, यहाँ वहुश्रुतो की सम्मति प्रमाण है। सतरहवाँ रेवती का जीव समाधि, अठारहवाँ शतालि के जीव सवर, उन्नीसवे द्वीपायन के जीव यशोधर, वीसवे

कर्ण के जीव विजय, इक्कीसवे नारद के जीव मन्त्र, वाइसवे अवड के जीव देव, तेइसवे अमर के जीव अनतवीर्य, चौवीसवे शातवुद्ध के जीव भद्रकर तीर्थङ्कर होगे।

इन्ही के अन्तराल मे पश्चानुपूर्वी के जैसे वर्त्तमान जिन की भाँति तव भी वारह भावी चक्रवर्त्ती होगे। वे इस प्रकार—१ दीर्घदन्त, २ गूढदन्त, ३ शुद्धदन्त, ४ श्रीचन्द, ५ श्रीभूति, ६ श्रीसोम, ७ श्रीसोम, ७ पद्म, ८ नायक, ९ महापद्म, १० विमल, ११ अमलवाहन, १२ अरिष्ट।

नौ भावी वासुदेव इस प्रकार होगे—१ नन्दी, २ नन्दिमित्र, ३ सुन्दरबाहु, ४ महावाहु, ५ अतिवल, ६ महावल, ७ वल, ८ द्विपृष्ठ, ९ त्रिपृष्ठ।

नौ भावी प्रतिवासुदेव ये होगे—१ तिलक, २ लोहजघ, ३ वज्रजघ, ४ केशरी, ५ वली, ६ प्रभराज, ७ अपराजित, ८ भीम, ९ सुग्रीव।

नौ भावी वलदेव —१ जयन्तर, २ अजित, ३. धर्म, ४ सुप्रभ, ५ सुदर्शन, ६ आनंद, ७ नदन, ८ पद्म, ९ सकर्षण।

अवसर्पिणी के तीसरे आरे मे ६१ शलाका-पुरुष होगे, अतिम तीर्थङ्कर और चक्रवर्त्ती दोनो चौथे आरे मे होगे। तव फिर मत्तग आदि दश कल्पवृक्ष उपजेगे। अठारह कोटा-कोटि सागरोपम का निरन्तर युगलाधर्म होगा। उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल अनन्त हो गए और उससे अनन्त गुणे भारतवर्ष मे होगे।

इस प्रकार अन्य भी भविष्य काल का स्वरूप कह कर भगवान ने गौतम स्वामी को देवशर्म विप्र को प्रतिवोध देने के लिए किसी गाँव मे इसलिए भेजा कि जिससे इनका प्रेमवध नष्ट हो जाय।

भगवान तीस वर्ष गृहस्थावास मे रहे, पक्षाधिक साढे वारह वर्ष छद्मस्थ और तीस वर्ष तेरह पक्ष से कुछ न्यून केवलीपर्याय

में विचर कर बहत्तर वर्ष की सर्वायु पाल कर कार्त्तिकी अमावस्या की रात्रि के अन्तिम प्रहार मे दूसरे चन्द्र संवत्सर, प्रीतिवर्द्धन मास, नदिवर्द्धन पक्ष, देवानन्दा रात्रि, उपशम दिन, नागकरण, सर्वार्थसिद्ध मुहूर्त्त, स्वाति नक्षत्र मे पर्यङ्कासन कृत स्वामी को शक्र ने विनत्ति की—भगवन् ! दो हजार वर्ष स्थिति वाला भस्मराशि नामक तीसवाँ ग्रह अति नीचात्मा आपके जन्म नक्षत्र पर वर्त्तमान मे आ रहा है, अत मुहूर्त्त भर प्रतीक्षा करे जिससे उसकी दृष्टि टल जाय ! अन्यथा आपके तीर्थ मे चिरकाल पीडा होगी ! भगवान ने कहा—हे इन्द्र ! हम पृथ्वी का छत्र ओर मेरु का दण्ड करके क्षण-मात्र मे स्वयभूरमण समुद्र को पार कर लोक को अलोक मे फैंकने मे समर्थ हैं पर आयु कर्म को बढाने या घटाने मे समर्थ नही। जो अवश्यभावी भाव है, उनका व्यतिक्रम नही, तो फिर दो हजार वर्ष पर्यन्त अवश्यंभावी तीर्थ पीडा है। स्वामी ने पचपन अध्ययन कल्याणफल विपाक के और पचपन पापफल विपाक के कह कर छत्तीस अपृष्ट उत्तर कह कर प्रधान नामक अध्ययन कहते हुए शैलेसी करण द्वारा योग निरोध करके अनन्तपचक-युक्त अकेले सिद्धि प्राप्त हुए। अनतज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सम्यक्त्व, अनंत आनद, अनन्त वीर्य—ये अनन्तपचक हैं।

उस समय उद्धार न किये जा सके ऐसे कुन्थुओ—सूक्ष्म जीवो की उत्पत्ति देख कर आज से सयम दुराराध्य होगा, ज्ञात कर वहुत से श्रमण और श्रमणियो ने अनशन कर दिया। अन्य भी काशी कोशल देश के नौ मल्ल और नौ लिच्छवी—अठारह गण राजाओ ने अमावस्या के पौषधोपवास पाड कर भवोद्योत के जाने पर द्रव्योद्योत करेंगे ऐसा विचार कर रत्नमय दीपको से उद्योत किया। कालक्रम से अग्निदीपक होने लगे, इस प्रकार दीपावली पर्व हुआ। देवो और देवियो के आने जाने से वह रात्रि उद्योतमय कोलाहल पूर्ण हो गई। भगवान के शरीर का देवो ने सत्कार

किया। भस्मराशि की पीड़ा के प्रतिघात के लिए देव मनुष्य गौ आदि की निराजना—पूजा की, उससे वृषभादि की पूजा प्रचलित हुई।

फिर गौतम स्वामी उस द्विज को प्रतिबोध दे कर भगवान् को वन्दना करने के लिए लौटे तो देवो के सलाप में—भगवान को काल प्राप्त हुए सुना। उन्हे सुष्ठुतर अधृति हुई—अहो! मुझ भक्त पर भी स्वामी निस्नेही हो गए जो मुझे अन्त समय मे भी समीप नही रखा। वीतरागो का कहाँ स्नेह होता है? इस श्रुत को ज्ञात कर प्रेमबन्धन को तोड़ कर वे तत्क्षण केवली हो गए। शक्रेन्द्र ने कार्त्तिक शुक्ल प्रतिपदा के प्रात.काल केवलज्ञान की महिमा की। भगवान् गौतम स्वामी को सहस्रदल वाले कनक कमल पर विराजमान कर पुष्प पगर करके सामने अष्ट मङ्गल आलेखित किए और देशना सुनी। तब से आज भी प्रतिपदा का महोत्सव जनता मे प्रवृत्त है। सूरिमन्त्र गौतम स्वामी प्रणीत है, अत उसके आराधक आचार्यगण गौतम केवलोत्पत्ति होने से उसी दिन समवशरण मे अक्षन्हवण-पूजन करते हैं। श्रावक लोग भी भगवत के अस्तगत होने पर श्रुतज्ञान ही सर्व विधि मे प्रधान ज्ञात कर श्रुत ज्ञान की पूजा करते हैं। भगवान के ज्येष्ठ भ्राता नन्दिवर्द्धन राजा ने भगवान को मोक्ष प्राप्त हुए सुन कर अत्यन्त शोक करते हुए प्रतिपदा के दिन उपवास किया। कार्त्तिक शुक्ल २ के दिन बहिन सुदर्शना ने समझा-बुझा कर अपने घर बुलाकर उन्हे भोजन कराया, ताम्बूल वस्त्रादि दिए। तब से भाई बीज या "भैया दूज" का पर्व रूढ-प्रचलित हुआ। इस प्रकार दीपोत्सव की स्थिति हुई।

जो दीपोत्सव मे चतुर्दशी-अमावस्या को कोडी सहित उपवास कर अष्टप्रकारी पूजा से श्रुतज्ञान की पूजा कर पचास हजार के परिवार युक्त गौतम स्वामी को स्वर्णकमल मे स्थापित कर प्रति-

दिन पचास हजार चावल सब मिला कर बारह लाख चावल चौबीस पाटो पर चढा कर उस पर अखण्ड दीपक जला कर गौतम स्वामी की आराधना करते हैं वे परमपद-सुख-लक्ष्मी प्राप्त करते है। दीवाली की अमावस्या को नन्दीश्वर तप प्रारम्भ करना चाहिए। उसदिन नन्दीश्वर पट पूजा पूर्वक उपवास करके वार्षिक सात वर्ष या यावत् अमावस्या को उपवास करके वीरकल्याणक अमावस्या का उद्यापन करना चाहिए। वहाँ नन्दीश्वर द्वीप के बावन जिनालय मे शक्रेन्द्र-न्हवणादि पूजा करके नन्दीश्वर पट के आगे दर्पण सक्रान्त जिन-बिम्बो मे न्हवणादि कर बावन प्रकार के पक्वान्न नारग, जवीर, कदली फलादि, नारियल, सुपारियाँ, पत्ते, इक्षुयष्टि (गन्ने), खर्जूर, द्राक्षा, वरसोलक, उतृप्ति, आकय, खुरमा आदि के थाल और दीपक आदि (चढाकर) बावन कचुली तम्बोलादि दान पूर्वक श्राविकाओ को देनी चाहिए। दीपोत्सव के बिना अन्य अमावस्या को भी नन्दीश्वर तप प्रारभ किया जाता है।

पुनरपि सम्प्रति महाराजा ने आर्य सुहस्तिसूरि से पूछा—भगवन्! इस दिवाली पर्व पर विशेप प्रकार से घरो की सजावट-शृगार, विशिष्ट अन्न वस्त्रादि का परिभोग, परस्पर जुहार करना—यह जनता मे किस कारण से दिखाई पड रहा है? तब आर्य सुहस्तिसूरि ने इस प्रकार प्रत्युत्तर दिया:—

पूर्वकाल मे एक बार उज्जयिनी पुरी के उद्यान मे श्रीमुनिसुव्रत स्वामी के शिष्य श्री सुव्रताचार्य समोसरे। उन्हे वन्दना करने के लिए श्री धर्मराजा गया। नमुचि मंत्री भी वहाँ गया उसे आचार्य महाराज के साथ विवाद करते हुए एक क्षुल्लक मुनि ने पराजित कर दिया।

राजा के साथ वह घर चला गया और रात्रि में मुनि को मारने के लिए नंगी तलवार लेकर उद्यान में गया। देवता ने उसे

स्तम्भित कर दिया। प्रात काल विस्मित राजा ने क्षमा-याचना करवा के उसे छुडा दिया। वह लज्जित हो कर हस्तिनापुर चला गया। वहाँ पद्मोत्तर राजा राज्य करते थे, ज्वाला देवी उनकी पटरानी थी। उनके दो पुत्र विष्णुकुमार और महापद्म थे। ज्येष्ठ पुत्र की अनिच्छा होने से पिता ने महापद्म को युवराज पद दिया। नमुचि उसका मत्री वना। मन्त्री ने युद्ध मे सिहरथ राजा को जीत लिया। महापद्म सन्तुष्ट हुए, वर देने लगे तो उसे अस्वीकृत कर दिया। एक बार ज्वालादेवी ने अर्हन्त भगवान की रथयात्रा करवायी। उसकी सपत्नी लक्ष्मीदेवी ने जो मिथ्यादृष्टि थी, ब्रह्मरथ यात्रा करवायी। प्रथम रथ निकालने के विषय मे दोनो हो राणियो के विवाद हो गया। राजा ने दोनो ही रथो को वापस लौटा दिया। माता का अपमान देख कर महापद्म देशान्तर चला गया। क्रमश मदनावली के साथ विवाह कर भारत के छ खण्ड साधकर गजपुर आया। पिता ने राज्य दे दिया और पद्मोत्तर राजा ने विष्णुकुमार के साथ सुव्रताचार्य के पास दीक्षा ले ली। पद्मोत्तर मुक्त हो गए, विष्णुकुमार को छ हजार वर्ष तप करते हुए अनेक लब्धियाँ उत्पन्न हुई। महापद्म चक्रवर्त्ती ने पृथ्वी को जिन-भवनो से मण्डित कर रथयात्राएँ कराके माता का मनोरथ पूर्ण किया।

चक्री प्रदत्त वर को अस्वीकृत करने वाले नमुचि ने यज्ञ करने के लिए राज्य मागा। उस सत्यप्रदत्त राजा ने उसे राज्य दे दिया और स्वय अन्त पुर मे रहने लगे। उस समय विचरण करते हुए सुव्रताचार्य हस्तिनापुर मे वर्षावास स्थित थे। सभी पाखण्डी लोग अभिनव राजा को देखने आये किन्तु सुव्रताचार्य नही पधारे। तब क्रुद्ध हो नमुचि ने कहा—"मेरी भूमि पर तुम्हे सात दिन से अधिक नही रहना चाहिये, अन्यथा मैं मार दूगा, क्योकि तुम मुझे देखने नही आये।"

आचार्य महाराज ने संघ की सम्मति लेकर एक आकाश-गामी विद्यासंपन्न मुनि को आदेश दिया कि—मेरु चूला पर रहे हुए विष्णुकुमार मुनि को वुला लाओ। उसने विज्ञप्ति की—भगवन्! मेरी जाने की शक्ति है किन्तु वापस लौटने की नही। गुरु महाराज ने कहा—"वेही तुम्हे ले आवेगे! तव वह मुनि मेरु चूला पर गए। महर्षि को वन्दन कर सारा स्वरूप निवेदन किया। वे तत्क्षण उस साधु को लेकर आकाश मे उडे। गजपुर आकर राजकुल मे पहुँचे। नमुचि को छोड़ कर सभी ने उन्हे वन्दना की। नमुचि ने पहचान लिया और वोला—"साधुओ को ठहरने नही दूंगा!"

विष्णुकुमार ने तीन पग प्रमाण भूमि माँगी, उसने दे दी और वोला—तीन पग से वाहर देखूगा तो मार दूगा! तव विष्णु ऋषि एक लाख योजन शरीर वाले वन गए। वे किरीट-कुण्डल-गदा-चक्र और धनुष धारी थे, उनके पाँव-प्रहार से पृथ्वी काँपने लगी। समुद्र क्षुव्ध हो गए। फुंकार से विद्याधर भग गए। नदियाँ उत्पथ प्रवृत्त हो गई। तारे घूमने लगे, कुलगिरि डोलने लगे। मुनि पूर्वापर समुद्र पर दोनो पाँव रख कर तीसरा पाँव नमुचि के शिर पर देने को खड़े थे, तब इन्द्र ने अवधिज्ञान से जान कर सुराङ्गनाओ को भेजा। वे कानो के पास रही हुई मधुर स्वर से शान्ति-गर्भित उपदेश-गीत गाने लगी। और चक्रवर्त्ती आदि भी यह व्यतिकर ज्ञात कर उन्हे प्रसन्न करने के लिए पाँवो मे गिर पडे। तव महर्षि प्रकृतिस्थ हो शान्त हो गए। चक्रवर्त्ती और सघ ने क्षमा मागी। चक्रवर्त्ती ने दयापूर्वक नमुचि को विष्णुकुमार से छुडवाया।

उस समय वर्षाकाल के चौथे मास का पक्ष-सन्धि दिन था, उस उत्पात के शान्त होने पर लोक अपना पुनर्जन्म मानते हुए परस्पर 'जुहार' करने लगे। विशिष्टतर मण्डन, भोजन-छादन-ताम्बूल-

दि परिभोग मे प्रवृत्त हुए तब से इस दिन प्रति वर्ष वे ही व्यवहार प्रवर्त्तते हैं। विष्णुकुमार तथा महापद्म चक्रवर्त्ती समय पर केवली होकर सिद्ध हुए।

इस प्रकार दश पूर्वधर आर्य सुहस्तिसूरि के मुख से सुन कर महाराजा सम्प्रति पर्व-दिवसो मे विशेष प्रकार से जिन-पूजारत रहता था।

पूर्व काल मे मध्यमा पापा का नाम अपापापुरी था। शक्रेन्द्र ने 'पावापुरी' यह नाम किया, क्योकि यहाँ महावीर स्वामी का निर्वाण हुआ।

इसी पावापुरी मे वैशाख सुदि ११ के दिन जृंभिक गाँव से बारह योजन आकर पूर्वाह्न समय महासेन वन मे भगवान ने ने पण्डितगणो से परिवृत और प्रमुदित गौतमादि गणधरो को दीक्षा दी। उन्हे गणानुज्ञा दी। उन्होने तीन निषद्या मे उत्पाद, विगम, ध्रौव्य लक्षण त्रिपदी स्वामी मे पाकर तत्क्षण द्वादशाङ्गी रचना की। इसी नगरी मे भगवान के कानो से सिद्धार्थ वणिक के उपक्रम से खरक वैद्य ने काष्ठ-शलाका निकाली। उसके निकालने पर अत्यन्त वेदनावश भगवान ने चीत्कार किया, उससे प्रत्यासन्न पर्वत मे दरार पड गई। आज भी वहाँ बीच मे सन्धि-मार्ग दिखायी पडता है। तथा इसी पुरी मे कार्त्तिक अमावस्या की रात्रि मे भगवान के निर्वाण के स्थान पर मिथ्यादृष्टि लोग श्री वीर-स्तूप स्थान पर स्थापित नागमण्डप मे आज भी चातुर्वर्णिक लोग यात्रा महोत्सव करते हैं। उसी एक रात्रि मे देवानुभाव से कुएँ से लाये हुए जल से पूर्ण सराब मे तेल बिना दीपक प्रज्वलित होता है।

इन पूर्वोक्त अर्थो की भगवान ने इसी नगर मे व्याख्या की थी। यही भगवान सिद्धि सम्प्राप्त हुए थे, इत्यादि अत्यद्भुत भूत सविधान स्थान पावापुरी महातीर्थ है।

दीपोत्सव की उत्पत्ति कथन से रमणीय यह पावापुरीकल्प श्री देवगिरि नगर मे स्थित श्रीजिनप्रभसूरि ने बनाया। विक्रम सवत् १३८७ के भाद्रपद कृष्ण पुष्यार्क युक्त द्वादशी को यह स्वस्तिकर कल्याणकारी कल्प समर्थित हुआ।

यह अपापा या दीपोत्सव कल्प समाप्त हुआ।

इसकी ग्रथ-श्लोकसख्या ४१६ और अक्षर ७ ऊपर है।

•

२२. कन्यानयनीय महावीर प्रतिमा-कल्प

मेरु पर्वत के सदृश धीर, अमित गुण समूह वाले श्री महावीर जिनेश्वर को नमस्कार करके कण्णाणय नगर स्थित उनकी प्रतिमा का कल्प कुछ कहूँगा।

चोल देशावतश कन्नाणय नगर मे विक्रमपुर वास्तव्य, प्रभु श्री जिनपति सूरिजी के चाचा साहु माणदेव द्वारा कारापित और स० १२३३ आषाढ शुक्ल १० गुरुवार के दिन हमारे पूर्वाचार्य श्री जिनपति सूरिजी द्वारा प्रतिष्ठित, मम्माण शैल समुद्गत, ज्योतिर्मय, सुघटित, तेईस पर्वाङ्गुल प्रमाण श्री महावीर-प्रतिमा थी जो नख सूक्ति लगने पर भी घण्ट की भाँति टकार-शब्द करती थी। वह स्वप्नादेश से अनकवाला नामक पृथ्वी धातु विशेष सस्पर्श सन्निहित प्रातिहार्ययुक्त श्रावकसघ से चिर पूजित थी। यावत् विक्रमादित्य स० १२४८ मे चौहान-कुलप्रदीप श्री पृथ्वीराज

नरेन्द्र का सुलतान सहावुद्दीन द्वारा निधन होने पर राज्यप्रधान परमश्रावक सेठ रामदेव ने श्रावकसघ को लेख भेजा कि—तुर्को का राज्य हो गया, अत श्री महावीर स्वामी की प्रतिमा को प्रच्छन्न रखा देना। तव श्रावको ने दाहिन कुल मडन मण्डलीक कयवास (कैमास) नामाङ्कित "कय्वास स्थल" मे विपुल वालु के टीवो मे रख दी, जो वहाँ रही।

विक्रम स० १३११ मे अत्यन्त दारुण दुर्भिक्ष मे निर्वाह न होने होने से आजीविका के लिए 'जोजओ' नामक सुथार कन्नाणय से सुभिक्ष देश के प्रति सपरिवार चला। प्रथम प्रयाण थोडा करना, ऐसा सोचकर उसने कयंवास स्थल मे रात्रिवास किया। आधीरात के समय देवता ने उसे स्वप्न दिया कि—तुरु जहाँ सोये हुए हो उसके इतने हाथ नीचे भगवान महावीर की प्रतिमा है, तुम देशातर मत जाओ, तुम्हारा यही निर्वाह हो जायगा। उसने सभ्रम पूर्वक जग कर अपने पुत्रादि से उस स्थान को खुदवाया और महावीर स्वामी की प्रतिमा देखी तो प्रसन्नतापूर्वक नगर मे जाकर श्रावकसघ को निवेदन किया। श्रावको ने महोत्सवपूर्वक परमात्मा महावीर को चैत्यगृह मे प्रवेश कराके स्थापित किया। त्रिकाल पूजा होने लगी। अनेक वार तुर्को के उपद्रव से मुक्त रहे। उस सुथार के लिए श्रावको ने वृत्ति-निर्वाह कर दिया। प्रतिमा का परिकर खोजने पर भी प्राप्त नही हुआ, वह कही स्थलधोरो के वीच रहा हुआ है। उस पर प्रशस्ति-सवत्सरादि भी लिखे हुए होने की सभावना है।

एक दिन न्हवण कराने के पश्चात् भगवान के शरीर पर पसीना छूटते देखा। वार-वार पोछने पर भी जव न रुका तो विदग्ध श्रावको ने जाना कि—यहाँ कोई अवश्य उपद्रव होगा। दूसरे दिन प्रभात मे जट्ठुअ राजपूतो की धाड आई, सारा नगर विध्वस्त हुआ। इस प्रकार प्रकट-प्रभावी स्वामी यावत् सवत्

१३८५ पर्यन्त वहाँ पूजे गए। उस वर्ष (स० १३८५ मे) अल्लविय वशोत्पन्न आसी नगर (हासी) के सिकन्दर ने घोर परिणाम पूर्वक श्रावक और साधुओ को वदी वनाकर विडवित किया। भगवान पार्श्वनाथ की प्रापाण-प्रतिमा का भग हुआ। भगवान महावीर स्वामी की प्रतिमा को वह अखण्ड रूप से गाड़ी पर चढ़ा कर दिल्ली लाया और तुगलकावाद स्थित सुलतान के भण्डार मे यह सोच कर रखा कि सुलतान के आने पर जैसी आज्ञा देगे, वैसा किया जायगा। कालक्रम से जव सुलतान मुहम्मद देवगिरिनगर (दौलतावाद) से दिल्ली-योगिनीपुर आया तव पन्द्रह मास पर्यन्त भगवान तुर्को के यहाँ वदी रहे।

अन्यदा वाह्य जनपद विहार मे विचरते हुए खरतर गच्छालङ्कार श्रीजिनसिंहसूरिजी के पट्ट प्रतिष्ठित श्री जिनप्रभसूरिजी दिल्ली के शाखानगर मे पधारे। क्रमश शाही राजसभा मे पडित-गोष्ठी प्रस्तुत होने पर राजाधिराज के द्वारा—कौन विशिष्ट पण्डित है? ऐसा पूछने पर ज्योतिषी धाराधर ने उन (श्रीजिनप्रभसूरि) की गुण-स्तुति आरम्भ की। महाराजा (सुलतान) ने उसे ही भेज कर वहुमानपूर्वक मिति पोष शुक्ल २ के सन्ध्या समय सूरि-महाराज को वुलाया। महाराजाधिराज से भेट हुई। अत्यन्त निकट वैठाकर कुशल वार्त्तादि पृच्छा की और अभिनव काव्य द्वारा सुलतान ने सूरिजी से आशीर्वाद प्राप्त किया। आधी रात पर्यन्त एकान्त गोष्ठी कर रात्रि मे वही पर सुलाये। प्रात काल फिर सूरि महाराज को वुलाया। महानरेन्द्र सुलतान ने सन्तुष्ट होकर एक हजार गायो का मूल्य, प्रधान उद्यान, सौ वस्त्र, सौ कम्वल और अगुरु चन्दन, कर्पूरादिगन्ध द्रव्य देने लगा। गुरु महाराज ने—साधुओ को ये नही कल्पता—ऐसा समझाकर महाराजा को सर्व वस्तु का प्रतिषेध किया। फिर महाराजाधिराज के अप्र-

तीति न हो, इसलिए कुछ कम्बल-वस्त्र-अगुरु आदि राजाभियोग से स्वीकार किये। वहाँ नाना देशो से आये हुए पण्डितो के साथ वाद-गोष्ठी करा के दो हाथी मँगवाये। एक पर गुरु महाराज को और दूसरे पर श्रीजिनदेवसूरि को बैठाकर आठ शाही मदनभेरी बजाते, शखध्वनि, मद्दल, कमाल, ढोल आदि वादित्र-शब्दो के साथ भट्टविरुदावली पढते हुए, चारो वर्ण एव चतुर्विध सघ सहित सूरि-महाराज को पौषधशाला भेजा। श्रावको ने प्रवेशमहोत्सव किया, महादान दिया।

बादशाह ने समस्त श्वेताम्बर सघ को उपद्रव से रक्षण करने की क्षमता वाला फरमान पत्र समर्पित किया और गुरु महाराज के प्रतिच्छद मे उसे चारो दिशाओ मे प्रेषित किया। शासनोन्नति हुई। अन्यदा सूरिमहाराज ने श्री शत्रुञ्जय-गिरनार-फलवर्द्धि आदि तीर्थो की रक्षा के हेतु फरमाना मागा। बादशाह ने तत्काल सार्व-भौम फरमान दिया और उन्हे सर्व तीर्थो मे भेजा गया। राजा-धिराज ने प्रसन्नतापूर्वक गुरु महाराज के वचनो से अनेक बन्दियो को मुक्त किया। फिर सोमवार के दिन वर्षान्त के समय जाकर सुलतान से भेंट की। कीचड से भरे हुए गुरु-महाराज के पाँवो को महाराजाधिराज ने मल्लिक काफूर के पास उत्तम वस्त्र खण्ड से पोंछाये। गुरु महाराज के आशीर्वाद देने और वर्णन काव्य की व्याख्या करने पर महानरेन्द्र सुलतान के चित्त में अत्यन्त चमत्कार उत्पन्न हुआ। अवसर ज्ञात कर समस्त स्वरूप कथन पूर्वक भग-वान महावीर स्वामी की प्रतिमा माँगी। एक छत्र पृथ्वीपति ने सुकुमार गोष्ठी करके वह प्रतिमा उन्हे प्रदान की। तुगलकाबाद शाही कोष से मँगाकर असूअग मल्लिको के कन्धे दिलाकर सकल सभा के समक्ष अपने सामने मँगाकर दर्शन करके गुरु महाराज को समर्पित्त की। फिर महोत्सव-प्रभावना पूर्वक सुखासन मे विराज-मान कर समस्त सघ ने मलिक ताजदीन सराय के चैत्य मे प्रवेश

कराके स्थापित किया। गुरु महाराज ने वासक्षेप किया, प्रभु महापूजाओ से पूजे जाते है।

फिर सुलतान-महाराजाधिराज के आदेश से श्रीजिनदेवसूरि को अपने स्थान पर दिल्ली-मण्डल मे स्थापित कर गुरु महाराज क्रमश महाराष्ट्र मण्डल पधारे। राजाधिराज ने श्रावकसघ सहित उन्हे वृषभ, ऊँट, घोडे, हथिनी, मुखासनादि सामग्री दी। मार्ग के नगरो में प्रभावना करते हुए पद पद पर सघ के द्वारा सम्मान पाते हुए, अपूर्व तीर्थादि की वन्दना करते हुए, क्रमश सूरिजी देवगिरि नगर पहुँचे। सघ ने प्रवेशमहोत्सव किया, सघपूजा हुई।

सघपति जगसीह, साहृण, मल्लदेव प्रमुख सघ के साथ प्रतिष्ठान-पुर मे जीवत स्वामी श्री मुनिसुव्रत-प्रतिमा की यात्रा की।

पीछे विजय करके दिल्ली जाने पर महाराजा से श्री जिनदेव-सूरि मिले. वहुमान दिया और एक सराय दी जिसका नाम सुलतान सराय स्थापित किया। वहाँ चार सौ श्रावको के कुल को निवास करने के लिए आदेश दिया। कलिकाल चक्रवर्त्ती-सुलतान ने वहाँ पौपधशाला व चैत्य वनवाया। उन्ही भगवान महावीर स्वामी (प्रतिमा) को वहाँ स्थापित किया। वहाँ श्वेताम्बर भक्त, दिगम्बर भक्त श्रावक और परतीर्थिक लोग भी त्रिकाल पूजा करते हैं।

श्री महम्मदशाह द्वारा की हुई शासनोन्नति देखकर इस पचम-काल को भी लोग चतुर्थ काल की कल्पना करते हैं। क्लेश नष्ट करने वाले श्री वीर जिनेश्वर की उपद्रव नाशक जनमननयना-नन्दन प्रतिमा जहाँ तक चन्द्र-सूर्य हैं, जयवन्त हो।

कन्नाणयपुर के श्री महावीरप्रतिमा का यह कल्प आचार्य श्री जिनसिहसूरि के शिष्य मुनीश्वर ने लिखा है।

श्री कन्यानयनीय महावीर प्रतिमा का यह कल्प सपूर्ण हुआ। इस की ग्रन्थ सख्या ७७ और १५ अक्षर हैं।

■

२३. प्रतिष्ठान पत्तन-कल्प

महाराष्ट्र रूपी लक्ष्मी के रत्नापीड, रम्य हवेलियो और नेत्रो को शीतल करने वाले चैत्यो से युक्त गोदावरी से पवित्रित श्री-प्रतिष्ठान नामक पत्तन जयवत रहे।

यहाँ अड़सठ लौकिक तीर्थ और बावन वीर हैं। वीर क्षेत्र होने के कारण यहाँ सूर्य के समान प्रौढप्रणाली राजाओ का भी प्रवेश नही होता।

रात्रि बीतने पर उषाकाल मे यहाँ से साठ योजन चल कर अश्व को प्रतिबोध करने के लिए श्री मुनिसुव्रत जिनेश्वर भरोच पधारे थे।

भगवान महावीर के निर्वाण से ९९३ वर्ष बीतने पर यहाँ श्री कालिकाचार्य ने सावत्सरिक पर्व भाद्रपद शुक्ल ४ को किया।

यहाँ के आयतनो की पक्ति को देखकर विचक्षण पुरुष देव-विमान मे अग्रणी श्री त्रिलोकविमान को देखने का कौतुहल त्याग देते हैं।

यहाँ शातवाहन आदि विचित्र चरित्र वाले नरेश्वर हुए हैं एवं यहाँ के अनेको सदन बहुत प्रकार के देवताओ से अधिष्ठित हैं।

यहाँ राजा के अनुरोध से कपिल, आत्रेय, बृहस्पति और पाचाल ने अपने बनाये हुए चार लाख श्लोक परिमित ग्रन्थो को एक श्लोक मे प्रस्तुत किया था। वह श्लोक यह है—

"जीर्णे भोजनमात्रेय कपिल प्राणिना दया।
बृहस्पतिरविश्वास पञ्चाल स्त्रीषु मार्दवम्॥"

जीर्ण होने पर भोजन करना आत्रेय का, कपिल का प्राणियो पर दया करना, विश्वास न करना बृहस्पति का एवं स्त्रियो से कोमल व्यवहार करना पाचाल का सिद्धान्त है।

यहाँ दृष्टि से अमृत वर्षाने वाली सम्यग्दृष्टि मयूरो के लिए पयोद घटा के सदृश श्री मुनिसुव्रत स्वामी की लेप्यमयी जीवित स्वामी प्रतिमा जयवत है। उसको उस समय ग्यारह लाख अठावन हजार आठ सौ छप्पन वर्ष हो गये।

यहाँ मुनिसुव्रत-जिनालय की यात्रार्थ आकर विविध पूजा करते भव्य जन ऐहिक और पारलौकिक सुख सपत्ति प्राप्त करते हैं।

इस प्रासाद मे अन्य जिनेश्वरो के साक्षात् कान्ति वाले लेप्यमय बिम्ब सुशोभित हैं जो मनुष्यो की प्रीति मे वृद्धि करते हैं।

अम्बादेवी, क्षेत्रपाल, यक्षाधिपति कपर्दि इस चैत्य मे वसते हुए श्रीसघ के उपसर्गों को नष्ट करते है।

यहाँ देवताओ के समूह से हर्षपूर्वक वद्यमान प्राणि-समूह का उपकार करने के व्रतवाले चैत्य लक्ष्मी के भूषण श्री मुनिसुव्रत भगवान आपका सदा कल्याण करने वाले हो।

सत्पुरुषो की सम्पत्ति के लिए श्री जिनप्रभसूरि ने श्री प्रतिष्ठान तीर्थ का यह कल्प बनाया।

श्री प्रतिष्ठान पत्तन कल्प के ग्रथाग्र १९ और अक्षर १५ परिमित है।

■

२४. नन्दीश्वरद्वीप-कल्प

इन्द्रादि द्वारा पूजित चरणो वाले श्री जिनेश्वरों की आराधना करके विश्वपावन श्री नन्दीश्वर द्वीप का कल्प कहता हूँ (१)। नन्दीश्वर स्वर्ग के समान आठवाँ द्वीप है जो नन्दीश्वर नामक समुद्र से घिरा हुआ है (२)। यह गोलाई विष्कंभ से तेसठ कोटा-कोटि और चौरासी लाख योजन है (३)। ये विविध विन्यास युक्त उद्यानो वाली देव-भोगभूमि है और जिनेश्वर भगवान की पूजा के हेतु देवो के आवागमन से सुन्दर है (४)। इसके मध्यप्रदेश मे क्रमश पूर्वादि दिशाओ मे अजन वर्ण वाले चार अजन गिरि हैं (५)। वे दश हजार योजन विस्तार भूमि और हजार योजन ऊँचे छोटे मेरुओ सहित है (६)। वहाँ पूर्व मे देवरमण, दक्षिण में नित्योद्योत, पश्चिम मे स्वयंप्रभ और उत्तर मे रमणीय (नामक) हैं (७)। उन पर सौ योजन लम्बे और उससे आधे चौडे व बहत्तर योजन ऊँचे अर्हत् चैत्य हैं (८)। चारो के पृथक् पृथक् द्वार सोलह योजन ऊँचे हैं उनका प्रवेश आठ योजन है (९)। वे देव, असुर, नाग आदि देवताओ के आश्रय से उन्ही के नामो से प्रसिद्ध हैं (१०)। उनमे सोलह योजन लंबी उतनी ही चौडी और आठ योजन ऊँची मणिपीठिकाएँ हैं (११)। पीठिकाओं पर सर्वरत्नमय देवछदक हैं जो पीठिकाओ अधिक लंबे और ऊँचे हैं (१२)। उनमे ऋषभ, वर्द्धमान, चन्द्रानन और वारिषेण नामक पद्मासन सन्स्थित स्व स्वपरिवार युक्त प्रत्येक की १०८ रत्नमय शाश्वत अर्हन्त प्रतिमाएँ हैं (१३-१४)। दो-दो नागयक्ष भूतो की कुण्डलधारिणी प्रतिमाएँ पृथक् पृथक् हैं, प्रतिमाओं के पीछे एक एक छत्रधारिणी प्रतिमाएँ हैं (१५)। उनमे धूप घटी पुष्पमाला, घण्टा, अष्टमङ्गल, ध्वजा, छत्र, तोरण, चगेरी, पटल आसन है (१६)। पूर्ण कलशादि सोलह अलङ्करण हैं, वहाँ की भूमियाँ सोने चाँदी की वालुकामय

है (१७)। आयतन के प्रमाण से रुचिर मुख्य मण्डप, प्रक्षामण्डप, अक्षवाटक और मणि पीठिकाएँ हैं (१८)। रम्य स्तूप प्रतिमाएँ और सुन्दर चैत्य वृक्ष हैं, इन्द्रध्वज और दिव्य पुष्करिणियाँ यथा क्रम है (१९)। चतुर्द्वार स्तूपो मे सव मे सोलह सोलह प्रतिमाएँ है, इस प्रकार वे एक सौ आठ युक्त चौबीस सौ हो जाती हैं (२०)। प्रत्येक अञ्जनगिरि के चारो दिशाओ मे लक्ष योजन जाने पर बिना मत्स्य वाले स्वच्छ जल युक्त हजार योजन ऊँची, लाख योजन विस्तीर्ण सोलह पुष्करिणी है जिनके नाम क्रमश इस प्रकार है (२१-२२)। १ नन्दिषेणा, २ अमोघा, ३ गोस्तूपा, ४ सुदर्शना, ५ नन्दोत्तरा, ६ नन्दा, ७ सुनन्दा, ८ नन्दिवर्द्धना, ९ भद्रा, १० विशाला, ११ कुमुदा, १२ पुण्डरीकिणी, १३ विजया, १४ वैजयन्ती, १५ जयन्ती, १६ अपराजिता। (२३-२४)

इनकी प्रत्येक की लम्वाई और चौडाई पाँच सौ-पाँच योजन है (२५)। लाख-लाख योजन लम्बे महा उद्यान हैं जिनके अशोक, सप्तपर्ण, चम्पक, आम्र आदि नाम हैं। (२६)

पुष्करिणीयो के मध्य मे स्फटिक के पल्यमूर्त्ति वाले ललाम वेदी उद्यानादि चिह्न युक्त दधिमुख पर्वत है (२७)। वे चौसठ हजार योजन ऊँचे और एक हजार योजन ऊपर की अवगाहना वाले और नीचे से दश हजार योजन विस्तृत हैं (२८)। पुष्करिणियो मे दो-दो रतिकर पर्वत है, वे सव मिलाकर सोलह पुष्करिणियो के बत्तीस रतिकर पर्वत हो जाते हैं (२९)। उन दधिमुख और रतिकर पर्वतो पर अञ्जनगिरि के समान ही शाश्वत अर्हत् चैत्य हैं (३०)।

द्वीप की चारो विदिशाओ मे तथा रतिकर पर्वत जो दश हजार योजन विस्तारवाले और एक हजार योजन ऊँचे है। वे सब रत्नमय, दिव्य और झल्लरी के आकार वाले हैं (३१-३२)। दक्षिण के दो रतिकर पर्वतो पर शक्र और ईशानेन्द्र के एवं उत्तर दिशाओ मे पृथक्-पृथक् भुवन आठ दिशाओ मे आठ महादेवियों की राज-

धानियाँ है। वे लाख योजन लम्बी-चौडी और जिनायतनोसे भूषित हैं। (३३-३४)

उनके नाम क्रमश १ सुजाता, २ सौमनसा, ३ अर्चिमाली, ४ प्रभाकरा, ५ पद्मा, ६ शिवा, ७ शुचि, ८ अजना, ९ चूता, १० चूतावतंशिका, ११ गोस्तूपा, १२ सुदर्शना, १३ अमला, १४ अप्सरा, १५ रोहिणी, १६ रत्ना, १७ रत्नोच्चया, १८ सर्व-रत्नसचया, १९ वसु, २० वसुमित्रिका, २१ वसुभागा, २२ वसु-न्धरा, २३ नन्दोत्तरा, २४ नन्दोतर कुरु, २५ देवकुरु, २६ कृष्णा, २७ कृष्णरात्रि, २८ रामा रामरक्षिता (३५-३६-३७-३८) हैं।

सर्व ऋद्धिवाले सपरिच्छद देवगण श्री तीर्थंकर-अर्हन्तो की पुण्यतिथियो मे उन चैत्यो मे अष्टाह्निका महोत्सव करते हैं (३९)।

पूर्व के अञ्जनगिरि पर चार द्वार वाले जिनालय मे शास्वती प्रतिमाओ का शक्र अष्टाह्निकोत्सव करते हैं (४०)। उस पर्वत की चार दिशाओ मे रहे हुए स्फटिक के चार दधिमुख पर्वतो पर महा-वापियो मे स्थित चैत्यो मे शक्र के चार दिग्पाल शास्वती अर्हत् प्रतिमाओ का यथाविधि अष्टाह्निकोत्सव करते हैं (४१-४२)। ईशानेन्द्र तो उत्तरदिशा के अञ्जनाद्रि पर महोत्सव करते हैं। और उनके लोकपाल उसी दिशा की वापियो मे रहे हुए दधिमुख पर्वत पर अष्टाह्निकोत्सव करते है (४३)। दक्षिण दिशा के अञ्जन-पर्वत पर चमरेन्द्र और उसके चारो ओर दधिमुख पर्वत पर उनके चार दिग्पाल अष्टाह्निकोत्सव करते हैं (४४)।

पश्चिम दिशाके अञ्जन पर्वत पर वलीन्द्र और चारो ओर की वापी के दधिमुख पर्वतो पर उनके दिग्पाल महोत्सव करते हैं। (४५)

दीपावली के दिन से प्रारभ करके वर्षपर्यन्त कुहू तिथि में नन्दीश्वर द्वीप की उपासना करते हुए भव्यजन दान योग्य-श्रेयस्कर

लक्ष्मी प्राप्त करते हैं (४६)। भक्ति से चैत्यो की वंदना करने वाले, उसका स्तुति-स्तोत्र पाठ करने वाले, नन्दीश्वर सम्बन्धी अनुपर्व का जो आराधन करते हैं वे शीघ्र संसार से तर जाते हैं (४७)।

प्राय. पूर्वाचार्यो के वनाये हुए इस नन्दीश्वर द्वीप कल्प को श्री जिनप्रभाचार्य ने श्लोकवद्ध किया है (४८)।

श्री नन्दीश्वर द्वीप का कल्प समाप्त हुआ। इसके ग्रन्था ग्र० श्लो० ४९ अक्षर १० परिमित है।

■

२५. काम्पिल्यपुर तीर्थ-कल्प

गगामूल स्थित श्री विमलनाथ भगवान के जिनालय की मनोहर श्री वाले, काम्पिल्यपुर का कल्प मै सक्षेप से कहता हूँ।

इसी जम्बूद्वीप के दक्षिण भारत खण्ड मे पूर्व दिशा मे पाचाल नामक जनपद है। वहाँ गगा नामक महानदी की तरंगो से प्रक्षालित प्राकार भित्ति वाला कपिलपुर नामक नगर है। वहा तेरहवें तीर्थंकर श्री विमलनाथ इक्ष्वाकु कुलदीपक महाराजा कृतवर्म के नन्दन और सोमादेवी की कुक्षी रूपी सीप में मुक्ताफल के सदृश उत्पन्न हुए। उनका लछन वाराह था और असली कचनवर्णी देह थी। उन्ही भगवान का यहाँ च्यवन-जन्म-राज्याभिषेक-दीक्षा और केवलज्ञान लक्षणो से पाँच कल्याणक हुए हैं। इसोलिए उस प्रदेश मे नगर का नाम पंचकल्याणक रूढ हो गया। वहाँ उन्ही भगवान

का शूकर लांछन होने के कारण देवो ने महिमा की और वह स्थान शूकर क्षेत्र नाम से प्रसिद्धि प्राप्त हुआ।

इसी नगर मे हरिखेण नामक दशवॉ चक्रवर्त्ती हुआ तथा वारहवॉ सार्वभौम ब्रह्मदत्त चक्रवर्त्ती भी यही उत्पन्न हुआ।

श्री वीर प्रभु के निर्वाण से दो सौ बीस वर्ष वीतने पर मिथिला नगरी के लक्ष्मीगृह चैत्य मे आचार्य महागिरि के कौडिन्य नामक शिष्य के शिष्य अश्वमित्र ने अणुप्रवाद पूर्व के नेउणिणय वस्तु के छिन्न छेदनक वक्तव्यता के आलापक पढते हुए शकाशील होकर चतुर्थ निह्नव हुआ। वह समुच्छेदक दृष्टि प्ररूपणा करता हुआ कपिलपुर आया। यहाँ खड नामक श्रमणोपासक रहता था और वह शुल्कपाल था उसके भय से ....

यहाँ सजय नामक राजा था, वह शिकार के लिए केसर उद्यान गया। वहाँ मृग को मारने पर निकट स्थित गर्दभालि अणगार से वोध पाकर संविग्नतया प्रवजित होकर सद्गति प्राप्त हुआ।

इस नगर मे पृष्ठ चम्पाधिप साल महासाल का भाणेज और पिढर-जसवती का पुत्र गागलिकुमार हुआ, जिसे मामा ने यहाँ से वुला कर पृष्ठ चम्पा मे राज्याभिषिक्त किया और उन्होने गौतमस्वामी के पास दीक्षा ग्रहण की। काल-क्रम से गागलिकुमार भी अपने माता-पिता के साथ गणधर श्री गौतम स्वामी के पास जिनदीक्षा लेकर सिद्ध हुआ।

इसी नगर मे दिव्य मुकुट रत्न प्रतिविम्बित मुखरूप से प्रसिद्ध दुमुह नामक राजा ने कौमुदी-महोत्सव में इन्द्रकेतु-ध्वजको अलकृत विभूपित और महाजनो द्वारा ऋद्धि-सत्कार करते देखा और थोडे दिन वाद उसे भूमि पर पडे हुए, पैरो से रौंदे जाते नष्ट होते देख कर ऋद्धि का अनृद्धिस्वरूप विचार कर वह प्रत्येकबुद्ध हुआ।

इसी नगरी मे द्रुपद राजा की पुत्री महासती द्रौपदी पाँच पाण्डवो को स्वयंवरा हुई।

इसी नगर के राजा धर्मरुचि के अगुठो मे रहे रत्नमय जिन-विम्व को नमस्कार करने के कारण पिशुन लोगो की प्रेरणा से कुपित काशी नरेश ने विग्रह किया। धर्म के प्रभाव से वैश्रमण ने सवलवाहन परचक्र को गगनमार्ग से काशी ले जाकर उद्धार किया, वह उसी का सम्मानभाजन हुआ।

इत्यादि अनेक सविधान रूपी रत्नो का निधान यह नगर महातीर्थ है। भव्य लोग यहाँ तीर्थयात्रा कर जैनशासन की प्रभावना करते हुए इहलोक-परलोक सुख और तीर्थङ्कर नाम कर्म उपार्जन करते हैं।

श्री जिनप्रभसूरि कहते है कि कम्पिलपुर प्रवर तीर्थ के इस कल्प को पढते हुए श्रावक जन दुष्ट कर्म-शत्रुओ को नष्ट करे।

श्री काम्पिल्यपुर-कल्प की श्लोक सख्या ३२ और ७ अक्षर है।

■

२६. अणहिलपुर स्थित अरिष्टनेमि-कल्प

अरिष्टनेमि भगवान को नमस्कार करके अणहिलपुरपत्तनावतस ब्राह्मणगच्छनिश्रित श्री अरिष्टनेमि का कल्प कहता हू।

पूर्वकाल मे कन्नौज नगर मे यक्ष नामक महर्द्धिसपन्न व्यापारी था। वह एक वार व्यापार के निमित्त वहुत से वैलो का सार्थ, किराना

लेकर,कन्नौज के राजा की पुत्री महनिका को कचुलि के सवन्ध मे दिए गए कन्नौज से प्रतिवद्ध गुजरात देश के प्रति प्रस्थान कर क्रमश सरस्वती नदी तट पर लक्षाराम मे आकर ठहरा। पहले अणहिलवाड पाटण की वह मण्डी थी। व्यापारी को वहाँ सार्थसहित रहते हुए वर्षाकाल आ गया, मेघ वरसने लगा। एक वार भाद्रपद महीने मे वैलो का सारा सार्थ कही चला गया, किसी को पता नही। जव सर्वत्र खोजने पर भी न मिला तो सर्वनाश की भाँति अत्यन्त चिन्तातुर अवस्था मे उसे रात्रि के समय स्वप्न मे अम्बादेवी ने कहा—वेटा, जागते हो या सोते हो ? यक्ष सेठ ने कहा—माँ, मुझे नीद कहाँ ? जिसका सर्वस्वभूत वैलो का सार्थ चला गया। देवी ने कहा—भद्र। इसी लक्खाराम मे इमली वृक्ष के नीचे तीन प्रतिमाए हैं, तीन पुरुष खुदवा कर उन्हे ग्रहण करो। एक प्रतिमा श्री अरिष्टनेमि प्रभु की, दूसरी पार्श्वनाथ भगवान की और एक अम्बिका देवी की है। यक्ष ने कहा—भगवती। इमली के वृक्ष तो वहुत से हैं, अत उस प्रदेश को कैसे जाना जाय ? देवी ने कहा—धातुमय मण्डल और पुष्पो का ढेर जहाँ देखो उसी स्थान मे तीन प्रतिमाओ को जान लेना। उन प्रतिमाओ को प्रकट करके पूजा करने से तुम्हारे वैल स्वयमेव आ जावेंगे। उसके प्रात काल उठकर पूजा, विधानपूर्वक वैसा करने से तीनो प्रतिमाए प्रकट हुई। विधिपूर्वक पूजा करते ही क्षण मात्र मे वैल आ गए। सेठ सन्तुष्ट हुआ, क्रमश. वहा प्रासाद वनवा कर प्रतिमाए स्थापित की।

अन्यदा वर्षाकाल वीतने पर अग्गहार गाँव से अठारह सौ पटशालिक गृहालकृत ब्राह्मण गच्छ मण्डन श्री यशोभद्रसूरि खभात नगर के विचरते हुए वहाँ आये। लोगो ने विनति की—भगवन्। तीर्थ का उल्लघन कर के जाना नही कल्पता। तव उन सूरि महाराज ने वहाँ जिन-विम्वो को वन्दन किया। मार्गशीर्ष पूर्णिमा के दिन ध्वजारोपण महोत्सव किया। यह ध्वजारोपण महोत्सव विक्रम

सवत् ५०२ बीतने पर हुआ था। आज भी प्रतिवर्ष उसी दिन ध्वजा-रोपण किया जाता है।

विक्रम संवत् ८०२ मे अणहिल गोपालक के परीक्षित प्रदेश लक्षाराम स्थान मे चाउक्कड़ (चापोत्कट)-चावडा वश मुक्ताफल राजा वनराज ने पाटण बसाया। वहाँ १ वनराज, २ जोगराज, ३ क्षेमराज, ४ भूअड, ५ वयरसीह, ६ रत्नादित्य, ७ सामन्तसिंह नामके चावड़ा वशीय सात राजा हुए। फिर उसी नगर मे चालुक्य वंशी १ मूलराज, २ चामुण्डराज, ३ वल्लभराज, ४ दुर्लभराज, ५ भीम-देव, ६ कर्ण, ७ जयसिंह देव, ८ कुमारपालदेव, ९ अजयदेव १० मूलराज, ११ भीमदेव नामक ग्यारह राजा हुए। फिर वाघेला १ लवण प्रसाद, २ वीरधवल, ३ वीमलदेव, ४ अर्जुनदेव, ५ सारगदेव, ६ कर्णदेव राजा हुए। इसके वाद गुजरात मे सुलतान अलाउद्दीन आदि का शासन प्रवृत्त हो गया।

वे अरिष्टनेमि भगवान कोहडी-अम्बिका कृत प्रातिहार्य से आज भी उसी प्रकार पूजे जाते हैं।

पुरातत्त्वविदो के मुख से श्रवण कर श्री जिनप्रभसूरि ने यह अरिष्टनेमि-कल्प लिखा है, जो कल्याणकारी हो।

श्री अरिष्टनेमि-कल्प पूर्ण हुआ। यह ग्रन्थाग्रन्थ ३३ परिमित है।

■

२७. शंखपुर पार्श्वनाथ-कल्प

पूर्वकाल मे नौवाँ प्रतिवासुदेव जरासंध राजगृह नगर से समस्त सेना के साथ नौवे वासुदेव कृष्ण से युद्ध करने के लिए पश्चिम दिशा की ओर चला। कृष्ण भी समस्त सैन्य सामग्री सहित द्वारिका से निकल कर उसके सन्मुख देश-सीमा पर आये। जहाँ भगवान अरिष्टनेमि ने पाञ्चजन्य-शंख बजाया, वहाँ शखेश्वर नगर वसा। शख के निनाद से क्षुब्ध जरासन्ध ने जरा नामक कुल-देवी का आराधन कर कृष्ण की सेना मे जरा की विकुर्वणा की, जिससे श्वास-कास रोग से अपनी सेना को पीडित देखकर व्याकुल होकर श्रीकृष्ण ने भगवान अरिष्टनेमि से कहा—भगवन्! मेरी सेना कैसे निरुपद्रव होगी? और मुझे कब जयश्री हस्तगत होगी? तब भगवान ने अवधिज्ञान का उपयोग देकर कहा—"पाताल मे नागराज से पूज्यमान भावी तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा है, उसे यदि तुम अपनी देव-पूजा के समय पूजो तो सेना निरुपद्रव होगी और तुम्हारी जीत भी होगी। यह सुन कर विष्णु ने सात महीना तीन दिन मे और मतान्तर मे तीन दिन निराहार रहकर पन्नगाधिराज की आराधना की, क्रमश नागराज वासुकि प्रत्यक्ष हुआ। तब कृष्ण ने भक्ति-बहुमानपूर्वक पार्श्वनाथ-प्रतिमा की याचना की। नागराज ने उसे अर्पण की। फिर महोत्सवपूर्वक लाकर अपनी देव-पूजा मे स्थापित कर त्रिकाल पूजा प्रारम्भ की। उसके न्हवण जल को समस्त सेना पर छीटने से जरा-रोग-शोक-विघ्न निवृत्त होकर विष्णु की सेना मे समर्थता आ गई। क्रमश जरासन्ध की पराजय हुई। लोहासुर, गजासुर, बाणासुर आदि सभी जीत लिए गए।

धरणेन्द्र-पद्मावती के सान्निध्य से वह प्रतिमा सकल विघ्ना-पहारिणी, सकल ऋद्धि-जननी हुई। वह वही शंखपुर मे स्थापित

की गई। कालान्तर में प्रच्छन्न होकर क्रमश शखकूप मे प्रगट हुई। आज पर्यन्त चैत्यग्रह मे सकल संघ द्वारा वह पूजी जाती है। अनेक प्रकार के परचे-चमत्कार पूरे जाते हैं। तुर्क राजा लोक भी वहाँ महिमा करते हैं।

कामित तीर्थ शखेश्वर स्थित पार्श्वनाथ जिनेश्वर की प्रतिमा का यह कल्प मैने गीत के अनुसार लिखा है। ये शखेश्वराधीश्वर पार्श्वनाथदेव कल्याणकल्पद्रुम हैं। भव्यात्माओ के देह मे और घर में सदा (आरोग्य एव) लक्ष्मी करे।

श्री शंखपुर-कल्प के ग्रन्थाग्र० २२ और २४ अक्षर ऊपर है।

■

२८. नाशिकपुर-कल्प

भव भय को दूर करने वाले श्री चन्द्रप्रभ जिनचद्र को वन्दन करके मैं पापमलसमूह के नाशक नाशिकपुर का कल्प कहता हूँ।

नाशिकपुर तीर्थ की उत्पत्ति ब्राह्मणादि परतीर्थिक इस प्रकार वर्णन करते हैं—पूर्वकाल मे एक बार नारद ऋषि ने भगवान कमलासन से पूछा कि पुण्यभूमि कहाँ है ? कमलासन ने कहा—जहाँ मेरा यह पद्म गिरे, वही पवित्र भूमिस्थान है। एकदिन विरचि ने वह पद्म छोडा जो महाराष्ट्र जनपद भूमि के अरुणा-वरुणा-गंगा महानदी विभूपित, नाना प्रकार की वनस्पति से मनोहर देव-भूमि पर जा कर गिरा। वहाँ पद्मासन ने पद्मपुर नामक नगर

बसाया। यहाँ कृतयुग मे पितामह ने यज्ञ प्रारभ किया, समस्त देव एकत्र हुए। असुरो को बुलाने पर भी वे देवताओ के भय से नही आये। उन्होने कहा—यदि भगवान चन्द्रप्रभ स्वामी यहाँ पधारे तो हम विश्वस्त होकर आवेगे! तब चित्त मे चमत्कृत होकर जहाँ स्वामी विचरते थे, वहाँ जाकर चतुर्मुख ने करबद्ध होकर नमस्कारपूर्वक कहा—भगवन्! वहाँ पधारिये, जिससे मेरा कार्य सिद्ध हो। स्वामी ने कहा—मेरे प्रतिरूप-प्रतिमा से ही काम सिद्ध हो जायगा। तब ब्रह्मा चन्द्रकान्तमणिमय बिम्ब सौधर्मेन्द्र से प्राप्त कर वहाँ लाया। दानव लोग आये, यज्ञ महोत्सव प्रारभ होकर सिद्ध हुआ। प्रजापति ने वहाँ चन्द्रप्रभ स्वामी का मन्दिर बनवाया और नगर-द्वार पर नगर की रक्षा के लिए सुर सुन्दर देव को स्थापित किया। इस प्रकार प्रथम युग—कृतयुग मे पद्मपुर तीर्थ प्रसिद्ध हुआ।

त्रेतायुग मे दशरथनदन राम, सीता और लक्ष्मण के साथ पितृ-आज्ञा से वनवास गये और गौतम-गगा के तट पर पचवटी आश्रम मे फलाहारपूर्वक चिरकाल रहे। इसी बीच रावण की बहिन सूर्पनखा वहाँ आयी। राम को देखकर अपने को ग्रहण करने की प्रार्थना करने पर राम ने प्रतिषेध किया। लक्ष्मण के पास उपस्थित हुई, उसने उसकी नाशिका काट ली, वहाँ नासिकापुर हुआ। क्रमश रावण ने सीता का अपहरण किया, राघव ने युद्ध मे रावण को मारा और विभीषण को लका का राज्य दिया। फिर अपने नगर के प्रति लौटते हुए राम ने चन्द्रप्रभस्वामी के मन्दिर का उद्धार कराया। यह राम का उद्धार नासिकपुर मे हुआ। कालान्तर मे पुण्यभूमि ज्ञात कर मिथिला से जनक राजा आये, उन्होने वहाँ दस यज्ञ कराये। जनक-स्थान नाम से वह नगर प्रसिद्ध हुआ।

एक दिन शुक्र महाग्रह की पुत्री देवयानी को जनकस्थानपुर मे खेलते हुए दण्डक राजा ने देखा। रूपवती होने के कारण वलात्कार से उसने उसका शीलभग किया। शुक्र महाग्रह को उसका स्वरूप ज्ञात होने पर उसने रोषवश शाप दिया कि यह नगर दण्डक राजा सहित सात दिन के भीतर राख का ढेर हो जायगा। नारद ऋषि को यह ज्ञात होने पर उसने दण्डक राजा को कहा। दण्डक राजा सुन कर भय के मारे सव लोगो को लेकर चन्द्रप्रभ स्वामी के शरण में आया और शापमुक्त हुआ। उसके वाद नगर का नाम "जगथाण" प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार परतीर्थी लोग भी जिस तीर्थ का माहात्म्य वखानते हैं, तो जैन लोग क्यो नही वर्णन करेंगे।

इसके पश्चात् द्वापर युग मे पाण्डु राजा की पत्नी कुन्ती देवी ने प्रथम पुत्र युधिष्ठिर होने पर चन्द्रप्रभ स्वामी के प्रासाद को जीर्ण देखकर उद्धार कराया, अपने हाथ से उसने वहाँ विल्व वृक्ष रोपा। तव वह कुन्ती-विहार नाम से विख्यात हुआ। फिर द्वैपायन ऋषि के द्वारा द्वारिका का दाह होने पर उपक्षीणप्राय यादव वंश मे वज्रकुमार नामक यादव क्षत्रिय था जिसकी स्त्री गर्भवत्ती थी। वह द्वारिका-दाह होते समय वहुभक्ति पूर्वक द्वैपायन ऋषि से छूट कर चन्द्रप्रभ स्वामी के शरण मे आई। पूर्ण समय होने पर वहाँ उसने पुण्यशाली पुत्र प्रसव किया। उसका नाम दृढप्रहारी दिया गया। वह वाल्यकाल अतिक्रान्त कर तरुणावस्था मे महारथी हो गया। वह अकेला ही लाख सुभटो के साथ युद्ध करने मे समर्थ था। एक वार वहाँ चोरो ने गायो का हरण किया, उन सव को अकेला दृढप्रहारी जीत कर लौटा लाया, इससे उसको अत्यन्त पराक्रमी ज्ञात कर ब्राह्मण आदि नागरिको ने उसे तलार—नगररक्षक पद दिया। उसने चोर डाकुओ का निग्रह किया और क्रमश-

उसी नगर का महाराजा हो गया। यादव वंश बीज का वहाँ उद्धार हुआ जिससे उसने बहुमानपूर्वक चन्द्रप्रभ स्वामी के मन्दिर का उद्धार कराया। इस प्रकार त्रेता युग का उद्धार हुआ, ऐसे तीनो युगो मे वहाँ अनेक उद्धार हुए।

वर्त्तमान कलिकाल मे श्री शान्तिसूरि ने उद्धार करवाया। पहले कल्याणकटक नगर मे परमर्दी नामक राजा राज्य करता था। उस जिनेन्द्र भक्त ने वहाँ के प्रासाद मे चन्द्रकान्त मणिमय बिम्ब सुनकर विचार किया कि मै इस प्रतिमा को अपने घर लाकर गृह चैत्यालय मे पूजा करूगा। नाशिक के नागरिको ने इसका कथचित् व्यतिकर ज्ञातकर ताम्रसम्पुट मे उस बिम्ब को निक्षिप्त कर के ऊपर लेप कर दिया, लेपमय प्रतिमा हो गई। राजा ने जिनालय मे आने पर जव उस प्रतिमा को न देखा तो लोगो से पूछा। उनके यथास्थित कहने पर राजा ने सोचा—इस लेप को भेदन कर मूल प्रतिमा को निकालूगा। फिर राजा ने उस मन्दिर का उद्धार कराने के लिए चौवीस गाँव अर्पण किये। उसके द्रव्य से देवाधिदेव पूजे जाते हैं।

इसके वाद कितना ही समय बीतने पर निकटवर्त्ती त्र्यम्बक-देवाधिष्ठित महादुर्ग ब्रह्मगिरि स्थित महल्लय क्षत्रिय जाति का वाइओ नामक डाकू था जिसने प्रासाद को गिरा दिया। यह सुन कर पल्लीवाल-वशावतश ईश्वर के पुत्र माणिक्य के जो नाऊ की कुक्षि-सरोवर के राजहस सदृश था—उस कुमारसिह परम श्रावक ने पुन भव्य प्रासाद करवाया। अपने न्यायोपर्जित द्रव्य को सफल कर उसने अपने को भवसागर से पार किया।

इस प्रकार अनेक उद्धार वाले नाशिक महातीर्थ की आज भी यात्रा-महोत्सव करने के लिए चतुर्दिशाओ से सघ आकर आराधना करता है। वे कलिकाल के दर्प को विनष्ट करने वाले भगवान के शासन की प्रभावना करते हैं।

पौराणिक परमतीर्थ नाशिकपुर का यह कल्प है इसे वाचने-पढने वालो को वाछित ऋद्धि सप्राप्त होती है।

कुछ अन्य दर्शनियो के मुख से कुछ जैन पुरातत्त्वविदो के मुख से श्रवण कर श्री जिनप्रभसूरि ने नाशिकपुर का यह कल्प लिखा हैं।

श्री नाशिक्यपुर का कल्प समाप्त हुआ। इसकी श्लोक-सख्या ५९ और २७ अक्षर हैं।

■

२९. हरिकंखीनगर स्थित पार्श्वनाथ-कल्प

हरिकंखी नगरी के चैत्य मे निविष्ट पार्श्वनाथ स्वामी को नमस्कार करके कलिकाल के दर्प को नष्ट करने वाला वहाँ का थोडा कल्प कहता हू।

गुर्जर धरा मे हरिकखी नामका सुन्दर गाँव है। वहाँ उत्तुंग शिखर वाले जिनालय मे प्रातिहार्यसन्निहित श्री पार्श्वनाय-प्रतिमा भव्यजनो द्वारा विविध पूजाओ से त्रिकाल पूजी जाती है। एकवार चालुक्यवशप्रदीप श्री भीमदेव के राज्य मे तुर्क मण्डल से सवल सैन्य सहित आये हुए अतनुवुक्का नामक सलार ने अणहिलवाडा पाटणगढ को भग किया। उसने वहाँ से लौटते हुए हरिकखी गाँव के चैत्य को देखा और प्रविष्ट होकर पार्श्वनाथ प्रतिमा को भग्न कर डाला। उसके पश्चात् गाँव मे उपद्रव करके सलार स्वस्थान की ओर चला गया।

उपाश्रय माँगने के लिए आये हैं, जहाँ पर सूरि महाराज सपरिवार रह सके।

उसने कहा—मैंने उपाश्रय दिया, सूरि महाराज पधारें और सुखपूर्वक रहे। पर केवल हम पाप निरतो को धर्मोपदेश न दें। साधुओ ने कहा—ऐसा ही होगा। गुरु महाराज पधारे, वर्षाकाल चातुर्मास रहे। वे स्वाध्याय करते और छट्ठ-अट्ठमादि तप द्वारा अपने शरीर का शोषण करते। क्रमश वर्षाकाल बीतने पर वह उन्हे विदा करने लगा और उनके सत्यप्रतिज्ञ गुण से प्रसन्न होकर अपनी नगर-सीमा तक पहुँचाने के लिए चला। सीमा पर पहुचने पर सूरिजी ने कहा—मेहर! तुमने उपाश्रय देकर हमारा वडा उपकार किया। अव हम आज कुछ धर्मोपदेश देगे, जिससे प्रत्युपकार हो सके। मेहर ने कहा—मेरे से नियम का निर्वाह तो नही होगा। कुछ मन्त्राक्षर उपदेश करें।

सूरि महाराज ने अनुकम्पा से उसे पच परमेष्ठि नमस्कार महामन्त्र सिखाया और उसका जल-अग्नि-स्तभनादि प्रभाव भी वतलाया। फिर गुरु महाराज ने कहा—प्रतिदिन तुम शत्रुञ्जय की दिशा मे प्रणाम करना। मेहर उनका कथन स्वीकार करके अपने घर आ गया। सूरि महाराज अन्यत्र विचरने लगे। वह मेहर क्रमश उस पञ्च परमेष्ठी मत्र का जाप करते हुए—नियम-निर्वाह करते हुए काल निर्गमन करने लगा। अन्यदा उसकी पत्नी ने उसे कलह करके घर से निकाल दिया। वह शत्रुञ्जय गिरिराज के शिखर पर चढने लगा। जव वह मद्य से भरा पात्र हाथ मे लिए वटवृक्ष की छाया मे मद्यपान करने के लिए वैठा तो गीध के मुँह मे रहे हुए साँप के जहर की बूँदें मद्यपात्र मे आकर गिरी। उसने यह देखकर विरक्त चित्त से मद्य त्याग दिया और ससार से विरक्त होकर अनशन ग्रहण कर लिया। आदीश्वर भगवान के चरण कमल एव नवकार मत्र को स्मरण करते हुए वह शुभ ध्यान से

कालधर्म प्राप्त हुआ। तीर्थ के माहात्म्य और नवकार मन्त्र के प्रभाव से वह कवड्डि-(कपर्दि) यक्ष उत्पन्न हुआ। और अवधि ज्ञान से अपना पूर्व भव देखकर आदीश्वर भगवान की पूजा करने लगा। यह व्यतिकर सुनकर उसकी गृहिणी वहाँ आई और आत्म-निन्दा करते हुए अनशनपूर्वक जिनेश्वर का स्मरण कर काल-धर्म को प्राप्त हुई और उसी यक्ष का वाहन हाथी उत्पन्न हुई। कपर्दि यक्ष के चारो हाथो मे पाश, अकुश, द्रव्य की थैली और वीजोरा रहता है।

अवधिज्ञान से वह अपना पूर्वभाव ज्ञात कर महाराज के चरणो मे आया और हाथ जोड़कर कहा—भगवन्! आपके प्रसाद से मैंने यह ऋद्धि प्राप्त की है, अव मुझे कुछ कर्त्तव्य का आदेश करे। गुरु महाराज ने कहा—तुम इसी तीर्थ पर नित्य स्थित रहो और युगादिनाथ जिनेश्वर की त्रिकाल पूजा करना। यात्रा के लिए आये हुए भव्य जीवो का मनोवाछित पूर्ण करना और सकल सघ के विघ्नो को दूर करना।

यक्षाधिप गुरु-वचनो को स्वीकार कर उनकी चरण-वन्दना करके विमलगिरि-शिखर पर गया और गुरु महाराज द्वारा उप-दिष्ट कार्य करने लगा।

ये अम्वादेवी और यक्षराज कपर्दि के कल्पयुग्म श्री जिनप्रभ सूरि ने वृद्ध-वचनानुसार लिखे हैं।

कपर्दि यक्ष-कल्प पूर्ण हुआ इसकी ग्रन्थ सख्या ४२ है।

हरिकखी गाँव फिर से वसा, गोष्ठिक श्रावक आये। भगवत्त की भग्न प्रतिमा को देखकर परस्पर कहने लगे—अहो! महान् महत्त्वशाली भगवान का म्लेच्छो ने भंग कैसे कर दिया? फिर क्या भगवत्त की वैसी कला नही रही?

उन लोगो के सोने पर अधिष्ठायक देव ने स्वप्न मे आदेश दिया कि इस प्रतिमा के सभी टुकडो को एकत्र करके गर्भगृह मे स्थापित्त कर कपाट बध करके ताले लगा दो। छ मास तक इसी तरह प्रतिपालन करना, उसके पश्चात् द्वार खोलकर प्रतिमा को सपूर्ण अगोपाग युक्त अखड देखना। गोठी लोगो ने भोग-पूजा करके वैसा ही किया। पाँच मास वीतने पर छठे महीने के प्रारभ मे उत्सुकता के वशीभूत होकर गोष्टिक लोगो ने द्वार खोल दिए। उन्होने देखा भगवत्त के सम्पूर्ण अगोपाँग युक्त होने पर भी स्थान स्थान पर मसे वने हुए है। उन लोगो ने तत्त्व-विचार न कर सुथार को वुलाया। उसने टकी के द्वारा मसो को तोडना प्रारभ किया तो मसो से रुधिर निकलने लगा। गोष्टिक लोगो ने भय-भीत होकर भोग-पूजादि प्रारभ किया।

रात्रि मे अधिष्ठायक देव ने आदेश किया—तुम लोगो ने यह शोभनीय कार्य नही किया कि छ मास पूर्ण हुए बिना ही द्वार खोल डाला, फिर टंकिया भी चलाई। अव फिर जव तक अतिम मास पूर्ण हो हमारा द्वार वन्द कर दो। उन्होने उसी प्रकार किया। छ मास के अनन्तर विधिपूर्वक द्वार खोल कर देखा तो पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा को निरुपहत अखण्ड अङ्गोपाङ्ग-युक्त पाया। केवल नख सूक्ति और अगुष्ठ पर तुच्छ दाग रह गया था। गोष्टिक लोग सन्तुष्ट होकर पूर्ववत् पूजा करने लगे। चारों दिशाओ से संघ आकर यात्रा-महोत्सव करता है। इस प्रकार चमत्कारी माहात्म्य के निधान श्री पार्श्वनाथ भगवान है।

यह हरिकंखी नगर स्थित अश्वसेननन्दन पार्श्वनाथ भगवान का कल्प संक्षेप से श्री जिनप्रभसूरि ने बनाया है।

हरिकखो नगर स्थित श्री पार्श्वनाथ का कल्प सपूर्ण हुआ। इसकी ग्रन्थ सख्या २५ है।

■

३० कपर्द्दियक्ष-कल्प

श्री शत्रुञ्जय शिखर पर स्थित श्री ऋषभदेव जिनेश्वर को नमस्कार करके उन्ही के सेवक कपर्द्दि यक्ष का कल्प कहता हू।

वालवक जनपद मे पालीताना नामक नगर है। वहाँ कवड्डि—कपर्द्दि नामक ग्राममहत्तर—सरपच प्रधान था। वह मद्य मास, जीवहिसा, परद्रव्यहरण, परस्त्रीगमनादि पाप कार्यों मे आसक्त चित्त था और अपने अनुरूप चेष्टावाली अणही नामक भार्या के साथ विपय-सुख उपभोग करता हुआ काल निर्गमन करता था। एक दिन वह मच पर बैठा था तब उसके घर साधु-युगल आये। उसने भी देखकर उन्हे प्रणाम करते हुए हाथ जोड कर कहा—भगवन्। आपका किस कारण से पधारना ,हुआ ? हमारे घर मे दूध, दही, घी, तक्र आदि प्रचुर हैं, जो चाहिए, आज्ञा कीजिए। साधुओ ने कहा—हम भिक्षा के लिए नही आये है, परन्तु हमारे गुरु महाराज सपरिवार शत्रुञ्जय यात्रार्थ पधारे है। अब वर्षा-काल आ गया और साधु-विहार अकल्प्य है, अत. तुम्हारे पास

३१. शुद्धदन्तीस्थित पार्श्वनाथ-कल्प

पूर्वकाल मे अयोध्यानगरी मे दशरथनन्दन श्रीपद्म नामक आठवे बलदेव जो परम सम्यग्दृष्टि थे, उन्होने अनेकश दृष्ट प्रत्यय, अनेक विघ्नापहारिणी अनागत तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ को रत्नमय प्रतिमा निज देवतावसर—गृह चैत्यालय मे चिरकाल पूजा की।

कालक्रम से पूर्वदेश मे "पद्माकर अपद्मा" अर्थात् दुर्भिक्ष होना इत्यादि ज्ञात कर दूषमकाल मे धर्म प्रवृत्ति तुच्छतर होने वाली जानकर अधिष्ठायक देव गगन मार्ग से सात सौ देश के शुद्धदन्ती-नगर मे लाकर उसे भूमिगृह में रखा। काल की विषमता जान कर उन्होने रत्नमयत्व बदल कर उस प्रतिमा को पाषाणमय बना दिया।

बहुत सा काल अतिक्रमण होने पर सोधत्तिवाल गच्छ मे विमलसूरि नामक आचार्य हुए। उन्हे रात्रि मे स्वप्नादेश हुआ कि यहाँ अमुक प्रदेश मे भूमिगृह मे भगवान पार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा विद्यमान है उसे बाहर निकाल कर पूजाओ! तब उन्होने श्रावकसघ को आदेश दिया। उन्होने भूमिगृह से उस प्रतिमा को बाहर निकाला और चैत्यालय बनवा कर वहाँ स्थापित किया। त्रिकाल पूजा होने लगी। काल के प्रभाव से नगरी उजड जाने पर एकबार अधिष्ठायको के प्रमाद से प्रसंगवश आये हुए तुर्कों ने भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा को देखा। वे अनार्य चर्या वाले होने से प्रतिमा के मस्तक को उतार कर जमीन पर गिरा गए। उस समय वहाँ आये हुए बकरियाँ चराने वाले एक अजापालक ने प्रभु के मस्तक को भूमि पर पडा हुआ देखा और बहुत विचार कर के मस्तक को स्वामी के शरीर पर चढ़ा दिया। वह सल-

सधि रहित संलग्न हो गया—अच्छी तरह जुड गया। उस देवतानुभाव से आज भी भगवान उसी प्रकार पूजे जाते विद्यमान है।

शुद्धदन्ती नगरी स्थित श्री पार्श्वनाथ देव का यह कल्प श्री जिनप्रभ सूरि-ने जैसा सुना वैसा वर्णन किया।

■

३२. अवन्तीदेशस्थ अभिनंदनदेव-कल्प

अवन्ती देश के प्रसिद्ध सिद्ध चमत्कारपूर्ण श्री अभिनन्दन देव का कल्प मै सक्षेप से कहता हूँ। इक्ष्वाकु वश के मुक्तामणि श्री संवर राजा के पुत्र, सिद्धार्था रानी की कुक्षी-सरोवर के राजहंस, कपिलाछन और स्वर्ण जैसे वर्ण वाले, अपने जन्म से कोशल पुर—अयोध्या को पवित्र करने वाले, साढे तीन सौ धनुप काय प्रमाण वाले, चतुर्थ तीर्थंकर श्रीमान् अभिनन्दनदेव प्रभु का चैत्य मालव देशान्तर्गत मगलपुर के निकट महाअटवी के वीच मेदपल्ली मे था। वहाँ विचित्र पाप कर्म निर्माण मे कर्मठ मेव जाति के लोग निवास करते हैं। एक वार विशाल म्लेच्छ सेना ने आकर जिनालय को भग्नकर डाला और कलिकाल दुर्ललित कलनीयता और अधिष्ठायको के प्रमाद से उस चैत्य के अलङ्कारभूत, नमस्कार करने वाले जनो के उपद्रव दूर करने वाले भगवान अभिनदन जिनेश्वर की प्रतिमा के नौ खण्ड कर डाले, कुछ लोग सात खड भी कहते हैं। मेव लोगो ने खेद खिन्न चित्त से उन सव पाषाण खण्डो को एकत्र कर के एक प्रदेश मे रख दिए।

इस प्रकार वहुत सा समय व्यतीत हो जाने पर, उज्वल गुण ग्राम से अभिराम, शैव लोगो को तिरस्कृत करने वाला धारोड गाँव से वड्जा नामक एक व्यापार-कुशल वणिक नित्य वहाँ आकर वस्तु क्रय-विक्रय रूप व्यापार किया करता था। वह परम जैन था। और वह प्रतिदिन घर आकर देवपूजा करता, विना देव पूजा किये वह कभी भोजन नही करता था। अत. पल्ली मे आए हुए सेठ को एक वार अनेक दारुण कर्म करने वाले उन लोगो ने कहा—आप प्रतिदिन आने जाने का कष्ट न कर इसी वणिकोचित भोज्य से पूर्ण कल्पवल्ली रूप पल्ली मे भोजन क्यो नही करते ? वणिक ने कहा—ठाकुरो ! जव तक मैं त्रिभुवन-पूज्य अर्हन्त देवाधिदेव के दर्शन पूजन न करूँ तव तक भोजन नही कर सकता। किरातो ने कहा—यदि ऐसा ही देव के प्रति तुम्हारा निश्चय है तो हम तुम्हारा अभीष्ट देवदर्शन करावेंगे। वणिक ने स्वीकार किया। उन किरातो ने उन सात या नौ खण्डो को यथावस्थित जोड़ कर अभिनन्दन भगवान की प्रतिमा दिखाई। वह निर्मल मम्माण—पाषाण की सुघटित प्रतिमा देख कर उस सरल चित्त वणिक ने अत्यन्त प्रमुदित मन से पापनाशक नमस्कार किया और पुष्पादि से पूजा कर चैत्यवन्दन किया। फिर उस गुरुतर अभिग्रह वाले ने वही भोजन किया। इस प्रकार वह वणिक प्रतिदिन वही निष्ठापूर्वक पूजा करने लगा।

एक दिन अविवेक के अतिरेक वाले मेव लोगो ने धन-प्राप्ति के हेतु उस प्रतिमा के खण्डो को उठा कर के कही छिपा कर रख दिया। पूजा के समय प्रतिमा को न देख कर वड्जा ने भोजन नही किया और खिन्न चित्त से तीन चौविहार उपवास किये। उन मेवो ने पूछा—तुम भोजन क्यो नही करते ? उसने यथातथ कहा। तव किरात लोगो ने कहा—यदि हमे गुड दो तो हम तुम्हे देव-दर्शन करा दें। वणिक ने कहा—मैं अवश्य गुड वाँटूंगा !

तव उन्होने उन सात या नौ टुकडो को पूर्ववत् यथावस्थित जोड कर प्रतिमा प्रकट कर दी। वइजा ने प्रतिमा जुडी हुई देखी और कलुषितहृदय निषाद लोगो का सस्पर्श ही विषादपूर्ण समझ कर उस सुश्रावक ने सात्विक रीति से अभिग्रह किया कि जव तक मै इस प्रतिमा को अखण्ड न देखू तव तक अन्न जल नही लू गा !

सेठ को प्रतिदिन उपवास करते देख उस विम्व-अभिनदन स्वामो—के अधिष्ठायक देव ने वइजा को स्वप्न मे कहा—इस प्रतिमा के नवो खण्डो की सन्धि को चन्दन लेप से पूर्ण करो तो यह अखण्डता प्राप्त करेगी। प्रात काल मे उस बुद्धिमान ने प्रमोद-पूर्वक वैसा ही किया। भगवान की देह अखण्ड हो गई, चन्दन के लेपमात्र से सारी सन्धियाँ मिल गई। उसने तत्काल विशुद्ध श्रद्धा-पूर्वक भगवान की पूजा करके भोजन किया। और उस वणिक ने अत्यन्त हर्षपूर्वक मेव लोगो को गुडादि दिया।

उसके वाद उस वणिक ने रत्न-प्राप्ति की भाँति अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक सूने खेडे मे पीपल वृक्ष के नीचे वेदी वधाकर उस प्रतिमा को मण्डित किया। तव से श्रावकसघ और चारो वर्ण के लोग चारो दिशाओ से आकर यात्रोत्सवादि आयोजन करने लगे। वहाँ अभयकीर्त्ति, भानुकीर्त्ति, आवा, राजकुल, मठपति आचार्य चैत्यचिन्ता—सार-सभाल करते हैं।

प्राग्वाट वशावतश थेहा का पुत्र हालाशाह नि सन्तान था। उसने पुत्र के लिए मानता की—यदि मेरे पुत्र हो गया तो मै यहाँ मन्दिर वनवाऊँगा! क्रमश अधिष्ठायक देव के सान्निध्य से उसके कामदेव नामक पुत्र हुआ। हालाशाह ने वहाँ ऊँचे शिखर वाला चैत्य वनवाया। क्रमश भावड शाह की पुत्री कामदेव को परणाई। पिता ने डाहा गाँव से मलयसिंह आदि को वुला कर देवार्चक स्थापित किया। महणिया नामक मेव ने भगवान के उद्देश्य

से अपनी अंगुली काट डाली—कि मैं इन भगवान का अंगुली काटा सेवक हूँ। भगवान के विलेपन चन्दन लगने से उसके फिर नई अगुली हो गई।

भगवान को अतिशयवान् सुन कर मालवपति श्री जयसिंह ने अत्यन्त भक्तिपूर्ण अन्त करण से स्वयं भगवान अभिनदनस्वामी की पूजा की। देवपूजा के निमित्त मठपति को चौबीस हल की कृषि-भूमि प्रदान की। अवन्तीपति ने देवार्चक को भी बारह हल की भूमि दी। आज भी अभिनदनभगवान का प्रभाव दिग्मण्डल मे व्याप्त है और उसी प्रकार पूजे जाते हैं।

अभिनन्दनदेव का यह कल्प जैसा सुना, सक्षेप से श्रीजिन-प्रभ सूरि ने रचा है।

इसकी ग्रन्थ सख्या ५३ और १८ अक्षर ऊपर है!

●

३३. प्रतिष्ठानपुर-कल्प

श्री मुनि सुव्रत जिन को नमस्कार कर पृथ्वी मे प्रतिष्ठा प्राप्त प्रतिष्ठानपुर का कल्प यथाश्रुत कहता हूँ। इसी भारत वर्ष मे दक्षिण खण्ड महाराष्ट्र देशावतंश श्रीमत्प्रतिष्ठान नामक पत्तन है। वह अपनी समृद्धि से इन्द्रपुरी को लज्जित करने वाला नगर भी कालान्तर मे एक छोटा-सा ग्राम प्राय रह गया। एक बार वहाँ दो विदेशी ब्राह्मण अपनी विधवा बहिन के साथ आकर किसी

कुंभार की शाला में रहे। वे कणवृत्ति करके कण लाकर अपनी वहिन को देते और उससे की हुई रसोई से आहार कर अपना समय निकालते थे। एक दिन वह ब्राह्मणो की वहिन पानी लाने के लिए गोदावरी नदी गई। उसके अद्वितीय रूप को देख कर कामातुर अन्तर्ह्रद निवासी शेष नामक नागराज ने ह्रद से निकल कर मनुष्य देह धारण कर उसके साथ सभोग-क्रेलि की। उसके सप्त-धातुरहित होने पर भी भवितव्यतावश दिव्य शक्ति से शुक्र पुद्गल सचार द्वारा गर्भाधान हो गया। नागराज अपना नाम प्रकाशित कर—सकट के समय मुझे स्मरण करना—ऐसा कह कर पाताल लोक चला गया। वह भी अपने घर लौट आई पर उसने अपने भ्राताओ को लज्जावश अपना वृत्तान्त नही बतलाया। कालक्रम से उस पेट वाली के गर्भलिंग देख कर दोनो भ्राताओ ने जाना कि यह गर्भवती हो गई मालूम देती है। वडे भाई के मन मे ऐसी शका हो गई कि यह अवश्य ही छोटे भाई से उपभुक्त हुई है। वडे भाई के शकाशील भावो से छोटे के चित्त मे भी विकल्प हुआ कि यह अवश्य वडे के साथ शीलभ्रष्ट हुई है। इस प्रकार परस्पर कलुषित आशय से वे दोनो उसे छोड कर अलग-अलग देशान्तर चले गए।

इधर वह वढते हुए गर्भ वाली वहिन भी पराये घरो मे काम करके अपनी उदरपूर्त्ति करने लगी। क्रमश पूरे दिन होने से उसने सर्व लक्षणो से यक्त पुत्र को जन्म दिया। और वह क्रमश शरीर एव गुणो मे वढते हुए समवयस्क बालको के साथ खेला करता। वह उन्हे बाल-क्रीडा मे हाथी-घोडा-रथ आदि कृत्रिम नाम देकर वाहन वनाता और स्वय राजा वन जाता। वाहनो का नाम देने के कारण लोगो से उसने "सातवाहन" नाम पाया। अपनी जननी द्वारा पालन होते हुए वह सुख से रहने लगा।

इधर उज्जैन मे अवन्तीपति श्री विक्रमादित्य की सभा में

किसी नैमित्तिक ने "सातवाहन प्रतिष्ठानपुर मे होने वाला राजा है" वतलाया। अव उसी नगर मे एक वृद्ध ब्राह्मण ने अपना आयु-शेष ज्ञात कर अपने चारो पुत्रो को वुला कर कहा कि—वत्स! मेरे परलोक जाने पर, मेरी शय्या के सिरहाने के दक्षिण पाये से लेकर चारो ही पायो के नीचे चार निधि-कलश वर्त्तमान हैं, उन्हे ज्येष्ठ-क्रमानुसार विभाग करके ले लेना जिसमे तुम लोगो का निर्वाह सपन्न होगा। पुत्रो ने पिता का यह आदेश स्वीकार कर लिया और मृत्यु होने पर पिता का ऊर्ध्वदैहिक करके तेरहवे दिन भूमि खनन कर अपने-अपने निधिकलश चारो ने ले लिये। उन्होने ज्योही उद्घाटित कर देखा तो पहले कलश मे सोना, दूसरे मे काली मिट्टी, तीसरे के वुश-भूसी और चौथे के कलश मे हड्डियाँ देखी। तव वे तीनो भाई वडे के साथ विवाद करते हुए कहने लगे कि हमे भी सोने की पाती वाँट कर दो! उसके वितरण न करने पर वे अवन्तीपति के न्यायालय मे उपस्थित हुए। वहाँ भी उनके विवाद का निपटारा नही हुआ तो वे चारो भाई महाराष्ट्र जनपद मे गए।

कुमार सातवाहन कुलालशाला मे मिट्टी के हाथी, घोडे, रथ, सैनिक आदि नये-नये खिलौने वना कर दुर्ललित वालक्रीडा करता हुआ काल-निर्गमन करता था। वे चारो ब्राह्मणपुत्र भी प्रतिष्ठान-पत्तन आकर उसी कुलाल चक्रशाला मे ठहरे। उन्हे देख कर इगिताकारकुशल सातवाहनकुमार ने कहा—अहो ब्राह्मणो! आप चिन्तातुर दिखायी देते हो। उन्होने कहा—सुभग! हमारे मन के अन्दर चिन्ता है, पर आपने कैसे जाना? कुमार ने कहा—इगित से क्या नही जाना जा सकता है? उन्होने कहा—ठीक है, परन्तु आपके सामने चिन्ता का कारण निवेदन करने से क्या होगा? आप तो वालक हैं। कुमार ने कहा—वालक भले हूँ, पर मुझसे भी आपका साध्य सिद्ध होगा, अत चिन्ता का कारण निवेदन करें।

उसके वचन-वैचित्र्य से हृत-हृदय ब्राह्मणो ने अपना निधि-निर्णयार्थ मालवेश परिषद मे गमनादि का सारा वृतान्त निवेदन किया। कुमार ने स्मित अधरो से कहा—ब्राह्मणो! मै आपके झगडे का निर्णय करूगा! सावधान होकर सुनो! जिसे स्वर्ण वाला कलश दिया वह उसी से निवृत्त हो गया, जिसके कलश मे काली मिट्टी निकली वह क्षेत्र-केदारादि ले, जिसके तुष-भृसी निकला वह कोठे मे रहा हुआ सभी धान्य स्वीकार करे और जिसके हड्डियाँ निकली वह घोडे, गाय, भैस, वैल, दास दासी का स्वामी हो! यही तुम्हारे पिता का आशय है!

उज्जैन नगर मे उनके वाद-निर्णय की वात फैली, राजा ने भी उन्हे वुलाकर कहा—क्या आपका वाद-निर्णय हो गया? उन्होने कहा—हाँ स्वामिन्!। राजा द्वारा—"किसने निर्णय किया?" पूछने पर उन्होने सातवाहन का सारा स्वरूप सत्य-सत्य वता दिया।

राजा ने यह सुन कर सोचा उस वालक का वुद्धि-वैभव भी अद्भुत है। उसे दैवज्ञ का कथन स्मरण हुआ कि प्रतिष्ठानपुर मे उसका राज्य होगा अत राजा उसे शत्रु मान कर क्षुब्ध मन से उसको मारने का उपाय चिरकाल सोचता रहा। शस्त्रादि प्रयोगो से मारने मे अपयश और क्षात्रधर्म की क्षति सोच कर मालवपति ने चतुरंगिणी सेना सजाई और प्रतिष्ठानपत्तन को जाकर घेर लिया। यह देख कर त्रस्त ग्राम्यजन सोचने लगे—क्रुद्ध मालवपति का यह आटोप कोप किस पर हुआ है? यहाँ न तो कोई राजा है, न कोई ठाकुर और न कोई वीर या वैसा दुर्ग ही है। उन लोगों के इस प्रकार की चिन्ता करते समय मालवेश के दूत ने आकर सातवाहन से कहा—अरे कुमार! तुम्हारे पर राजा क्रुद्ध है और कल तुम्हे मारेगा अत तुम्हे युद्धादि उपाय सोचना उचित है! दूत की वात सुन कर भी वह निर्भयतापूर्वक खेलने मे लगा रहा।

इसी बीच परमार्थ ज्ञात कर उसके दोनो मामा दुर्विकल्प त्याग कर पुन प्रतिष्ठान आ गए थे। उन्होने परचक्र देख कर बहिन से कहा—वहिन! जिसने तुम्हे यह पुत्र दिया है उसे ही स्मरण करो, ताकि वही इसका सहायक होगा।

भ्राताओ के कथन से वह भी नागराज के वचनो को स्मरण कर शिर पर घड़ा लेकर गोदावरी मे नागह्रद पर गई। नहा कर नागराज की आराधना की। नागराज ने तत्काल प्रत्यक्ष होकर कहा—ब्राह्मणी! तुमने हमे किस लिए याद किया? उसके प्रणाम करके सारी बात बताने पर शेषराज ने मेरे प्रताप से तुम्हारे पुत्र का कौन पराभव कर सकता है?—कहते हुए उसका घड़ा लेकर ह्रद के अन्दर गया और पीयूष कुण्ड से अमृत का घडा भर कर उसे ला दिया। उसने कहा—इस अमृत से सातवाहन के बनाये हुए मिट्टी के घोडे, रथ, हाथ व सैनिक अभिसिंचित करो जिससे वे सजीव होकर शत्रु सेना को भग्न कर डालेगे। यह पीयूष-घट ही तुम्हारे पुत्र को प्रतिष्ठानपत्तन के राज्याभिषिक्त करेगा! अवसर पर मुझे याद करना। इसके बाद नागराज अपने स्थान चला गया। वह भी अमृतघट को लेकर अपने घर आई और उस मिट्टी की समृद्ध सेना को सीचा। प्रात काल दैवशक्ति से वह सेना सचेतन होकर शत्रु सेना के सामने जाकर उसके साथ युद्ध करने लगी।

सातवाहन की सेना ने मालवपति का बल भग्न कर दिया। राजा विक्रमादित्य भी भग कर अवन्ती चला गया। इसके पश्चात् सातवाहन राज्याभिषिक्त हुआ। प्रतिष्ठानपुर ने अपनी पूर्व विभूति पुन प्राप्त की। वहाँ हाट, हवेली, मन्दिर, राजमार्ग, खाई, प्राकार आदि से सुशोभित सुन्दर पत्तन हो गया। सातवाहन ने भी क्रमश दक्षिणापथ को तापी तट पर्यन्त अनृण करके उत्तरापथ को साध

कर अपना सवत्सर प्रवर्तित किया। वह जैन हुआ, उसने जन-नयनशीतलकारी जिन-चैत्य वनवाये। पचास वीरो ने भी प्रत्येक ने अपने अपने नामाङ्कित जिनालय नगर मे कराये।

प्रतिष्ठानपत्तन कल्प समाप्त हुआ, इसकी श्लोक सख्या ४७ है।

•

३४. प्रतिष्ठानपुराधिपति सातवाहन नृप चरित्र

अत्र प्रसङ्गवश अन्य दर्शनियो के सिद्धातो मे लोकप्रसिद्ध सातवाहन का शेष चरित्र भी कुछ कहते हैं। श्री सातवाहन जव पृथ्वी का पालन कर रहे थे उस समय प्रतिष्ठाननगर मे पचास वीर और वाहर भी पचास वीर निवास करते थे। इधर इसी नगर मे एक ब्राह्मण का शूद्रक नामक अभिमानी पुत्र था, वह भी दर्प पूर्वक युद्ध-श्रम करता रहता था जो पिता द्वारा अपने कुल के लिये अनुचित वतलाकर निपेध करने पर भी नही मानता था।

एक दिन पिता के साथ जाते हुए वारह वर्षीय शूद्रक ने देखा राजा मातवाहन नगर मे रहने वाले वापला, खुदला आदि पचास वीरो के साथ व्यायाम करते हुए वावन हाथ प्रमाण वाली शिला को उठा रहे थे। किसी वीर ने चार अगुल, किसी ने छ अगुल और किसी ने आठ अंगुल भूमि से शिला को ऊँची उठाया। राजा ने जानु तक ऊँचा उठा लिया। यह देखकर वल जागृत होने मे

शूद्रक बोला—अहो ! क्या आप लोगो मे से कोई इस शिला को मस्तक तक नही उठा सकता ? उन लोगो ने ईर्ष्यापूर्वक कहा—यदि अपने को समर्थ मानते हो तो तुम्ही उठाओ ! यह सुनकर शूद्रक ने उस शिला को आकाश मे उछाला जो दूर तक ऊँची चली गई। शूद्रक ने कहा—आप लोगो मे जो समर्थ हो वह इस गिरती हुई शिला को रोक ले ! सातवाहनादि वीरो ने भयभ्रान्त नेत्रो से उसी से अनुनयपूर्वक कहा—अहो महाबली ! हमारे प्राणो की रक्षा करो ! रक्षा करो ! शूद्रक ने उस गिरती हुई शिला को मुष्टिप्रहार किया जिससे उसके तीन टुकडे हो गए। उनमे एक टुकडा तीन योजन पर जाकर गिरा, दूसरा टुकडा नागह्रद मे और तीसरा टुकडा प्रतोली द्वार के चौरस्ते पर जाकर गिरा जो आज भी वैसे ही लोगो द्वारा देखा जाता है।

शूद्रक के बल से चमत्कृत होकर राजा ने उसे अत्यन्त सम्मानपूर्वक नगर का आरक्षक नियुक्त कर दिया। अन्य शस्त्रास्त्रो का प्रतिषेध कर उस दण्ड धारण करने वाले का दण्ड ही आयुध बना। वह शूद्रक भी बाहर रहने वाले वीरो को अनर्थ निवारण करने के उद्देश्य से नगर मे प्रविष्ट नही होने देता था।

एक बार अपने महल के छत पर सोया हुआ राजा सातवाहन शरीर-चिन्ता के लिए उठा। उसने नगर के बाह्य भाग मे करुण रुदन सुना तो पराये दुख से दुखी हृदय से वह तलवार लेकर घर से निकल पडा। रास्ते मे शूद्रक ने देखा और विनयपूर्वक नमस्कार कर अर्द्धमहानिशा मे निकल पडने का कारण पूछा। राजा बोले—यह नगर के समीप करुण क्रन्दन की ध्वनि सुनाई दे रही है इसका कारण जानने के लिए मैं जा रहा हूँ। राजा के ऐसा कहने पर शूद्रक ने निवेदन किया—देव ! आप प्रतीक्षा करते हुए भवन को अलकृत करने पधारिये, मैं ही उसकी खोज कर आऊँगा ! ऐसा कह कर राजा को लौटा दिया और स्वय गगन-ध्वनि के अनुसार

नगर के बाहर जाने लगा। आगे कान लगाकर चलते हुए उसने सुना कि कोई गोदावरी के स्रोत मे रो रहा है। शूद्रक परि-करबद्ध होकर तिरता हुआ ज्योही नदी के बीच मे पहुँचा, त्योही प्रवाह मे वहते हुए और रोते हुए एक पुरुष को देखकर वह वोला—अरे। तुम कौन हो ? किस लिए रो रहे हो ? यह सुनकर वह और भी ज़ोर-जोर से रुदन करने लगा। अत्यन्त आग्रह से पूछने पर वह स्पष्ट वोला—हे साहसिकशिरोमणि! मुझे यहाँ से निकाल कर राजा के समीप ले चलो, जिससे मै वहाँ अपना वृत्तान्त कहूँ।

उसके ऐसा कहने पर शूद्रक ने उसे उठाने का प्रयत्न किया किन्तु वह उठ न सका। शूद्रक ने सोचा—कही नीचे से किसी राक्षस ने न पकड रखा हो। इस आशका से उसने तलवार चलाई तव मात्र शिर को वह ऊचा उठा पाया। हाथ मे आया हुआ शिर छोटा सा था और उसमे से रुधिर झर रहा था। उसे देख कर शूद्रक विषादपूर्ण होकर सोचने लगा—अहो ! प्रहार न करने वाले पर भी प्रहार करने वाले मुझको धिक्कार है, मैं शरणागत का घातक हूँ। इस प्रकार आत्मनिन्दा करता हुआ वह वज्राहत के समान क्षण भर के लिए मूर्छित हो गया। तत्पश्चात् चेतना आने पर वह चिरकाल चिन्ता करने लगा कि मै अपनी इस दुश्चेष्टा को को राजा से कैसे निवेदन करूगा। इस प्रकार लज्जित मन से वही काष्ठ की चिता वना कर उसमे अग्नि प्रज्वलित कर ज्यो ही मस्तक को लेकर प्रवेश करने लगा, त्यो ही मस्तक ने कहा—हे महापुरुष। ये साहस आप क्यो कर रहे हैं। मै तो राहु के समान शिरमात्र ही हूँ! अत वृथा खेद मत करो। और कृपा कर मुझे राजा के पास ले चलो। उसकी यह वात सुन चमत्कृत चित्त से—यह प्राणी है—ऐसा मानता हुआ प्रसन्नता से शूद्रक उस शिर को रेशमी कपडे मे लपेट कर प्रात काल सातवाहन राजा के पास

पहुँचा। नमस्कार किया। राजा ने पूछा—शूद्रक ! यह क्या है ? वह बोला—देव ! यह वही है जिसकी रुदन-ध्वनि श्रीमान् ने रात्रि मे सुनी थी। फिर उसने उसका सारा वृत्तान्त निवेदन कर दिया।

राजा ने उस मस्तक से पूछा—अहो ! तुम कौन हो ? किस लिए यहाँ आना हुआ ? मस्तक ने कहा—महाराज ! आपकी कीर्ति दोनो कानो से सुन कर करुण रुदन के छल से अपने को जतला कर मैं आपके पास आया हूँ। आपके दर्शन किए, आज मेरे उभय नेत्र कृतार्थ हुए ! राजा ने पूछा—तुम कौनसी कला ठीक ढग से जानते हो ? उसने कहा—देव ! मं सगीत कला जानता हूँ ! फिर राजा की आज्ञा से पहले नही गाया हुआ गीत गाने लगा ! उसकी गायन-कला से सारी राजसभा मोहित हो गई। वास्तव मे वह मायासुर नाम का असुर था और वैसी माया वना कर राजा की रानी, जो अत्यन्त रूपवती थी उसका हरण करने के लिए आया हुआ था। पर यह किसी को पता नही लगा। लोगो ने तो शिरमात्र देखने से उसका नाम प्राकृत—लोक भाषा मे सीपुला रख दिया। तव से प्रतिदिन उस तुम्बुरु के द्वारा मधुरतर गाते रहने पर उसका सारा स्वरूप महादेवी ने सुना और दासी के द्वारा राजा को निवेदन कर उस शिर को अपने पास मगवाया। रानी प्रतिदिन उससे सगीत सुनने लगी।

कुछ दिन वाद मायासुर ने अवसर पाकर रानी का अपहरण कर लिया और अपने घण्टावलम्वी नामक विमान मे उसे चढा लिया। रानी करुण क्रन्दन करने लगी—हाय, मेरा किसी ने अपहरण कर लिया, पृथ्वी पर क्या कोई ऐसा वीर है जो मुझे छुडा ले ! खुहला वीर ने रानी की यह पुकार सुन कर दौडते हुए आकाश मे उछल कर उस विमान का घटा अपने हाथ से दृढता

पूर्वक पकड़ लिया। उसके साहस से विमान स्तब्ध हो गया और आगे नही चला। मायासुर ने सोचा—यह विमान आगे क्यो नही चल रहा है। फिर ज्यो ही हाथ मे घट को पकडे उस वीर को देखा, तो उसका हाथ काट डाला। वीर पृथ्वी पर गिर पडा और विमान को असुर आगे ले चला।

देवी के अपहरण-वृत्तान्त को राजा ने सुना और ४९ वीरो को आदेश दिया कि यह देवी का किसने अपहरण किया है, खोज करिए। वे लोग पहिले से ही शूद्रक से असूया रखते थे अत: मौका पाकर बोले—महाराज! शूद्रक ही जाने, वही उस गिर को लाया था जिसने देवी का अपहरण कर लिया। राजा ने शूद्रक पर कुपित होकर उसे शूली पर चढाने की आज्ञा दी।

तत्कालीन देशरीति के अनुसार शूद्रक पर रक्त चन्दन का लेप किया गया और उसे शकट मे सुलाकर गाढा बाँध कर शूली पर चढाने के लिए ज्यो हो राजपुरुष चले त्यो ही ४९ वीर एकत्र होकर शूद्रक से कहने लगे—हे महावीर! आप रण्डा के समान किस लिए मर रहे हो ? "अशुभस्य कालहरणम्" न्याय से राजा से कुछ दिन की अवधि माँगो और देवी का अपहरण करने वाले की सर्वत्र खोज करो! निष्कारण ही क्यो अपने वीरत्व की कीर्त्ति को नष्ट कर रहे हो! उसने कहा—तब राजा के पास जाकर यह बात निवेदन करिए! उन्होने वैसा ही किया। राजा ने शूद्रक को वापस बुलाया। उसने भी अपने मुख से निवेदन किया—महाराज अवधि दीजिए, जिससे मैं प्रत्येक दिशा मे देवी का अपहरण करने वाले की खोज करूँ। राजा ने उसे दस दिन की अवधि दी। शूद्रक के घर उसके दो सहचारी कुत्ते थे। राजा ने कहा—तुम दोनो कुत्तो को जमानत स्वरूप हमारे पास रख दो और स्वय देवी के अनुसधानार्थ पृथ्वी पर भ्रमण करो। वह वीर भी आदेश प्रमाण है! कह कर रवाना हो गया।

राजा ने साकल से बँधे हुए उन दोनो कुत्तो को अपनी शय्या के पायो से बाँध दिया। शूद्रक को चारो ओर पर्यटन करते हुए भी कही उसे देवी की वार्ता तक नही मिली तो उसने सोचा—"मेरा यह अपयश प्रगट हुआ है, मैं स्वामी-द्रोही गिना जाऊँगा और लोग कहेगे कि देवी का इसी ने अपहरण करवा दिया। जब कही भी उसका पता नही लग रहा है तो मुझे अब मरण का ही शरण हो।" इस विचार से उसने काष्ठ की चिता बनाई और उसमे अग्नि प्रज्वलित कर ज्यो ही प्रवेश करने लगा त्यो ही देवाधिष्ठित कुत्तो ने जाना कि हमारा स्वामी निधन को प्राप्त हो रहा है। वे दोनो दैव-शक्ति से साकले तोडकर अविलम्ब वहाँ जा पहुँचे जहाँ शूद्रक ने चिता बनाई थी। उन्होने दाँतो से केशो को पकड कर शूद्रक को चिता से बाहर निकाल लिया। उसने भी अकस्मात् उन कुत्तो को देखकर विस्मित मन से कहा—अरे पापियो ! अशुभ के समान आपने यह क्या किया ? राजा के मन का विश्वास नष्ट हो जायगा और जानेगा कि जामिनो को भी वह अपने साथ ले गया। दोनो कुत्ते बोले—धैर्य रखिये और हमारी दिखायी हुई दिशा मे चलिये। जल्दी मत करिये। ऐसा कह कर वे आगे हो गए। वह भी उनके साथ चला और क्रमश कोल्लागपुर पहुँचे। वहाँ के महालक्ष्मी देवी के मन्दिर मे प्रवेश किया शूद्रक ने देवी की पूजा कर कुशासन पर बैठे हुए तीन उपवास किए। भगवती महालक्ष्मी प्रत्यक्ष होकर बोली—वत्स ! क्या खोज रहे हो। शूद्रक ने कहा—भगवती ! सातवाहन राजा की महिषी का पता बतलाइये, वह कहाँ है। किसने अपहरण किया है। श्री देवी ने कहा—सब यक्ष-राक्षस-भूत आदि देव गणो को एकत्र कर यह बात मैं तुम्हे बतलाऊँगी। किन्तु उन सब के लिए तुम्हे बलि-उपहार आदि एकत्र कर रखना चाहिए। जब तक वे बलि-पूजा ग्रहण कर प्रसन्न न बने तब तक तुम विघ्नो की रक्षा करते रहना।

शूद्रक ने उन देवताओ का तर्पण करने के लिए कुण्ड बना कर हवन करना प्रारभ किया। सब देवता गण आये और अभिमुख हो अपना-अपना भाग ग्रहण किया। ज्यो ही होम का धुँआ फैला, जहाँ मायासुर था उसने भी लक्ष्मी के आदेश से शूद्रक द्वारा किये गए होम का स्वरूप जाना और अपने भाई कोल्लासुर को होम मे विघ्न करने के लिए भेजा। कोल्लासुर अपनी सेना सहित आकाश मे आ गया, सभी देवताओ ने आश्चर्यपूर्वक उसे देखा। वे दोनो कुत्ते दिव्य शक्ति से उन दैत्यो के साथ युद्ध करने लगे दैत्यो ने उन्हे मार दिया तब शूद्रक स्वय युद्ध करने लगा। उसके पास दण्ड के अतिरिक्त दूसरा शस्त्र न होने पर भी मात्र दण्ड से ही उसने बहुत से असुरो को मार डाला। दैत्यो ने उसकी दक्षिण भुजा काट डाली तो वह वाम भुजा से ही दण्ड-युद्ध करने लगा। वाम भुजा के कट जाने से दक्षिण पाँव मे दण्ड धारण कर वह युद्ध करने लगा। दैत्यो द्वारा उसे भी काट दिए जाने पर बाँये पाँव से दण्ड युद्ध किया तो असुरो ने उसे भी काट डाला। शूद्रक अपने दाँतो मे दण्ड पकड कर जब युद्ध करने लगा तो दैत्यो ने उसका मस्तक भी काट दिया।

अब आकण्ठ तृप्त देव गणो ने शूद्रक का मस्तक भूमि पर पडा देख कर कहा—अहो! अद्भुत भोग देने वाले इस बिचारे का यह क्या हुआ? इस प्रकार सन्ताप करते हुए वे भी लडने लगे और कोल्लासुर को मार गिराया। श्री देवी ने अमृत-सिंचन कर शूद्रक को पूर्णाङ्ग बना दिया और जीवित कर दिया। देवी ने दोनो कुत्तो को भी जीवित कर प्रसन्नतापूर्वक उसे खड्गरत्न दिया और कहा—इससे अजय रहोगे। ऐसा वर दिया।

इसके बाद शूद्रक महालक्ष्मी आदि देवताओ के साथ राजा सातवाहन की रानी को खोजने के लिए सारे भूमण्डल मे घूमता हुआ महार्णव मे पहुँचा। वहाँ एक ऊँचा वटवृक्ष देखकर विश्राम

के लिए उस पर चढ गया। वहाँ उसने पेड की शाखा पर लटकते हुए नीचा शिर किए हुए काष्ठ की कील मे ऊँचे पाँव रहे हुए पुरुष को देखा। वह जिह्वा फैलाकर पानी मे रहे हुए जलचर जीवो को भक्षण कर रहा था, यह उन सभी ने देखा। शूद्रक ने उससे पूछा—तुम कौन हो ? इस प्रकार क्यो लटक रहे हो ? उसने कहा—मैं मायासुर का छोटा भाई हूँ। मेरा बडा भाई कामोन्मादी है, उसने रावण की भाँति सीता जैसी सातवाहन की महिषी को रमण करने की इच्छा मे हरण कर लिया है। वह पतिव्रता है, उसे बिल्कुल नही चाहती। मैंने भाई से कहा—आपको परदारा का अपहरण करना योग्य नही है क्योकि अपने विक्रम से सारे ससार को आक्रान्त करने वाला रावण भी परस्त्रीरमण की इच्छा से कुलक्षय को प्राप्त हुआ था। मेरे इस प्रकार कहने पर मायासुर क्रुद्ध हो गया और मुझे इस वट की शाखा मे टगाकर इस प्रकार विडम्बित किया है। मैं जिह्वा फैला कर समुद्र मे चलने वाले जलचरादि का भक्षण कर जीवन धारण कर रहा हूँ। यह सुन कर शूद्रक ने कहा—मैं भी उन्ही राजा सातवाहन का शूद्रक नामक सेवक हू। और उसी देवी की शोध के लिए आया हू। उस असुर ने कहा—यदि ऐसा है तो मुझे छुडाओ। जिससे मैं तुम्हारे साथ चल कर उस देवी को दिखाऊँ। मायासुर ने अपने स्थान के चारो ओर लाक्षा का दुर्ग बना रखा है वह निरन्तर प्रज्वलित रहता है अत उसे उल्लघन कर अन्दर जाकर उसे मार कर देवी को लौटाना है।

यह सुनकर शूद्रक ने उसके काष्ठ-बन्धन काट डाले और उसके पीछे-पीछे देवताओ से घिरे हुए प्रस्थान कर दुर्गोल्लघन पूर्वक उस स्थान मे जा पहुँचा। मायासुर देवगणो को देख कर अपनी सेना को साथ लेकर उनसे युद्ध करने लगा। सेना के मर जाने से वह स्वयं मैदान मे उतर पडा, शूद्रक ने क्रमश उस

तलवार के द्वारा मायासुर को मार डाला। और उस घटावलवी विमान मे देवी को चढा कर सब देवगण शीघ्र ही प्रतिष्ठानपुर की ओर प्रस्थान कर गए।

इधर दश दिन की अवधि पूर्ण होते जानकर राजा विचारने लगा—न तो मेरी महादेवी आई और न शूद्रक वीर और न वे दोनो कुत्ते ही वापस लौटे। यह सब विनाशलीला मुझ कुबुद्धि ने ही करवायी। इस प्रकार चिन्ता करते हुए सपरिवार प्राणत्याग की इच्छा से नगर के बाहर उसने चन्दनादिकाष्ठ से चिता तैयार करवायी। ज्योही वह परिजनसमूह को चिता मे डालने लगा त्योही देवगणो मे से एक बधाई देने वाला वहाँ आ पहुचा और विनयपूर्वक राजा से निवेदन किया—देव! महादेवी के आगमन से भाग्यशाली हैं! देव की इस कर्णमनोहर बात को सुन आनद कद कलित चित्त से राजा ने ज्यो ही ऊँचा देखा—आकाश मे देवसमूह और शूद्रक दिखलाई पडे। शूद्रक और महादेवी विमान से उत्तर कर राजा के चरणो मे गिर पडे। शातवाहन राजा ने आनन्दसहित शूद्रक का अभिनन्दन करते हुए उसे अर्द्ध राज्य दिया। राजा, महादेवी के साथ शूद्रक का चारु चरित्त सुनता हुआ उत्सवपूर्वक नगर मे प्रविष्ट हो राज्य-लक्ष्मी भोगने लगा।

इस प्रकार हाल राजा के भाँति-भाँति के अवदान हैं, कितनो का वर्णन किया जा सकता है? इसी ने गोदावरी नदी के किनारे महालक्ष्मी को स्थापित किया और प्रासाद मे उन उन स्थानो मे अन्यान्य देवता भी यथायोग्य स्थापित किये। इस प्रकार राजा चिरकाल तक विशाल राज्य का उपभोग करता रहा।

नगर की वणिक-वीथी मे कोई काष्ठभारवाहक प्रतिदिन अच्छी लकडियाँ लाकर बेचा करता था। किसी दिन वह भार बेचने नही आया। वणिक ने उसकी बहिन से पूछा—आज तुम्हारा

भाई गली मे क्यो नही आया ? उसने कहा—श्रेष्ठिवर ! मेरा भाई देवताओ मे रहता है। वणिक ने कहा—यह कैसे ? वह वोली—ककण बँधने से लेकर विवाह-प्रकरण तक चार दिन मनुष्य अपने आपको देवताओ के वीच वसता हुआ मानता है, वैसे वेसे उत्सव देखने के कुतुहल से वैसा अनुभव करता है। यह वात राजा तक पहुँची, राजा ने विचार किया—अहो ! क्या मै देवताओ मे नही रहता ? मैं भी चार दिनो के अनवरत विवाहोत्सवमय देवस्वरूप रहूगा ! यह सोचकर चार वर्णो मे जिन-जिन कन्याओ को युवती या रूपवती देखता सुनता, उन्ही को उत्सवपूर्वक विवाह लाता था।

इस प्रकार वहुत सा समय वीत जाने पर लोगो ने विचार किया—क्या भविष्य मे सभी वर्ण वाले लोग नि सन्तान ही रहेगे ? सब कन्याओ के साथ तो राजा ही विवाह कर लेता है। स्त्री के विना सन्तान कहाँ से होगी ? इस प्रकार लोगो के दुखी होने पर 'विवाह वाटिका' नामक गाँव मे रहने वाले एक ब्राह्मण ने पीठजा देवी का आराधना करके निवेदन किया --भगवती ! हमारे सतानो का विवाह कैसे होगा ? देवी ने कहा—ब्राह्मण ! मैं तुम्हारे घर मे कन्या के रूप मे अवतार लूगी। जव मेरे लिए राजा प्रार्थना करे तो मुझे राजा को दे देना, शेष मैं सव संभाल लूंगी ! वैसा ही हुआ। राजा ने उसे रूपवती सुनकर विप्र से याचना की। वह भी वोला—मैंने कन्या दी, किन्तु महाराज वही पधार कर मेरी कन्या के साथ विवाह करे ! राजा ने स्वीकार कर लिया। ज्योतिषी के दिए हुए लग्न मे राजा विवाह करने के लिए चला और उस गाँव श्वसुर के घर पहुँचा। देशाचार के कारण वर और वधू के बीच मे पडदा डाल दिया गया। अजलि मे खील (लाजा, जँवार की फूली) भर कर ज्यो ही दोनो पडदा हटा कर एक दूसरे के

शिर पर लाजा विखेरने लगे। फिर हथलेवा होने वाला ही था, राजा ने उसकी ओर देखा त्यो ही वह भयङ्कर रूप वाली राक्षसी सी दिखाई पडी। और वह लाजा (जँवार की फूली) खीले भी कठोर पाषाण के कंकड के समान शिर मे लगने लगी। राजा ने भी—यह क्या आफत है—विचार करते हुए वहाँ से पलायन कर दिया। वह भी पीछे लगी हुई पत्थर के टुकडे वरसाती हुई चलने लगी। राजा वहाँ से दौडता हुआ अपनी जन्म-भूमि नाग-ह्रद मे प्रविष्ट हुआ और वही पर मर गया। आज भी वह पीठजा देवी प्रतोली के वाहर अपने मन्दिर मे स्थित है।

शूद्रक भी क्रमश कालिका देवी द्वारा अजारूप वन कर वापी मे प्रविष्ट हो करुण शब्द से ठगा गया। वह उसे निकालने के लिए वापो मे गया और द्वार पर उस तलवार के तिरछी गिर जाने से छिन्नाङ्ग होकर पञ्चत्व प्राप्त हो गया, क्योकि महालक्ष्मी ने वर देते समय "इसो तलवार से तुम्हारा अन्त होगा" कह दिया था।

राजा सातवाहन के स्थान पर शक्तिकुमार का राज्याभिषेक हुआ, तब से लेकर आज तक कोई राजा प्रतिष्ठान—वीर क्षेत्र मे प्रवेश नही करता।

यहाँ जो कुछ असंभव वातें हैं वे अन्य दर्शन मे कही गई है। इस प्रकार की असगत वातें जो हेतु से सिद्ध नही होती, उन्हे जैन नही मानते।

यह प्रतिष्ठान-कल्प और प्रसगवश संक्षिप्त सातवाहन-चरित्र श्रीजिनप्रभसूरि ने वनाया। इसकी ग्रन्थ सख्या १६६ और ९ अक्षर ऊपर है।

■

३५. चम्पापुरी-कल्प

दुर्नीति को भग करने वाले अंग देश जनपद के भूषणरूप प्रधान तीर्थ चम्पापुरी का कल्प कहता हूँ। यहाँ त्रिभुवन-पूज्य बारहवे तीर्थङ्कर श्री वासुपूज्य जिनेश्वर के गर्भावतरण-च्यवन, जन्म, प्रव्रज्या, केवलज्ञान और निर्वाण रूप पाँच कल्याणक हुए हैं।

यही श्री वासुपूज्य जिनेन्द्र के पुत्र मघव राजा की पुत्री लक्ष्मी की कुक्षी से आठ पुत्रो के ऊपर रोहिणी नामक पुत्री उत्पन्न हुई। उसने स्वयवर मे अशोक राजा के कण्ठ मे वरमाला डाली और उसके साथ विवाह कर पट्टरानी हुई। क्रमश. उसके आठ पुत्र और चार पुत्रियाँ हुई। एक दिन श्री वासुपूज्य स्वामी के शिष्य रूप्य-कुम्भ-स्वर्णकुम्भ के मुख से सुखी होने के हेतु भूतपूर्व जन्म मे किये हुए रोहिणी तप को सुन कर उद्यापन विधि से आराधना कर सपरिवार मुक्ति प्रप्त हुई।

यहाँ भूमण्डल के इन्द्र सदृश करकण्डू राजा ने पहिले काद-म्बरी अटवी मे कलिगिरि की उपत्यका मे रहे हुए कुण्ड नामक सरोवर मे श्री पार्श्वनाथ भगवान को छद्मस्थावस्था मे विचरते हुए हस्ति-व्यन्तरानुभाव से कलिकुण्ड तीर्थ रूप से प्रतिष्ठापित किया था।

फिर यहाँ सुभद्रा महासती ने तीन विकट पाषाणमय प्रतो-लियो के वन्द कपाट-सम्पुटो को अपने शील माहात्म्य द्वारा कच्चे सूत-तन्तु-वेष्टित चलनी से कुएँ का जल निकाल कर उससे सिंचित कर उद्घाटित किये थे। चारो मे से एक प्रतोली—"मेरे जैसी अन्य सच्चरित्रा सती हो, उसके उघाडने के लिए वन्द ही

छोड देती हूँ"—कह कर राजा आदि लोगो के समक्ष वन्द ही रहने दी। उस दिन से ले कर चिरकाल पर्यन्त जनता ने उसे वैसो ही वन्द देखी। क्रमश विक्रम सवत् १३६० मे लक्षणावती के सुलतान समसदीन ने शकरपुर दुर्ग के उपयोगी पापाण लेने के लिए उस प्रतोली को गिरा कर कपाट जोडी को भी ले लिया।

यहाँ के दधिवाहन राजा अपनी रानी पद्मावती के साथ उसका दोहद पूर्ण करने के लिए हाथी पर आरूढ़ हो कर अरण्य-विहार करने गये। हाथी के न रुकने पर अरण्य मे राजा वृक्ष की शाखा पकड कर उतर गया। हाथी आगे चला गया और राजा अपने नगर मे आ गया। देवी पद्मावती असमर्थता से उतर न सकी और उस पर चढी हुई अरण्य मे गई। हथिनी से उतर कर क्रमश अरण्य मे ही पुत्र-प्रसव किया, वह करकण्डु नामक राजा हुआ। कलिंग मे पिता के साथ युद्ध करते माता पद्मावती आर्या ने उसे प्रतिषेध किया। क्रमशः महावृषभ की यौवन, वार्द्धक्य अवस्था को देख कर वोधि पा कर करकण्डु प्रत्येकबुद्ध हो कर सिद्धिगति प्राप्त हुए।

यही दधिवाहन राजा की पुत्री चन्दनबाला ने जन्म लिया, जिसने भगवान महावीर स्वामी को कौशाम्बी मे सूप के कोणे मे रहे हुए उडद के वाकुले दे कर पाँच दिन कम छ मासोपवास का पारणा द्रव्य क्षेत्र कालभाव अभिग्रह पूर्ण होने पर कराया।

यहाँ एवं पृष्ठचम्पा मे प्रभु महावीर ने तीन वर्षाकाल विताए, समवशरण हुए।

इसी के पास श्री श्रेणिक राजा के पुत्र अशोकचन्द्र अपर नाम कूणिक महाराजा ने पितृशोकवश राजगृह को त्याग कर चम्पक के चारु पुष्पोसे सुन्दर नवीन राजधानी चम्पा वसाई।

दानवीरो मे दृष्टान्तभूत, पाण्डुकुलमण्डन राजा श्री कर्ण का

राज्य भी यही था। आज भी शृंगार-चतुरिका आदि उनके अवदात स्थान इस नगरी मे है।

यहाँ सम्यग्दृष्टि सुदर्शन सेठ को दधिवाहन राजा की रानी अभया ने सभोगार्थ उपसर्ग किये। राजा के वचनो से मारने के लिए ले जाने पर अपने निर्दोष शील-सम्पत्ति के प्रभाव से आकृष्ट शासनदेवता के सानिध्य से शूली का स्वर्णमय सिहासन हो गया। और तीक्ष्ण तलवार भी सुगन्धित पुष्पमाला हो कर मन को आनन्ददायी बन गई।

भगवान महावीर का अग्रश्रावक कामदेव भी यही हुआ जो अठारह करोड स्वर्ण एव दश हजार गायो वाले छह गोकुलो का स्वामी था। भद्रा का वह पति था। पौषधशाला मे मिथ्यादृष्टि देव द्वारा पिशाच, हाथी, साँप आदि का रूप करके उपसर्ग करने पर भी अक्षुब्ध रहा। समवशरण मे भगवान ने स्वय इनकी प्रशसा की।

यही विचरते हुए चौदह पूर्वधर श्री शय्यभवसूरि ने राजगृह से आये हुए अपने मनक नामक पुत्र को दीक्षित करके श्रुतोपयोग से उसकी छ मास आयु अवशिष्ट ज्ञात कर उसके अध्ययनार्थ पूर्वो से दशवैकालिक सूत्र की रचना की। उनमे आत्म-प्रवाद से छज्जीवणिया, कर्म-प्रवाद पूर्व से पिण्डैषणा, सत्य-प्रवाद पूर्व से वाक्यशुद्धि एव अवशिष्ट अध्ययन प्रत्याख्यान पूर्व की तीसरी वस्तु से लिए।

यहाँ के निवासी कुमारनन्दी स्वर्णकार ने अपने विभव वैभव के मद से अभिभूत हो तीव्र ज्वाला मे प्रविष्ट हो पचशैलाधिपत्य प्राप्त किया। पूर्व भव के मित्र से बोध पा कर गोशीर्षचन्दन-मय जीवित स्वामी की अलकारविभूषित देवाधिदेव श्री महावीर स्वामी की प्रतिमा निर्मित की।

यहाँ के पूर्ण भद्र चैत्य मे श्री वीर प्रभु ने कहा—जो अष्टापद पर आरोहण करता है वह उसी भव मे मोक्षगामी है।

यहाँ श्रो वीर प्रभु का उपासक पालित्त नामक वणिक हुआ। उसके समुद्र यात्रा मे जन्मा हुआ समुद्रपाल नामक पुत्र था जिसने किसी अपराधी को मारने के लिए ले जाते देख कर प्रतिवोधित मोक्ष प्राप्त किया।

यहाँ के सुनन्द श्रावक ने साधुओ के मल-दुर्गन्ध की निन्दा की और मर कर कौशाम्वी मे श्रेष्ठि पुत्र हुआ, व्रत ग्रहण किया। दुर्गन्ध उदीरण होने पर कायोत्सर्ग ध्यान द्वारा देवता को आकृष्ट कर अपने अग को सुगन्धित कराया।

यहाँ कौशिकार्य शिष्य अगर्षि रुद्रक ने अभ्याख्यान सविधान के और सुजात प्रियगु आदि कई सविधानो को वनाया।

इत्यादि नाना प्रकार के संविधानक रत्न प्रकटित नाना वृत्त-निधान-घटनाओ वाली यह नगरी है। इस नगरी की प्राकार-भित्ति को प्रिय सखी की भाँति प्रतिक्षण सर्वाङ्ग आलिङ्गन करती पवित्र घन रसपूरितान्तर वाली उत्तम नदी है।

उत्तमोत्तम नर-नारी रूपी मुक्तामणि को प्रसव करने मे शुक्ति के सदृश यह नगरी विविध अद्भुत वस्तु शालिनी मालिनी जयवन्त है।

भगवान वासुपूज्य स्वामी की जन्मभूमि को विद्वान लोग उनकी भक्तिपुरस्सर स्तवना करते हैं। श्री जिनप्रभ सूरि ने चम्पा नगरी का यह कल्प कहा।

श्री चम्पापुरी का कल्प समाप्त हुआ। इसकी ग्रन्थ-श्लोक सख्या ४७ है।

■

३६. पाटलिपुत्रनगर-कल्प

श्री नेमिनाथ भगवान को नमस्कार करके अनेक पुरुष-रत्नो के जन्म से पवित्रित पाटलिपुत्र नामक नगर का कल्प प्रस्तुत करता हूँ।

पूर्वकाल मे महाराजा श्रेणिक का निधन होने पर उसके पुत्र कूणिक ने पितृशोक से चम्पापुरी नई वसाई। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र उदायि चम्पा की राजगद्दी पर वैठा। वह भी अपने पिता के क्रीडास्थान-राजसभा-शयनागार-भोजनालय आदि स्थानो को देखकर अत्यन्त शोकाकुल हो जाता था। तव अमात्य लोगो की अनुमति से नया नगर वसाने के लिए नैमित्तिक लोगो को स्थान-गवेषणार्थ आदेश दिया। वे सर्वत्र उन स्थानो को देखते हुए गगा-तट पर गये। वहाँ पाडल कुसुम वाले पाटलि वृक्ष को देखकर उसकी शोभा से चमत्कृत हुए। उसकी शाखा पर वैठे हुए चाषपक्षी के मुँह मे कीटकादि जन्तु स्वयमेव आकर गिरते देखकर सोचा—अहो! इस चाप पक्षी के मुँह मे स्वय कीडे आकर गिर रहे हैं तो इस स्थान पर नगर बसाने से राजा को स्वय लक्ष्मी प्राप्त होगी! उन्होने राजा से विज्ञप्ति की। वह भी अत्यन्त प्रसन्न हुआ। वहाँ एक वृद्ध नैमित्तिक ने कहा—देव! यह पाडल वृक्ष साधारण नही है! पूर्वकाल मे ज्ञानियो ने कहा है कि—

"महामुनि की खोपडी मे उत्पन्न यह पवित्र पाटल वृक्ष है, विशेष इसका मूल जीव एकावत्तारी है।"

राजा ने कहा—वे महामुनि कौन? नैमित्तिक ने कहा—देव! सुनिये! उत्तर मथुरा मे रहने वाला देवदत्त नामक वणिक पुत्र एक वार पर्यटन करने के लिए दक्षिण मथुरा गया। वहाँ जयसिंह

नामक वणिक पुत्र के साथ उसकी मित्रता हो गई। वह एक बार उसके घर भोजन करने गया तो थाल मे भोजन परोस कर पखा झलकर हवा करती हुई उसकी अन्निका नामक बहिन के सौन्दर्य को देखकर उसमे अनुरक्त हो गया और दूसरे दिन चरो को भेजकर जयसिंह से अन्निका की याचना की। उसने कहा—मैं अपनी बहिन को उसे दूँगा जो मेरे घर से दूर न हो और जब तक उसके सन्तान जन्मे मैं उन्हे प्रतिदिन देख सकूँ। इस लिए तब तक यदि वह मेरे घर रहे तो मै उसे अपनी बहिन दूँगा। देवदत्त के स्वीकार करने पर शुभ मुहूर्त्त मे उनका विवाह कर दिया।

देवदत्त उसके साथ भोग भोगते हुए वहाँ रहने लगा। एक दिन उसके पास अपने माता-पिता का पत्र आया, जिसे पढकर उसके नेत्रो मे अश्रु-वर्षा होने लगी। कारण पूछने पर भी न बोला तो अन्निका ने स्वयं पत्र लेकर पढा। उसमे माता पिता ने लिखा था—बेटा! हम दोनो वृद्ध हो गए, मृत्यु निकट है, यदि हमे जीते देखना चाहते हो तो शीघ्र आ जाना! उसने पति को आश्वासन देकर अपने भाई को हठ छोडने की प्रार्थना की। और पति के साथ उत्तर मथुरा को जाते उस सगर्भा ने पुत्र जन्म दिया। देवदत्त के "इसका नामकरण पिताजी करेंगे" ऐसा कहने पर परिजन लोग उस बालक को 'अन्निका पुत्र' नाम से पुकारने लगे। क्रमश देवदत्त अपने घर पहुँचा। माता पिता को नमस्कार कर उसने उन्हे पुत्र को अर्पण किया। उसका नाम सधीरण रखा तो भी अन्निकापुत्र नाम ही प्रसिद्ध हुआ।

अन्निकापुत्र ने बडे होकर तरुणावस्था मे भोगो को तृणवत् छोडकर जयसिंहाचार्य के पास दीक्षा ग्रहण कर ली और गीतार्थ होकर आचार्य पद प्राप्त किया।

एक बार वृद्धावस्था मे विचरते हुए अन्निकापुत्राचार्य पुष्पभद्रपुर पहुचे। वहाँ पुष्पकेतु राजा और पुष्पवती रानी के पुष्प-

चूल, पुष्पचूला नामक पुत्र-पुत्री युगल थे। वे दोनो साथ-साथ बढते-खेलते परस्पर अत्यन्त प्रीति वाले हो गए। राजा ने देखा इन दोनो का वियोग कराने से निश्चय ही ये जीवित नही रहेगे। और मै भी इनका विरह नही सहूँगा, अत इनका परस्पर विवाह कर दूँ तो अच्छा हो, यह विचार कर मत्री-मित्र और नागरिको से उसने छलपूर्वक पूछा—यदि अन्त पुरमे रत्न उत्पन्न हो तो उसका स्वामी कौन ? उन लोगो ने कहा—

देव ! अन्त पुर का तो कहना ही -या ? जिस देश मे रत्न उत्पन्न हो उसे राजा स्वेच्छानुसार विनियुक्त करे, इसमे किसी को क्या आपत्ति है।

यह सुनकर राजा ने अपना अभिप्राय कहा। महारानी के मना करने पर भी राजा ने उनका सबध घटित कर दिया। दोनो पति-पत्नी सासारिक भोग करने लगे। रानी ने पति के अपमान से विरक्त होकर व्रत ग्रहण किया और स्वर्ग मे देव हो गई।

राजा पुष्पकेतु का जीवन अध्याय शेष होने पर पुष्पचूल राजा हुआ। देव ने अवधिज्ञान प्रयोग से उसका-अकृत्य जान कर पुष्पचूला को स्वप्न मे नरक और वहा के दुख दिखलाये। उससे प्रबुद्ध-होकर भय से पति को सारा निवेदन किया, उसने शाति के उपाय किये। वह देव प्रति रात्रि मे उसे- नरक दिखाता था। राजा ने समस्त तीर्थिक लोगो को बुलाकर पूछा—नरक कैसे होते है ? किसी ने गर्भवास को, किसी ने कारावास को, किसी ने दारिद्रय को और किसी ने परतन्त्रता को नरक बतलाया। रानी उनके विसवादी वचनो को सुनकर मुख मोडकर बैठ गई।

राजा ने अन्निकापुत्र आचार्य को बुलाकर उन्हे पूछा। उन्होने जैसा रानी ने देखा था, वैसा ही नरक स्वरूप बतलाया। रानी ने कहा—भगवन् ! आपने भी क्या स्वप्न देखा है, अन्यथा

यह कैसे जानते हैं ? सूरि महाराज ने कहा—भद्रे । जिनागमो से सब कुछ मालूम होता है। पुष्पचूला ने कहा—भगवन् ! किस कर्म से नरक प्राप्त होते हैं ? गुरु महाराज ने कहा—भद्रे ! महा आरंभ-परिग्रह और गुरुविरोधी होकर पञ्चेन्द्रियवध—मासाहार से प्राणियोका नरक पतन होता है।

क्रमश देव ने उसे स्वप्न मे स्वर्ग दिखाये। राजा ने उसी प्रकार पाखण्डियो से पूछा और उनके परस्पर-विरोधी विरोधी वचन पाकर उन्हे विसर्जित कर आचार्य महाराज से स्वर्ग का स्वरूप पूछा। उन्होने यथातथ्य कहा और रानी के पूछने पर स्वर्ग-प्राप्ति का कारण सम्यक्त्व मूल गृहस्थ और यति धर्म बतलाया। लघुकर्मा रानी प्रतिबोध पाई। उसने राजा से दीक्षा के लिए अनुज्ञा माँगी। उसने कहा—मेरे घर से ही भिक्षा ग्रहण करो तो दीक्षा लो। उसने राजा के वचनो को स्वीकार कर आचार्य महाराज के पास उत्सवपूर्वक शिष्यत्व स्वीकार किया और गीतार्थ बनी।

एक बार आचार्य महाराज ने श्रुतोपयोग से भावी दुर्भिक्ष ज्ञात कर गच्छवासी साधुओ को देशान्तर भेज दिया और स्वय जघा बल क्षीण होने से वही रहे। पुष्पचूला साध्वी अन्त पुर से आहार-पानी लाकर गुरु महाराज को देती थी।

गुरु-शुश्रुषा भाव प्रकर्ष से क्रमश उसने क्षपकश्रेणि आरोहण कर केवलज्ञान उत्पन्न किया, तो भी वह गुरु महाराज के वैयावृत्य से निवृत्त नही हुई। गुरु महाराज ने भी जहाँ तक उसका केवली होना नही जाना, वहाँ तक उसका पूर्व प्रयुक्त विनय चलता ही रहा। गुरु महाराज की जब जैसी रुचि होती, वह उसी प्रकार का अन्नादि लाकर देती थी। एक बार वर्षा के समय भी वह आहार ले आई। गुरु महाराज ने कहा—वत्से ! तुम श्रुतज्ञा होकर वर्षा मे कैसे आहार लाई ? उसने कहा—भगवन् ! जहाँ अचित अप्काय

था वही से लाई हूँ, अत. प्रायश्चित्त का कोई प्रश्न नही। गुरु महाराज ने कहा—छद्मस्थ होकर कैसे जाना? उसने कहा—मुझे कैवल्य है। तब मैंने केवली की आशातना की, मेरा दुष्कृत्य मिथ्या हो। ऐसा कहते हुए गच्छाधिप ने पूछा कि—मैं सिद्ध हूँगा कि नही? केवली ने कहा—अधृति न करे, आपको गगा पार होते समय केवलज्ञान होगा। तब गगा पार होने के लिए सूरिजी नौका मे बैठे। वे जिधर-जिधर बैठते उधर ही नौका डूबने लगती, फिर बीच में बैठने से सारी नौका डूबने लगी। लोगो ने सूरिजी को नदी में फेंक दिया। दुहागिन बना देने से वैर से पूर्व भव की पत्नी जो व्यन्तरी हुई थी—ने जल मे शूली पर रख लिया। शूली पर भी उन्होने "मेरे से अप्काय जीवो की विराधना हो रही है"—इस आत्म-पोडा से क्षपक श्रेणी आरोहण कर अन्त-कृत केवली होकर सिद्धि प्राप्त की। निकटवर्त्ती देवो ने उनकी निर्वाण महिमा की। अत वह तीर्थ "प्रयाग" नाम से जगत्प्रसिद्ध हुआ। जहाँ प्रकृष्ट याग-पूजा हो वह प्रयाग, यह अन्वयार्थ है। शूली पिरोने की गतानुगतिकता से पर दर्शनी लोग आज भी अपने अग पर करोत दिलाते हैं। वहाँ के वट वृक्ष को तुर्कों द्वारा काट डालने पर भी बार-बार उग जाता है।

सूरिजी की खोपडी के दो टुकडे होने पर भी जल की लहरें उन्हे किनारे ले गई। सीप की भाँति इधर-उधर तैरते नदी तट के किसी गुप्त विषम प्रदेश मे अटक कर रह गई। उस खोपडी मे कभी पाटल वृक्ष का बीज गिर कर ऊगा। और उसे भेद कर गर्दन के दक्षिण ओर यह विशाल पाटल वृक्ष हो गया। इस पाटल वृक्ष का प्रभाव चाप पक्षी पर भी है, अत यहाँ नगर बसाइये। शिवा के शब्द पर्यन्त सूत्र दीजिये। राजा के आदेश से नैमित्तिको ने पाटल वृक्ष के पूर्व से पश्चिम को, फिर उत्तर को

फिर पुन पूर्व को और फिर दक्षिण को शिवा शब्दावधि जाने पर सूत्र डाल दिया।

इस प्रकार चौकोर नगर का सन्निवेश हो गया। उस अकन किये हुए प्रदेश मे राजा ने नगर वसाया। वही पाटल वृक्ष के नाम से पाटलीपुत्र नगर और विविध कुसुम वाहुल्य से कुसुमपुर नाम भी रूढ हुआ। उसमे राजा ने नेमिनाथ भगवान का चैत्य वनवाया। गजशाला, अश्वशाला, रथशाला, प्रासाद, सौध, प्राकार, गोपुर, पण्यशाला, सत्रागार, पौषधशाला से रम्य उस नगर मे उदायि राजा ने चिरकाल तक जैनधर्म पालन करते हुए राज्य किया।

हत्यारे (छद्मवेशी साधु) ने पौषध मे रहे हुए राजा उदायि को स्वर्ग का अतिथि वना दिया, तब वहाँ नापित-गणिका का पुत्र नन्द, भगवान महावीर के निर्वाण के साठ वर्ष बीतने पर राजा हुआ। उसके वंश मे सात नन्द राजा हुए फिर नौवे नन्द-राज के परमार्हत् कल्पक का वशज शकडाल मत्री हुआ। उसके दो पुत्र स्थूलभद्र और श्रीयक थे एव यक्षा, यक्षदत्ता, भूता, भूतदत्ता, एणा, रेणा, वेणा नामक सात पुत्रियाँ थी जो क्रमशः एक से सात वार श्रुतपाठिनी स्मृति वाली हुई।

उसी नगर मे कोशा वेश्या और उसकी बहिन उपकोशा भी हुई।

वही चाणक्य मत्री ने नन्द को मूल से उखाड कर मौर्यवशी चन्द्रगुप्त को स्थापित किया। उसी के वश मे विन्दुसार अशोकश्री, कुणाल और उसका पुत्र त्रिखण्ड भरताधिप परमार्हत, अनार्य देशो मे भी श्रमण विहार प्रवर्त्तन करने वाला महाराजा संप्रति हुआ।

समस्त कला-कलापज्ञ मूलदेव, महा धनिक सार्थवाह अचल, गणिकारत्न देवदत्ता भी आगे वही हुए।

कौभीषण गोत्र के उमास्वाति वाचक,—जो पाँच सौ संस्कृत प्रकरणो की रचना से प्रसिद्ध हैं—ने यही तत्त्वार्थाधिगम की सभाष्य रचना की। विद्वानो के परितोष के लिए वहाँ चौरासी वादशालाएँ बनी हुई थी।

वहाँ ऊँची तरगो से गगनाङ्गणोत्सगित महानदी गगा प्रवाहित है। उसके उत्तर दिशा मे निकट ही विपुल बालुका स्थल है जहाँ पर चढकर कल्की और प्रातिपदाचार्य प्रमुख संघ का सलिल प्लवन से निस्तरण हुआ।

वही कल्की राजा व उसके वंशज धर्मदत्त, जितशत्रु, मेघघोषादि होगे। वही नद राजा के ९९ द्रव्य कोटि, पाँच स्तूप अन्तर्निहित विद्यमान हैं। जिन्हे लक्षणावती का सुलतान धन प्राप्त करने की इच्छा से उन-उन उपक्रमो को कर लडकर नष्ट हो गया ऐसा जाना गया है।

यही श्री भद्रबाहु, महागिरि, सुहस्ति, वज्रस्वामी आदि युगप्रधान विचरे और प्रातिपदाचार्यादि विचरेगे।

यही महाधनिक धन सेठ की पुत्री रुक्मिणी श्री वज्रस्वामी को वरण करना चाहती थी जिसे निर्लोभ-चूडामणि उन आचार्य भगवान ने प्रतिबोध दे प्रव्रजित किया।

यही महर्षि सुदर्शन सेठ की अभया रानी ने व्यन्तरी होकर उपसर्ग किये, पर वे अक्षुब्ध रहे।

यही स्थूलिभद्र महामुनि ने षड्रसयुक्त आहार करते हुए कोशा की चित्रशाला मे मदन का मद-मर्दन कर वर्षा काल चातुर्मास किया। सिंहगुफावासी मुनि भी उनकी स्पर्द्धा से वही आया और कोशा ने उससे लायी गई रत्नकम्बल को नाले मे फेक कर प्रतिबोध दे पुन उसे चारित्र लक्ष्मी अङ्गीकार कराई।

वही बारहवर्षी दुष्काल पडने पर गच्छ को देशान्तर भेजने

पर श्री सुस्थिताचार्य के दो क्षुल्लक शिष्यो ने आँखो मे अदृश्याञ्जन लगा कर चन्द्रगुप्त राजा के साथ कितने ही दिनो तक भोजन किया। उसके बाद गुरु के प्रत्युपलभादि से विष्णुगुप्त की भाँति उनका निर्वाह किया।

वहाँ श्री वज्रस्वामी ने नगर के नर-नारियो के सक्षोभ से रक्षणार्थ पहिले दिन साधारण रूप बनाया। दूसरे दिन देशना-रस-मुग्ध लोगो से—अहो भगवन् का रूप गुणानुरूप नही है—ऐसा सुनकर उन अनेक लब्धि-सम्पन्न आचार्यमहाराज ने अपना सहज अद्वितीय रूप बनाकर स्वर्णमय सहस्र दल पर बैठकर देशना दी जिससे राजा आदि जनता को प्रमुदित किया।

उसी नगर मे सप्रभावातिशय वाली मातृदेवता थी, जिसके प्रभाव से उस नगर को दूसरो के लिए हठ करके भी लेना अशक्य था। चाणक्य के वचन से उसे उखाड देने पर फिर जनता ने मातृमण्डल मे चन्द्रगुप्त और पर्वतक को पकड लिया।

इस प्रकार अनेक संविधान निधान उस नगर मे अठारह विद्या, स्मृति-पुराण, भरत वात्स्यायन और चाणक्य रूप त्रिरत्न मत्र, यंत्र-तत्र विद्या मे, रसवाद, धातु-निधिवाद, अञ्जन-गुटिका, पाद प्रलेप, रत्नपरीक्षा, वास्तुविद्या, पुरुष-स्त्री, गज, अश्व, वृषभादि लक्षण, इन्द्रजालादि ग्रन्थो मे, काव्यो मे निपुणता वाले और सुबह उठते ही नाम कीर्त्तन करने योग्य पुरुष रहते थे।

आर्यरक्षित भी इसी स्थान पर चौदह विद्याओ का अध्ययन कर के दशपुर आये।

यहाँ ऐसे धनाढ्य निवास करते थे कि जो हजार योजन जाने मे जितने हाथी के पद-चिह्न हो उन्हे प्रत्येक को हजार सोनैयो से परिपूर्ण कर सकते थे। और तिलो के आढक (माप) बोने पर ऊगने से जितने तिल फले उतनी हजार स्वर्ण-मुद्राएँ घर

मे थी। दूसरे धनाढ्य ऐसे थे जिन के घर एक दिन के उत्पन्न गाय के मक्खन से मेघ वृष्टि प्रवहित पहाडी नदी के जल पूर को बाँध सकते थे।

एक दिन मे जन्मे हुए नव किशोरो के स्कन्ध केशो द्वारा पाटलिपुत्र नगर को चारो ओर से वीटा जा सकता था।

किसी की हवेली मे दो प्रकार के शालि रत्न भरे रहते थे जो एक शालि बीज को बोने पर भिन्न-भिन्न शालिबीज उत्पन्न होते थे। दूसरा गर्दभिका नामक शालि-धान्य था जो बार-बार काटने पर पुन पुन उगता था।

गौड देश के भूषण पाटलिपुत्र-कल्प की रचना आगम मे श्री जिनप्रभ सूरि ने की।

इसकी ग्रन्थ-सख्या १२५ और १९ अक्षर ऊपर है।

■

३७. श्रावस्तीनगरी-कल्प

श्री सम्भवनाथ जिनेश्वर को नमस्कार कर के दु खरूपी सरिता को तरने मे नौका के सदृश सकल सुखो को उत्पन्न करने वाली श्रावस्ती नगरी का सक्षिप्त कल्प कीर्त्तन करता हूँ।

अगण्य गुणगण वाले इसी दक्षिणार्द्ध भारतवर्ष मे कुणाला (जनपद) मे श्रावस्ती नामक नगरी वर्त्तमान काल मे 'महेठ' नाम से प्रसिद्ध-रूढ है। वहाँ आज भी गहन घन वन के मध्य स्थित श्री

सम्भवनाथ प्रतिमा विभूषित गगनचुम्वी शिखर और पार्श्व स्थित जिनबिम्बमण्डित देवकुलिका से अलकृत, प्राकारपरिवृत जिनालय विद्यमान है। उस चैत्य के द्वार के अनतिदूर वल्लि उल्लसित अतुल्य पल्लवो की स्निग्ध छाया वाले वडी-वडी शाखाओ से अभिराम रक्त अशोक के वृक्ष दिखाई देते हैं। उस जिनालय की प्रतोली के कपाट सपुट माणिभद्र यक्ष के प्रभाव से सूर्यास्त होते ही स्वयमेव वन्द हो जाते थे और सूर्योदय होते ही अपने आप खुल जाते थे।

एक वार दुर्ललित काल के प्रभाव से अलाउद्दीन सुलतान के हब्वस नामक मल्लिक ने वहराइच नगर से आ कर प्राकार-दीवालें, कपाट और कतिपय प्रतिमाओ को भी भग्न कर डाला। दूषम काल मे अधिष्ठायक देव भी मन्द प्रभाव वाले हो जाते हैं। तथा यात्री-सघ के आने पर न्हवण-महोत्सव के समय उसी चैत्य के शिखर पर एक चित्रक—चीता आ कर वैठ जाता है जो किसी को भी भय नही करता। मगल प्रदीप होने पर स्वस्थान चला जाता है।

इस नगरी मे वौद्धायतन है जहाँ समुद्रवशीय करावल्ल नरेन्द्र के कुलोत्पन्न राजा लोग वौद्ध भक्त हैं। वे आज भी अपने देव के समक्ष अलकृत और विभूषित पलाण किया हुआ महातुरग चढाते हैं। स्वसम्पदा से भगवान वुद्ध ने यही महाप्रभावी जागुली विद्या प्रकाशित की थी।

यहाँ नाना प्रकार के चावल उत्पन्न होते है। उन सब चावलो की जाति के एक-एक कण यदि एक वडे कटोरे मे डाले जाँय तो वह शिखा पर्यन्त भर जाता है।

यहाँ भगवान सम्भवनाथ स्वामी के च्यवन-जन्म-दीक्षा और केवलज्ञान कल्याणक हुए, जिन्हे सुरासुर नर भुवन मन रजन करने वाले मनाये गये।

कौशाम्बीपुरी मे उत्पन्न जितशत्रु नृपसचिव काश्यप पुत्र यक्षा कुक्षी सम्भूत कपिल महर्षि हुए। पिता के वियोग होने पर इसी नगरी मे पिता के मित्र इन्द्रदत्त उपाध्याय के पास विद्याध्ययनार्थ आये और शालिभद्र सेठ की दासी के वचनो से दो मासा सोने के लिए याचना करते क्रमश स्वयं बुद्ध हुए। एव पाच सौ चोरो को प्रतिबोध दे कर सिद्ध हुए।

यही पाँच सौ श्रमण और एक हजार आर्याओ से परिवृत प्रथम निह्नव जमालि तिन्दुग उद्यान मे रहे। कुम्भकार ढँक ने पहले अपनी शालामे स्थित भगवान की पुत्री प्रियदर्शना साध्वी को साडी के एक प्रदेश मे अगार छुआ कर भगवान महावीर के वाक्य "कयमाणे कडे" को मान्य कराया। उसी ने सव साधु-साध्वियो को प्रतिवोध दे कर स्वामी के पास भेजा, एक जमालि ही विप्रतिपन्न रहा।

यही तिन्दुक उद्यान मे केशीकुमार श्रमण के पास गणधर भगवान गौतम स्वामी ने कोष्टक उद्यान से आ कर परस्पर सवाद किया और पचयाम धर्म स्वीकार कराया।

भगवान महावीर यही एक वर्षाकाल विविध खण्ड-प्रतिमा धारण कर रहे। शक्रेन्द्र ने पूजा की, विचित्र प्रकार के तप किये।

यहाँ जितशत्रु-धारिणी के पुत्र स्कन्दकाचार्य उत्पन्न हुए जिन्हे कुम्भकारकड नगर मे पालक ने पाँच सौ शिष्यो सहित घाणी में पिला दिया था।

यही जितशत्रु राजा का पुत्र भद्र प्रवजित हो कर प्रतिमा धारण कर विचरते हुए शत्रु-राज्य मे गया और उसे चोर समझ कर राज-पुरुषो ने पकड कर उसके अग-छेदन कर क्षार देने के लिए कठोर दर्भ से वीट दिया। वे मुक्त और सिद्ध हुए।

राजगृहादि की भाँति इस नगरी मे भी ब्रह्मदत्त का परिभ्रमण हुआ था।

यही अजितसेनाचार्य का शिष्य क्षुल्लककुमार जननी-महत्तरा, आचार्य और उपाध्याय के कथन से बारह-बारह वर्ष द्रव्य श्रमणत्व मे रहा। नाटक देखते हुए "सुट्ठु गाइय सुट्ठु वाइय" इत्यादि गीतिका सुन कर युवराज, सार्थवाह पत्नी और मत्री के साथ प्रतिबोधप्राप्त हुआ।

इस प्रकार अनेक सविधानक रत्नो की उत्पत्तिरूप यह भूमि रोहणाचल जैसी है। जिनप्रवचन की भक्ति से जिनप्रभसूरि जी ऐसा कहते है कि श्रावस्ती महातीर्थ का यह कल्प विद्वान लोग पढे।

श्रावस्ती नगरी का कल्प समाप्त हुआ। इसकी ग्रथ-सख्या ४२ है।

•

३८. वाराणसीनगरी-कल्प

तत्त्व बतलाने वाले और सम्पूर्ण विघ्नो को दूर करने वाले श्री सुपार्श्व और श्री पार्श्वनाथ भगवान को नमस्कार करके उत्तम कल्पनाओ से भरा हुआ वाराणसी तीर्थ-रत्न का कल्प कहता हू।

इसी दक्षिणार्द्ध भरत के मध्य खण्ड मे काशी जनपद के अलङ्कारस्वरूप उत्तरवाहिनी त्रिदशवाहिनी—गगा से अलकृत धन-कनक-रत्नो से समृद्ध वाराणसी नामक नगरी अद्भुत गौरव की निधान है। वरणा और असि नाम की दोनो ही नदियाँ यहाँ गगा मे आकर मिलने से वाराणसी नाम निरुक्ति से प्रसिद्ध है।

यहाँ पर वल नामक मातग ऋपि अमृतगंगा के तीर पर जन्मे और तिन्दुक उद्यान मे रहे। उन्होने गण्डी तिन्दुक यक्ष को अपने गुण गणो से आकृष्टहृदय वनाया। कौशलिक राजा की पुत्री भद्रा ने मलक्लिन्न ऋषि को देख कर उन पर थूक दिया। तदनन्तर उसी यक्ष ने मुनि के शरीर मे प्रविष्ट होकर उसके साथ विवाह किया। मुनि ने उसे छोड दिया तब रुद्रदेव ने उसे यज्ञ-पत्नी वनाया। मासक्षमण के पारणे के दिन भिक्षार्थ आये हुए मुनि की ब्राह्मणो ने हँसी उडाई और कदर्थना भी की। यह देख कर भद्रा ने उन्हे पहचान लिया और ब्राह्मणो को बोध दिया। ब्राह्मणो ने क्षमायाचना कर भोजनादि प्रदान किया। देवताओ ने गन्धोदकवृष्टि, पुष्पवृष्टि, दुन्दुभिवादन और वसुधारा वृष्टि की।

यहाँ पर—

वाणारसी पकोट्ठए पासे गोवालि भद्दसेणेय।
णदसिरी पउमदह रायगिहे सेणिए वीरे ॥१॥
वाराणसीय नगरी अणगार धम्मघोस-धम्मजसे;
मासस्सय पारणए गोउल गगाय अणुकम्पा ॥२॥

[भावार्थ—वाराणसी के कोष्टक चैत्य मे पार्श्वनाथ भगवान और गोपाली आर्या के पास भद्रसेन की पुत्री नन्दश्री दीक्षित हो पद्मद्रह मे उत्पन्न हुई, राजगृह मे वीर प्रभु ने श्रेणिक को कहा।

वाराणसी नगरी मे अणगार धर्मघोष-धर्मयश को मासक्षमण के पारणे मे देव ने अनुकम्पा से गगापार गोकुल दिखाया।]

आवश्यक-नियुक्ति मे इसके दो सविधान है। यत —

१—इसी नगरी मे भद्रसेन नामक जीर्ण सेठ था। उसकी भार्या नन्दा थी। उनकी पुत्री नन्दश्री विधवा थी। एक वार यहाँ के कोष्टक चैत्य मे पार्श्वनाथ स्वामी समवसरे। नन्दश्री ने

प्रव्रज्या ली। गोपाली आर्या को शिष्या रूपमे समर्पित की। वह पहले तो उग्र विहार करती थी, पीछे शिथिल होकर हाथ-पाँव धोने लगी। साध्वियो के मना करने पर अलग वसति मे रहने लगी। वह साध्वी बिना आलोयणा के मर के क्षुल्ल हिमवत के पद्मद्रह मे देवगणिका श्रीदेवी हुई। वह भगवान महावीर के राजगृह आने पर समवशरण मे नाट्य विधि प्रदर्शित करने गई। अन्यत्र ऐसा भी कहा है कि उसने हथिणी रूप मे वात-निसर्ग किया, श्रेणिक ने उसका स्वरूप पूछा, भगवान ने उसकी पूर्व भव की अवसन्नता का वृत्तान्त बतलाया।

२—इसी नगरी मे धर्मघोष—धर्मयश नामक दो अणगार वर्पाकाल-चातुर्मास रहे। वे मासक्षमण करते थे। एक बार चौथे पारणे में तीसरे प्रहर मे विहार के लिए प्रस्थान कर सूर्यताप से आर्त्त प्यासे गगा पार होते हुए मन से भी जल पीने की अनेषणीय होने से इच्छा नही की। देवता ने उनके गुणो से आकृष्ट हो गोकुल की विकुर्वणा की और गगा पार होने पर दही आदि के लिए निमन्त्रित किया। उन ज्ञानियो ने उपयोग देकर यथार्थत' देवमाया जान कर प्रतिषेध कर दिया। देव ने उनके नगर की ओर जाते समय बादल विकुर्वण किये। उन्होने आर्द्रभूमि मे शीतल वायु वहते चल कर गाँव पहुच कर शुद्ध आहार लिया।

श्री अयोध्या मे इक्ष्वाकुवशी महानरेन्द्र त्रिशकु का पुत्र हरिश्चन्द्र, उशीनर राजा की पुत्री रानी सुतारादेवी और पुत्र रोहिताश्व के साथ चिरकाल सुख अनुभव करते थे। एक बार सौधर्मेन्द्र ने देवसभा मे उनके सत्व को प्रशसा की। उसे अश्रद्धा करते हुए चन्द्रचूड–मणिचूड नामक देव पृथ्वी पर आये। उनमे से एक वनवाराह रूप बनाकर अयोध्या के बाहर शक्रावतार चैत्याश्रम को संरम्भपूर्वक भग करने मे प्रवृत्त हो गया। सिंहासन-

यहाँ सातवें जिनेश्वर श्री सुपार्श्वनाथ ने इक्ष्वाकु-प्रतिष्ठ नरेश्वर की रानी पृथ्वी देवी की कुक्षी मे अवतरित हो जन्म लिया। तीन भुवन के लोगो से वादित यश पटह वाले, स्वस्तिक लाछन विराजित दो सौ धनुष की कचनवर्णी काया वाले प्रभु ने क्रमश राज्य-सुख अनुभव कर सावत्सरिक दान देकर सहस्राम्रवन मे दीक्षा लेकर छद्मस्थ अवस्था मे नौमास विचर कर केवलज्ञान प्राप्त किया और समेत शिखर गिरि पर मुक्त हुए।

तेईसवे तीर्थंकर पार्श्वनाथ इक्ष्वाकु वश के राजा अश्वसेन के पुत्र और वामा देवी की कुक्षी से जन्मे। उनका सर्पलाछन व नौ हाथ का ऊँचा नीलवर्ण वाला शरीर था। उन्होने आश्रमपदोद्यान मे राजकुमार अवस्था मे ही चारित्र लेकर केवलज्ञान प्रकट कर उसी सम्मेत शिखर गिरि पर शैलेसीकरण करके सिद्ध हुए। इन्ही भगवान के कुमारावस्था मे मणिकर्णिका पर पञ्चाग्नि तप करने वाले कमठ ऋषि की भविष्य मे होने वाली विपत्त को जानते हुए भी काष्ठ के अन्दर जलती हुई ज्वालाओ से अधजले सर्प को दिखाकर माता-पिता के कुपथ का भी निरसन कर दिया।

यही काश्यप गोत्रवाले चतुर्वेदी षट्कर्म कर्मठ और समृद्ध युगल भ्राता जयघोप और विजयघोष नामके द्विजश्रेष्ठ थे। एक वार जयघोष गगा मे स्नान करने गया वहाँ पर साँप के द्वारा ग्रसे जाते हुए मेढक को देखा और सर्प को उलल के द्वारा उठाकर भूमि पर पटका हुआ देखा। उलल सर्प को दवा कर वैठा था और सर्प वैसी अवस्था मे भी मेढक का आस्वादन कर रहा था। मेढक चिल्ला रहा था और सर्प भी चीत्कार कर रहा था। इसे देखकर वह प्रतिवोध को प्राप्त हुआ। दीक्षा लेकर क्रमश एक रात्रि की प्रतिमा स्वीकार कर विचरते हुए पुन इसी नगरी मे आया। मास-क्षमण के पारने के दिन यज्ञपाटक मे प्रवेश किया। वहाँ पर भिक्षा

न देने की इच्छा वाले विप्रो ने उन्हे प्रतिषेध किया। तब श्रुत मे कही हुई अभिचर्या का उपदेश देकर भाई और अन्य विप्रो को प्रतिबोध दिया। वैराग्यवान् भाई विजयघोष ने दीक्षा ली, दोनो मोक्ष गए।

यहाँ नन्द नामक नाविक ने तर्पण ग्रहण करने की इच्छा से मुमुक्षु धर्मरुचि की विराधना की। उनके हुकार से भस्म होकर क्रमशः सभा मे गृहकोकिला, अमृतगगा के तीर पर हस और अंजनगिरि पर सिंह के भव पाये। और उन्ही अनगार की तेजो-लेश्या से मर कर इसो नगरी मे ब्राह्मण हुआ, वही मर के फिर राजा हुआ। जातिस्मरण ज्ञान हुआ तव आधा श्लोक वनाया। इसी दिन वही आये हुए उन मुनि के समस्या पूर्ण करने से उन्हे पहचान कर अभय याचना पूर्वक क्षमा माँगी और परम श्रावक हो गया। धर्मरुचि क्रमश सिद्धि को प्राप्त हुए।

वह समस्या यह थी—

> गगाए नाविओ नन्दो सभाए घरकोइलो।
> हसो मयग तीराए सोहो अजण पव्वए॥ १॥
> वाराणसी ए वडुओ राया तत्थेव आयओ।
> ए एसिं घायगो जोउ सो इत्थेव समागओ॥ २॥

[गगा मे नाविक नद, सभागृह मे गृहकोकिला, मयग तीर पर हंस तथा अजन पर्वत्त पर सिंह फिर वाराणसी मे ब्राह्मणपुत्र और वही पर राजा वना। इनका जो घातक वना वह भी यहाँ आ गया]।

इसी नगरी के शत्रु राजा की सेना द्वारा वेष्टित होने पर सवाहन राजा के एक हजार कन्याओ से अधिक होने पर भी रानी के गर्भ मे रहे हुए अंगवीर ने नगरी की रक्षा की।

स्थित राजा हरिश्चन्द्र शूकर के किए हुए उपद्रव को सुनकर वहाँ गया और वाण के प्रहार से उसे मार डाला। उसके सशरीर अन्तर्हित हो जाने पर अनिंद्य चरित्र वाला राजा ज्यो ही उस प्रदेश मे आया त्यो ही अपने वाण से प्रहृत हरिणी को और उसके गलित गर्भ को काँपते हुए देख कर कपिजल और कुन्तल नामक मित्रो के साथ इसका विचार किया। राजा अपने को गर्भहन्ता सोचता हुआ प्रायश्चित लेने के लिए कुलपति के पास आया और नमस्कार कर आशीष ग्रहण कर वैठा। त्यो ही वचना नामक कुलपति-कन्या ने जोर से शोर मचाया और वोली—पिता जी! इस पापी ने मेरी मृगी को मार दिया है। उसके मरने से मेरा और मेरी माता का भी मरण होगा। ऐसा सुनकर कुलपति राजा पर कुपित हो गए। राजा कुलपति के चरणो मे गिरकर वोले-प्रभो! मेरी सारी पृथ्वी ग्रहण करके मुझे इस पाप से मुक्त करे। वचना को भी मरने से निवारणार्थ मे एक लक्ष स्वर्ण मुद्रा दूँगा। उसके मानने पर कौटिल्य ऋषि को साथ लेकर राजा अपने नगर आया फिर वसु-भूति मत्री और मित्र कुन्तल को सारा स्वरूप वतलाकर कोश से लक्ष निष्क मँगाये। तव अंगारक-तापस ने स्मितपूर्वक कहा—हमे समुद्र-मेखलापर्यन्त सारी पृथ्वी दे दी तो फिर हमारी वस्तु ही हमे देते हो, यह कौन सा न्याय है? वसुभुति मत्री कुछ भी वोलने लगा तो कुलपति ने उसे शुक और कुन्तल को शाप देकर श्रृगाल कर दिया, वे वन मे रहने लगे। राजा ने महीने की अवधि माँग कर रोहिताश्व की अगुली पकड कर सुतारा के साथ काशी की ओर चल पडा। क्रमश इस नगर मे पहुँच कर सस्था मे रहा। वहाँ मस्तक पर तृण रखकर वज्रहृदय विप्र के हाथ देवी सुतारा रानी और कुमार को छ हजार स्वर्ण मे वेच दिया। वह खाडना-पीसना आदि गृहकार्य करने लगी। पुत्र भी समिधा, पत्र, पुष्प, फलादि लाने लगा।

राजा के चित्त मे बडी चिन्ता थी। कुलपति स्वर्ण मांगने आ गया। राजा ने उसे छ हजार स्वर्ण दिया। "यह तो थोडा है" कुलपति ने कुपित होकर कहा फिर अगारक ने कहा—पत्नी और पुत्र को किस लिए बेचा ? यहाँ के राजा चन्द्रशेखर से क्यो नही लक्ष स्वर्ण-मुद्रा माँग लेते ?

राजा ने कहा—हमारे कुल मे ऐसा नही होता। डोम के घर मे भी नौकरी करके तुम्हे लक्ष स्वर्ण मुद्रा दूँगा। तव काम करने मे प्रवृत्त होने पर चाण्डाल ने उसे श्मशान रक्षा मे नियुक्त किया। उसके पश्चात् उन देवो ने नगर मे मारि फैला दी। एव राजा के आदेश से मान्त्रिक लोगो ने राक्षसी प्रवाद का आरोप लगा कर सुतारा को मण्डल मे ला कर गधे पर चढाया, शुक की भाँति अग्नि मे कूदने पर अदग्ध रही। श्मशान में वट की शाखा से लटकते पुरुष को तथा तट पर रोती हूई सुन्दरी को देख कर विद्याधर के अपहार का वृत्त सुन कर उन्हे छुडाया और उसके स्थान मे राजा ने स्वय नियुक्त होकर होमकुण्ड मे अपने मास-खण्ड दिये थे। जैसे कुण्ड मे से मुख निकाल कर शृगाल रोया, तापस ने जैसे राजा का व्रण रोहण किया था। और पुष्प ग्रहण करते हुए रोहिताश्व को निर्दय सर्प ने डस लिया था, उसका सस्कार करने जैसे ही रानी लाई उससे कफन माँगा था और जैसे सत्व-परीक्षा के निर्वाह से प्रमुदित देवताओ ने अपना रूप प्रकट किया, पुष्पवृष्टि की, जय जय ध्वनि की। सर्वजनो द्वारा यह सात्विक-शिरोमणि है, ऐसी प्रशसा की गई। और जिस प्रकार वहिर्मुख के मुख से, वराहादि से लगा कर पुष्पवृष्टि पर्यन्त सारी वाते दिव्य-माया विलसित जान कर ज्यो ही चित्त मे चमत्कृत हुआ त्यो ही स्वय को अपनी नगरी अयोध्या की सभा मे सपरिवार सिंहासन पर वैठे देखा। यहाँ रानी और कुमार के विक्रय से

लेकर दिव्यपुष्पवृष्टि पर्यन्त श्री हरिश्चन्द्र राजा का सत्व-कसौटी रूप चरित्र इसी नगरी के अन्दर मनुष्यो को विस्मय करने वाला घटित हुआ।

और जो काशी-माहात्म्य में प्रथम गुणस्थानियो द्वारा कहा है कि—वाराणसी मे कलि का प्रवेश नही होता और यहाँ मरने वाले कीट-पतग-भ्रमर आदि तथा चतुर्विध हत्या करने वाले अनेक पापी मनुष्य भी शिव को प्राप्त करते हैं। ऐसी युक्तिहीन बातो पर हमारे लिए श्रद्धा करना मानना दु शक्य है, फिर कल्प मे कहने के लिए तो उपेक्षणीय ही है।

इस नगरी में परिव्राजको, जटाधरो, योगियो तथा ब्राह्मणादि चारो ही वर्ण मे धातुर्वाद, रसवाद, खन्यवाद, मन्त्रविशारद, शब्दानुशासन-तर्क-अलकार-ज्योतिषचूडामणि निमित्तशास्त्र-साहित्यादि विद्यानिपुण ऐसे अनेक पुरुष हैं जो रसिक मन वालो को प्रसन्न करते हैं। यहाँ सकल कला परिकलन कौतूहल वाले चारो दिशाओ के देशान्तरवासी लोग दिखाई पडते हैं।

वर्त्तमान मे वाराणसी चार भागो मे बँटी हुई देखी जाती है जैसे—देव वाराणसी, जहाँ विश्वनाथ का मन्दिर है जिसमे आज भी जैन चतुर्विशति तीर्थङ्कर पाषाणमय पट्ट पूजा मे रखा हुआ विद्यमान है। दूसरी राजधानी वाराणसी है जहाँ आज कल यवन लोग रहते हैं। तीसरी मदन वाराणसी और चौथी विजय वाराणसी है। लौकिक तीर्थ तो इतने अधिक हैं कि उनकी सख्या भी कौन कर सकता है ? अन्तर्वन में दन्तखात तालाव के निकट श्री पार्श्वनाथ का चैत्य अनेक प्रतिमाओ से विभूषित है। यहाँ तालाबो में निर्मल परिमल से भरे हुए नाना जाति के सुगन्धित कमल भ्रमरसमूहसयुक्त है। और इस नगरी में निर्भय विचरने वाले वानर और मृगधूर्त लोग एकत्र हैं। यहाँ से तीन कोश पर

धर्मेक्षा नामका सन्निवेश है जहाँ अपने ऊँचे शिखरो से गगन को चूमने वाला गौतम बुद्ध का आयतन है। यहाँ से ढाई योजन आगे चन्द्रावती नगरी है, जहाँ पर अखिल भुवनजनो को तुष्ट करने वाले चन्द्रप्रभ भगवान के गर्भावतारादि चार कल्याणक हुए है।

दो भगवान के जन्म और गंगोदक से गौरववती काशी नगरी किसके द्वारा प्रकाशित नही है? अर्थात् सभी ने इसका वर्णन किया है। इस अनल्प समृद्धि वाली वाराणसी का कल्प श्रीमान् जिनप्रभसूरि मुनीन्द्र ने वनाया है।

श्री वाराणसी नगरी का कल्प समाप्त हुआ। इसकी ग्रथसख्या ११३ व २३ अक्षर ऊपर है।

३९. महावीर-गणधर-कल्प

श्री वीर प्रभु के व्राह्मण-वशोत्पन्न ग्यारह गणधरो को नमस्कार करके शास्त्रो के अनुसार उनका कल्प सक्षेप से कहता हूँ। उनके (१) नाम, (२) स्थान, (३) पिता, (४) माता, (५) जन्म-नक्षत्र, (६) गोत्रादि, (७) गृहपर्याय, (८) सशय, (९) व्रतदिवस, (१०) नगर, (११) देश, (१२) काल, (१३) व्रतपरिवार, (१४) छद्मस्थ, (१५) केवलित्व वर्षसख्या, (१६) रूप, (१७) लब्धि (१८) आयुष्य, (१९) मोक्ष स्थान, (२०) तप आदि द्वार वर्णन करता हूँ।

(१) गणधरो के नाम—१ इन्द्रभूति, (२) अग्निभूति, (३)

वायुभूति, (४) व्यक्त, (५) सुधर्मा स्वामी, (६) मण्डित्त, (७) मोरिय-पुत्र, (८) अकम्पित, (९) अचलभ्राता, (१०) मेतार्य और (११) प्रभास।

(२) स्थान—इन्द्रभूति आदि तीन सहोदर मगधदेश के गोव्वर गाँव मे उत्पन्न हुए। व्यक्त और सुधर्मा स्वामी कोल्लाग सन्निवेश मे, मण्डित्त और मोरियपुत्र दोनो मोरिय सन्निवेश मे, अकम्पित्त मिथिला मे, अचलभ्राता कोशला मे, मेतार्य वत्सदेश के तुगिय सन्निवेश मे और प्रभास स्वामी राजगृह मे उत्पन्न हुए।

(३) पिता—तीन सहोदरो के पिता वसुभूत्ति, व्यक्त का धनमित्र, आर्य सुधर्मा का धम्मिल, मण्डित्त का धनदेव, मोरिअ-पुत्र का मोरिय, अकम्पित के पिता देव, अचल भ्राता के वसुदत्त, मेतार्य के दत्त, और प्रभास स्वामी के पिता का नाम बल था।

(४) माता—तीन भ्राताओ की जननी पृथ्वी, व्यक्त की वीरुणी, सुधर्म धी भद्दिला, मण्डित की विजयादेवा एवं मोरिअ-पुत्र की भी वही—क्योकि धन देव के परलोक गत होने से मोरिअ ने उसे सगृहीत किया क्योकि उस देश मे ऐसा होना निर्विरोध था। अकम्पित की जयन्ती, अचलभ्राता की नंदा, मेतार्य की वरुणदेवा और प्रभास की माता अतिभद्र थी।

(५) नक्षत्र—इन्द्रभूति का ज्येष्ठा, अग्निभूति का कृत्तिका, वायुभूति का स्वाति, व्यक्त का श्रवणा, सुधर्मा स्वामी का उत्तरा-फाल्गुनी, पण्डित्त का मघा, मोरिअपुत्र का मृगगिरा, अकम्पित्त का उत्तराषाढा, अचलभ्राता का मृगशिरा, मेतार्य का अश्विनी, प्रभास का पुष्य नक्षत्र था।

(६) गोत्र—तीनो भाई गौतम गोत्रीय, व्यक्त भारद्वाज-गोत्रीय, सुधर्मा स्वामी अग्निवेश्यायन गोत्रीय, मण्डित्त वाशिष्ठ गोत्रीय, मोरिअपुत्र काश्यपगोत्रीय, अकम्पित्त गौतमगोत्रीय,

अचलभ्राता हारीतगोत्रीय, मेतार्य और प्रभास स्वामी कौडिन्य-गोत्रज थे।

(७) गृहस्थ पर्याय —इन्द्रभूति का ५० वर्ष, अग्निभूति का ४६ वर्ष, वायुभूति का ४२ वर्ष, व्यक्त का ५० वर्ष, मण्डित का ५३ वर्ष, मोरियपुत्र का ६५ वर्ष, अकम्पित का ४८ वर्ष, अचल-भ्राता का ४६ वर्ष, मेतार्य का ३६ वर्ष और प्रभास स्वामी का १६ वर्ष था।

(८) सशय—इन्द्रभूति का 'जीव' विषयक सशय भगवान महावीर ने मिटाया। अग्नि भूति का 'कर्म' विपयक, वायुभूति का जीव-शरीर विषयक, व्यक्त का पच महाभूत विषयक, सुधर्मा स्वामी का जैसा यह भव वैसा ही परभव, मण्डित का बन्ध-मोक्ष-विषयक, मोरियपुत्र का देवसम्वन्धी, अकपित का नरकसबधी, अचलभ्राता का पुण्य-पापसम्बन्धी, मेतार्य का परलोकविषयक, एव प्रभास स्वामी का निर्वाणविषयक सन्देह भगवान ने मिटाया था।

(९-१०-११-१२) द्वार —ग्यारह गणधरो का दीक्षादिवस एकादशी है। उन यज्ञवाटिका मे उपस्थितो ने समवशरण मे देवो का आगमन देख कर वैशाख शुक्ल ११ के दिन, मध्यम पावा नगरी मे, महसेन वनोद्यान मे पूर्वाण्ह देश और पूर्वाण्ह काल मे भगवान महावीर स्वामी के पास दीक्षा ग्रहण की थी।

(१३) व्रत परिवार—इन्द्रभूति आदि पाँच सौ छात्रो के साथ दीक्षित हुए। मण्डित व मोरियपुत्र साढे तीन सौ एवं अकम्पितादि चारो गणधर तीन-तीन सौ छात्रो के साथ प्रत्येक दीक्षित हुए थे।

(१४) छद्मस्थ पर्याय—इन्द्रभूति का तीस वर्ष, अग्निभूति का वारह वर्ष, आयुभूति का दश वर्ष, व्यक्त का वारह वर्ष, सुधर्मा स्वामी का वयालीस वर्ष, मण्डित और मोरियपुत्र का चौदह वर्ष,

अकम्पित्त का नौ वर्ष, अचलभ्राता का बारह वर्ष, मेतार्य का दस वर्ष और प्रभात्त का साठ वर्ष छद्मस्थकाल है।

(१५) केवलित्व—इन्द्रभूति गणधर बारह वर्ष, अग्निभूति सोलह वर्ष, वायुभूति और व्यक्त अठारह-अठारह वर्ष, आर्य सुधर्मा स्वामी आठ वर्ष, मण्डित्त और मोरियपुत्र सोलह सोलह वर्ष, अचलभ्राता चौदह वर्ष, मेतार्य और प्रभास गणधर प्रत्येक सोलह-सोलह वर्ष केवलीपर्याय मे विचरे थे।

(१६) रूप—ग्यारहो गणधर वज्र ऋषभ नाराच संघयण वाले सम चतुरस्र सस्थान, स्वर्णाभ देह वर्ण वाले एवं तीर्थङ्करो की भाँति रूप सम्पदा वाले थे। तीर्थङ्कर के लिए कहा है कि—समस्त देवो का सौन्दर्य यदि अगुष्ठ प्रमाण मे विकुर्वण किया जाय तो भी वे जिनेश्वर के पदाङ्गुष्ठ के बराबर शोभा नही देते। इन वाक्यो के अनुसार तीर्थङ्करो का रूप अद्वितीय होता है। उनसे किञ्चित न्यून गणधरो का, उनसे कुछ हीन आहारक शरीर वालो का, उनसे न्यून अनुत्तर देवो का, उनसे हीन नौ ग्रैवेयक पर्यवसान देवो का, उनसे हीन क्रमश अच्युत देवलोक से लगा कर सौधर्म देवलोक के देवो का रूप होता है। उनसे भी हीन भुवनपति, उनसे हीन ज्योतिषी देव और उनसे हीन व्यन्तर देवो का रूप होता है। उनसे भी हीन चक्रवर्त्ती, उनसे हीन अर्ध चक्री वासुदेवो का उनसे हीन बलदेवो का एवं उनसे हीन अवशिष्ट लोगो का रूप होता है। इस प्रकार के विशिष्ट रूपधारी गणधर होते हैं।

श्रुतज्ञान की दृष्टि से गृहस्थावास मे वे चतुर्दश विद्या के पारगत्त, श्रामण्य मे द्वादश अग गणि पिटक के पारगामी और सभी द्वादशाङ्गो के प्रणेता होते हैं।

(१७) लब्धि—सभी गणधर सर्वलब्धिसम्पन्न होते हैं। यतः बुद्धिलब्धि (१८ प्रकार) केवलज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्यवज्ञान,

वीजवुद्धि, कोष्टबुद्धि, पदानुसारित्व, सभिन्न सोइत्व, दूरासायण सामर्थ्य, दूरस्पर्शसामर्थ्य, दूरदर्शनसामर्थ्य, दूरश्रवणसामर्थ्य, दशपूर्वित्व, चतुर्दशपूर्वित्व, अष्टाङ्ग महानिमित्त कौशल्य, पण्णासवण्णत्त, प्रत्येकवुद्धत्व, वादित्व।

क्रियाविषयक लब्धियाँ दो प्रकार की होती है—

१ चारण लब्धि, २ आकाशगामित्व लब्धि।

विकुर्वित्त लब्धि अनेक प्रकार की होती है—

अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, पत्ती, प्रकामित्व, इसित्त, वसित्त, अप्रतिघात्त, अन्तर्द्धान, कामरूपित्त्व इत्यादि।

तपातिशय लब्धि सात प्रकार की होती है। यथा—

उग्रतपत्व, दित्त तपत्व, महातपत्व, घोर तपत्व, घोर पराक्रमत्व, घोर ब्रह्मचारित्व, अघोर ब्रह्मचारित्व।

बललब्धि तीन प्रकार की होती है—

१ मनोबलित्व, २ वचनबलित्व, ३ कायवलित्व।

औषधिलब्धि आठ प्रकार की होती है—

१ आमोसहि लब्धि, २ खेलोसहि लब्धि, ३ जल्लोसहि लब्धि, ४ मलोषधि लब्धि, ५ विप्पोसहि लब्धि, ६ सर्वोषधि लब्धि, ७ आसग अविसत्व, ८ दृष्टि अविषत्व।

रसलब्धि छ प्रकार की होती है, यथा—

१ वचन विषत्व, २ दृष्टि विषत्व, ३ क्षीराश्रवित्व, ४ मधु आश्रवित्व, ५ रूपि आश्रवित्व, ६ अमृताश्रवित्व।

क्षेत्रलब्धि दो प्रकार की होती है—

१ अक्षीण महान सत्व, २ अक्षोण महालयत्त्व।

सभी गणधर इन लब्धियो से सम्पन्न होते हैं।

(१८) सर्वायु—इन्द्रभूति की वाणवे वर्ष, अग्निभूति की चौहत्तर वर्ष, वायुभूति की सत्तर वर्ष, व्यक्त की अस्सी वर्ष, आर्य

सुधर्मा स्वामी की सौ वर्ष, मण्डित्त की त्रेयासी वर्ष, मोरियपुत्र की पचाणवे वर्ष, अकम्पित्त की अठहत्तर वर्ष, अचलभ्राता की बहत्तर वर्ष, मेतार्य की बासठ वर्ष और प्रभास स्वामी की सर्वायु चालीस वर्ष की थी।

(१९)-(२०) मोक्ष स्थान व तप—सभी गणधरो का निर्वाण मासभक्तोपवास व पादोपगमन पूर्वक राजगृह नगर के वैभार गिरि पर्वत पर हुआ। प्रथम और पचम गणधर के अतिरिक्त नौ गणधर भगवान् महावीर की विद्यमानता मे ही मोक्ष प्राप्त हुए। इन्द्रभूति और सुधर्मा स्वामी भगवान के निर्वाणोपरान्त मोक्ष गए।

यह गणधर-कल्प जो प्रतिदिन प्रात काल प्रसन्न चित्त से पढता है उसके करतल मे सभी कल्याणपरम्पराएँ निवास करती हैं।

सवत् १३८९ विक्रमीय के ज्येष्ठ शुक्ल पचमी बुधवार के दिन श्री जिनप्रभसूरिकृत गणधर-कल्प चिरकाल तक जयवन्त रहे।

श्री महावीर-गणधर कल्प समाप्त हुआ। इसकी ग्रन्थसख्या ६८ है।

•

४०. कोकावसति पार्श्वनाथ-कल्प

पद्मावती-नागराज धरणेन्द्र द्वारा ससेवित्त पार्श्वनाथ भगवान को नमस्कार करके कोकावसति पार्श्वनाथ का थोडा सा वृत्तान्त कहता हूँ।

श्री प्रश्नवाहणकुल सभूत हर्षपुरीय गच्छालकार भूषित श्री

अभयदेव सूरि हर्ष पुर से एक बार ग्रामानुग्राम विचरते हुए श्री अणहिल्लवाड पाटण मे आये। बाह्य प्रदेश मे वे सपरिवार रहे। एक दिन महाराजा श्री जयसिंहदेव गजारूढ होकर राजवाटिका मे आया और सूरिजी को मल-मलिन वस्त्र-देहयुक्त देखा। राजा ने हाथी से उतर कर नमस्कार करते हुए उन्हे दुष्कर क्रियाशील देखकर 'मलधारि' नाम दिया। राजा उन्हे अभ्यर्थना करके नगर मे ले गया और घृतवसही के निकट उपाश्रय दिया जहाँ सूरि महाराज रहे।

कालक्रम से उनके पट्ट पर अनेक ग्रथ निर्माण द्वारा विख्यात कीर्त्ति वाले श्री हेमचन्द्रसूरि (मलधारि) हुए। वे प्रतिदिन चौमासी चौदस से घृतवसही मे जाकर व्याख्यान करते। एक दिन घृत-वसति के किसी गोष्टी के पितृ-कार्य से उस चैत्य मे वलि-विस्तरादि करना प्रारभ किया। जब श्रीहेमचन्द्र सूरिजी व्याख्यान करने के लिए वहाँ पधारे तो गोष्ठी लोगो ने प्रतिषेध करते हुए कहा—आज यहाँ व्याख्यान न करे क्योकि वलि-मडनादि से अवकाश नही है। सूरि जी ने कहा—आज थोडा सा व्याख्यान करेंगे जिससे चौमासे के व्याख्यान मे विच्छेद न हो। पर गोष्ठी लोगो के न मानने पर आचार्य महाराज उदास मन से उपाश्रय लौट आये।

गुरु महाराज को दु खित चित्त ज्ञात कर सौवर्णिक मोखदेव-नायग नामक श्रावक ने और किसी दिन पराये चैत्य मे ऐसा अपमान न हो इसलिए नव्य चैत्य निर्माणार्थ घृतवसति के निकट भूमि माँगी, पर कही भी नही मिली। तब कोका नामक सेठ मे भूमि मागी। घृतवसति के गोष्टिको ने मना कर दिया और तिगुना मूल्य देने को प्रस्तुत हो गए। सूरि महाराज सघसहित कोका के घर पधारे। उसने आदरपूर्वक कहा—मैने यथोचित मूल्य मे भूमि दी, पर मेरे नाम से चैत्य वनवाना। सूरि महाराज और

श्रावको ने उसके प्रस्ताव को मान लिया और घृतवसति के निकट "कोकावसति" नामक चैत्य वनवाया। उसमे श्री पार्श्व-नाथ भगवान स्थापित किए, त्रिकाल पूजा होने लगी।

कालक्रम से श्री भीमदेव के शासनकाल मे पाटण का भग करते मालवा के सुलतान ने पार्श्वनाथ प्रतिमा भी भंग कर दी। सौवर्णिक नायग के वशज सेठ रामदेव-आसधर ने उद्धार करना प्रारभ किया। आरासन से तीन फलक आये, पर वे निर्दोष नही थे। अत उनके तीन बिम्ब घडाने पर भी गुरु महाराज एव श्रावको को सन्तोष नही हुआ। तव सेठ रामदेव ने अभिग्रह लिया कि जब तक पार्श्वनाथ प्रतिमा न हो, भोजन नही करूँगा। गुरु महाराज भी उपवास कर रहे थे। आठवें उपवास मे रामदेव को देव का आदेश हुआ कि जहाँ अक्षत पुष्प युक्त गहुली दिखाई दे, उसके नीचे यही चैत्य के निकट इतने हाथ नीचे पाषाणफलक विद्यमान है। भूमि खोदकर फलक प्राप्त किया और पार्श्वनाथ भगवान का अनुपम रूप वाला विम्व वनवाया। विक्रम संवत् १२६६ वर्ष मे श्री देवाणंद सूरि जी ने प्रतिष्ठित कर भगवान को चैत्य मे स्थापित किया। कोका पार्श्वनाथ नाम प्रसिद्ध हुआ।

सेठ रामदेव के तिहुणा और जाजा नाम के पुत्र हुए। तिहुण का पुत्र मल्ल हुआ। उसके देल्हण और जइतसीह नामक पुत्र हैं जो प्रतिदिन भगवान पार्श्वनाथ की पूजा करते है।

एक दिन श्री सखेश्वर पार्श्वनाथ भगवान (के अधिष्ठायक) ने देल्हण को स्वप्न दिया कि प्रभात मे चार घडी पर्यन्त कोका पार्श्वनाथ प्रतिमा का मैं सान्निध्य करूँगा। उस चार घडी के समय एक प्रतिमा की पूजा करते हमारी पूजा हो जायगी। उसी प्रकार लोगो द्वारा पूज्य मान श्री कोकावसति पार्श्व-नाथ भी श्री सखेश्वर पार्श्वनाथ की भाँति परचे पूरते है।

सखेश्वर पार्श्वनाथ सम्बन्धी पूजा-यात्रा-अभिग्रहादि लोगो के यही पूर्ण होते है।

इस प्रकार सन्निहित प्रातिहार्य श्री कोकावसति पार्श्वनाथ की तेतीस पर्वांगुल प्रमाण प्रतिमा मलधारि गच्छ प्रतिबद्ध है।

अणहिलपत्तनमण्डन श्री कोकावसति पार्श्वनाथ का यह सक्षिप्त कल्प लोगो का क्लेश नष्ट करे।

श्री कोकावसति पार्श्वनाथ-कल्प समाप्त हुआ। इसकी ग्रथ-श्लोक सख्या ४० है।

•

४१. श्रीकोटिशिलातीर्थ-कल्प

जिनेश्वर भगवान को नमस्कार करके पूर्व पुरुष-सिहो के वाक्यो का सहारा लेकर श्री कोटिशिलातीर्थ का कल्प श्री जिन-प्रभसूरि प्रकाशित करते है।

इस भरतक्षेत्र मे मगधदेश मे कोटिशिला तीर्थ है, जो आज भी चारण, सुर-असुर और यक्षो के द्वारा पूजा जाता है। भरतार्द्ध-वासिनी अधिष्ठिता देवता द्वारा भी सतत (पूजा होती है), वह एक योजन पृथुल और एक योजन ऊँचा है।

सभी तीन खण्ड पृथ्वी के स्वामी वासुदेव देवो, मनुष्यो और विद्याधरो के प्रत्यक्ष मे उसे उपाड कर (उठा कर) अपने बाहुबल की परीक्षा करते हैं।

प्रथम वासुदेव ने उसका छत्र किया, दूसरे ने मस्तक तक, तीसरे ने ग्रीवापर्यन्त, चौथे ने छाती तक, पाँचवे ने उदर पर्यन्त, छट्ठे ने कटि प्रदेश तक, सातवे वासुदेव ने जघा तक ऊँचा उठाया। आठवे ने जानुपर्यन्त और नौवे कृष्ण वासुदेव ने उसे अपनी बायी भुजा से उठा कर भूमि से चार अगुल ऊँचा किया।

अवसर्पिणी काल के प्रभाव से क्रमश मनुष्य का बलादि कम होता जाता है। तीर्थङ्करो का बल सब का एक जैसा होता है।

जिस कोटिशिला को करोड बलवान् सुभटो द्वारा उठाना अशक्य है, उसे अकेला वासुदेव उठा लेता है।

शान्तिनाथ भगवान के प्रथम गणधर चक्रायुध विधिपूर्वक अनशन करके कोटिशिला पर मुक्त हुए।

शान्तिनाथ भगवान के तीर्थ मे सख्याबद्ध मुनियो की कोटि यही सिद्ध हुई एव श्री कुन्थुनाथ भगवान के तीर्थ मे भी। श्री अरनाथ जिनेश्वर के तीर्थ मे भी बारह श्रमणो की कोटि और मल्लि जिनेश्वर के तीर्थ मे छ कोटि ऋषि सिद्ध हुए। मुनि सुव्रतनाथ जिनेश्वर के तीर्थ मे तीन कोटि सिद्ध हुए। नमिनाथ भगवान के तीर्थ मे एक कोटि अणगार सिद्ध हुए।

वहाँ अन्य भी अनेक महर्षि शाश्वत पद को प्राप्त हुए। इसीसे भूमण्डल मे कोटिशिलातीर्थ विख्यात हुआ।

पूर्वाचार्यो ने इससे विशेष भी कुछ कहा है, जैसे—

दशार्ण पर्वत के समीप योजन पृथुलयाम वाली कोटिशिला है। छ तीर्थङ्करो के शासन मे वहाँ से अनेको कोटि मुनि सिद्ध हुए।

शान्तिनाथ स्वामी के प्रथम गणधर चक्रायुध अनेक साधुओ के परिवार सहित यहाँ से बत्तीस युगो तक सख्यात कोटि मुनि सिद्ध हुए। कुन्थुनाथ भगवान के अठाइस युगो तक सख्यात मुनि

कोटि सिद्ध हुए। अरनाथ भगवान के ३४ युगो तक बारह कोटि मुनि सिद्ध हुए। मल्लिनाथ भगवान के वीस युगो तक छ कोटि मुनि सिद्ध हुए और मुनि सुव्रत भगवान के शासन मे तीन कोटि मुनि व नमिनाथ प्रभु के शासन मे एक कोटि मुनि सिद्ध हुए। इसलिए इसका नाम कोटिशिला है।

शिर पर, ग्रीवा तक, छाती तक, उदर तक, कोटिपर्यन्त और जघाओं तक तथा जानुपर्यन्त एव चार अगुल तक वासुदेव उसे उठाते है।

यह कोटिशिला तीर्थ त्रिभुवनजनो को सुख देनेवाला देवता व खेचरो से पूजित है। वह भव्यजनो का कल्याण करे।

कोटिशिलातीर्थ का कल्प समाप्त हुआ। इसमे ग्रन्थ-श्लोक सख्या २४ अक्षर ६ है।

●

४२. वस्तुपाल-तेजपालमन्त्रि-कल्प

श्री वस्तुपाल और तेजपाल दोनो भ्राता प्रसिद्ध मत्रीश्वर हुए हैं, उनकी कीर्त्तन-सख्या कहता हूँ।

पहले गुर्जर-धरामण्डन मण्डली महानगरी मे श्री वस्तुपाल तेजपाल आदि निवास करते थे। एक वार श्रीपत्तन निवासी प्राग्वाटज्ञातीय ठक्कुर श्री चण्डप के पुत्र ठक्कुर श्री चण्डप्रसाद के पुत्र मत्री श्री सोमकुलावतश ठक्कुर श्री आसराज के नन्दन, कुमारदेवी के कुक्षी रूपी सरोवर के दो राजहस श्री वस्तुपाल-

तेजपाल श्री शत्रुञ्जय गिरनार आदि तीर्थो की यात्रा के लिए चले। हडाला गाँव आ कर जब अपने वैभव का विचार किया तो वह सर्वस्व तीन लाख हुआ। फिर सौराष्ट्र में दुख का आकलन कर एक लाख पृथ्वी मे गाडने के लिए रात्रि मे एक बड़े पीपल के नीचे खड्डा खुदवाया। उसे खोदते हुए किसी का पुराना स्वर्ण पूर्ण शोल्व कलश निकला। उसे ले कर वस्तुपाल ने तेजपाल की स्त्री अनुपमा देवी को मान्य होने से पूछा—इस निधि को कहाँ रखे ? उसने कहा—गिरिशिखर पर ही इसे ऊँचा स्थापित करना चाहिए जिससे प्रस्तुत निधि की भाँति वह अन्य के अधिकार मे न आ सके। यह सुन कर वस्तुपाल ने उस द्रव्य को श्री शत्रुञ्जय गिरनार मे व्यय किया। यात्रा कर के लौटते समय वे धवलक्कपुर आये।

इसी बीच महणदेवी नामक कन्नौजपति की पुत्री पिता से कचुलिक खर्च मे गुजरात की पृथ्वी पा कर उसका आधिपत्य भोग कर मृत्यु के उपरान्त वही देश की अधिष्ठात्री देवी हुई। उसने एक दिन राजा वीरधवल को स्वप्न मे कहा कि वस्तुपाल-तेजपाल को राज्यचिन्तक नियुक्त करके सुख से राज्य करो! वैसा करने से तुम्हारे राज्य-राष्ट्र की वृद्धि होगी। यह आदेश देते हुए अपने को प्रकट कर देवी अन्तर्धान हो गई। प्रात काल उठ कर राजा ने वस्तुपाल-तेजपाल को बुलाया और सम्मानपूर्वक बड़े को स्तम्भतीर्थ व धवलक्क के राज्यो का आधिपत्य एव तेजपाल को सर्व राज्य की व्यापार मुद्रा दी। तब वे दोनो षट् दर्शन को दान, नाना प्रकार के धर्म स्थान बनवाने आदि सैकडो सुकृत्यो द्वारा अपना समय बिताने लगे।

जैसे कि उन्होने सवा लाख जिन-प्रतिमाएँ बनवाई। अठारह करोड छियानवे लाख द्रव्य श्री शत्रुञ्जय तीर्थ पर व्यय किया। बारह करोड अस्सी लाख श्री उज्जयन्त पर, बारह करोड त्रेपन

लाख आबू पर लूणगवसही मे खर्च किये। नौ सौ चौरासी पौपध-शालाएँ वनवाई। पाँच सौ दाँत के सिंहासन, पाँच सौ जादर के समवशरण, सात सौ सतरह ब्रह्मशाला, सात सौ दानशालाएँ, तपस्वी-कापालिक मठो मे सर्वत्र भोजन-दान किया। तीन हजार दो माहेश्वरायतन, तेरह सौ चार शिखरवद्ध जिनालय, तेईस सौ जिनालयो का उद्धार, अठारह करोड़ स्वर्ण के व्यय से तीन स्थानो मे सरस्वती-भण्डार भरवाये। पाँच सौ ब्राह्मण प्रतिदिन वेद-पाठ करते थे। वर्ष मे तीन वार सघ पूजा, पन्द्रह सौ श्रमण घर मे नित्य वहोरते थे। एक हजार से अधिक तटिक-कार्पटिक प्रतिदिन भोजन करते थे। सघपति वन कर तेरह तीर्थयात्राएँ की। प्रथम यात्रा मे चार हजार पाँच सौ गाडे—सेज वाले (शय्यापालक), सात सौ सुखासन, अठारह सौ वाहिनी, उन्नीस सौ श्रीकरी, इक्कीस सौ श्वेताम्वरो व ग्यारह सौ दिगम्वरो के, साढे चार सौ जैन गायक, तेतीस सौ वन्दीजन, चौरासी तालाव वँधाये। चार सौ चौसठ वावडी (वापी) तीस-वत्तीस पाषाणमय दुर्ग, चौवीस दन्तमय जैन रथ, दो हजार शाक (सागवान काष्ठ) घटित (रथ वनवाये)। वस्तुपाल मत्री के 'सरस्वती कण्ठाभरण' आदि चौवीस विरुद थे। उसने चौसठ मस्जिदे करवाई। दक्षिण मे श्रीपर्वत तक, पश्चिम मे प्रभास तक, उत्तर मे केदार तक और पूर्व मे वाराणसी तक उनके कीर्त्तिकलाप व्याप्त हैं। सव मिला कर तीन सौ करोड़ चौदह लाख अठारह हजार आठ सौ मे तीन लौष्टिक कम द्रव्य हुआ। त्रेसठ वार सग्राम मे उसने जय-पत्र प्राप्त किया। इस प्रकार अठारह वर्ष उनका व्यापार-कार्यकाल चला।

इस प्रकार अनेक पुण्यकृत्य करते हुए कितने ही काल पर राजा वीरधवल काल प्राप्त हुआ। तव उसके पट्ट पर उसके पुत्र वीसलदेव को मन्त्रिश्रेष्ठो ने राज्याभिषिक्त किया। वह समर्थ होता

हुआ क्रमश घमण्डी हो गया। उसने दूसरा सचिव बनाकर मन्त्री तेजपाल को हटा दिया। यह देखकर राजपुरोहित सोमेश्वर महाकवि ने राजा को उद्देश्य करके व्यङ्गात्मक नव्य काव्य पढा—

हे चचल समीर ! महीने भर सुन्दर पाटल पुष्पो के परिमल को वहन करती अपनी महान् शक्ति का तूने क्या प्रयोग किया है ? देख तो सही—अन्धकार को दूर हटाने वाले सूर्य और चन्द्रमा का दूर से ही तिरस्कार करके पादस्पर्श सहन करने वाली धूलि को उनके स्थान पर स्थापित कर दिया। इत्यादि।

उन पुरुष-रत्नो का शेष वृत्तान्त और आदि से उत्पत्ति का स्वरूप तो लोक-प्रसिद्धि से ही जान लेना चाहिए।

गायकवर्य सूढा के द्वारा जान करके दोनो मन्त्रिमुख्यो के कीर्त्ति-कलापो की यह सख्या बतलायी है।

जहाँ अर्हन्त भगवान विराजमान हो, वह तीर्थ कहलाता है और उन दोनो मत्रियो के चित्त मे अर्हन्त अहर्निश बसते थे। इसलिए उन तीर्थरूप पुरुषश्रेष्ठो के कीर्त्तन से भी क्या कल्पकृति व्याप्त नही है ? अर्थात् है। ऐसा विचार कर उन दोनो मत्री-नायको का यह सक्षिप्त कल्प श्री जिनप्रभसूरि ने हृदय से बनाया है।

महामात्य श्री वस्तुपाल तेजपाल के कीर्त्तन-सख्या का यह कल्प ग्रथाग्र० ५३ और अक्षर ६ अधिक है।

•

४३. ढिंपुरीतीर्थ-कल्प

श्री चेल्लण पार्श्वनाथ और श्री वीर प्रभु का ध्यान करके श्री ढिंपुरी तीर्थ का कल्प यथाश्रुत कहता हूँ। पारेत जनपद मे महानदी चर्मणवती के तट पर नाना प्रकार के गहरे जगलो मे गहन ढिंपरी नगरी है।

इसी भारतवर्ष मे विमलयशा नामक राजा हुआ। उसके रानी सुमगला देवी के साथ विषय-सुख अनुभव करते क्रमश सन्तान-युगल जन्मे। उनमे पुत्र का नाम पुष्पचूल और पुत्री पुष्पचूला थी। उद्दण्ड, अनर्थकारी होने से लोगो ने पुष्पचूल का नाम वङ्कचूल कर दिया। महाजनो के उपालम्भ से रुष्ट होकर राजा ने वङ्कचूल को नगर से निकाल दिया। अपने परिजन और स्नेह वश बहिन के साथ जाते हुए वह भीषण अटवी के मार्ग मे पड गया। वहाँ भूख प्यास से व्याकुल अवस्था मे उसे भीलो ने देखा और अपनी पल्ली मे ले गए। उन्होने उसे अपने पूर्व पल्लीपति के पद पर स्थापित कर दिया। वह ग्राम, नगर और पथिको के सार्थ को लूट खसोट कर राज्य-पालन करने लगा।

एक वार सुस्थिताचार्य आवूसे अष्टापद यात्रा के हेतु जाते हुए अपने शिष्यादि परिवार के साथ सिंहगुफा नामक इसी पल्ली मे पहुचे। वर्षाकाल आया, भूमि जीवाकुल हो गई। सूरिजी ने साधुओ के साथ आलोचना करके वकचूल से वसति माँग कर वही रह गए। उसने पहले से ही व्यवस्था कर ली कि हमारी सीमा मे धर्म-कथा न कहे क्योकि आपकी कथाओ मे अहिंसादि धर्म है और उससे हम लोगो का निर्वाह नही होता। गुरु महाराज

उसका कथन स्वीकार कर उपाश्रय मे ठहर गए। उसने सभी प्रधान पुरुषो को वुलाकर कहा—मैं राजपुत्र हूँ, मेरे पास ब्राह्मणादि आवेगे अत आप लोग पल्ली मे जीव-वध एव मास-मदिरा का प्रसग उपस्थित न करें जिससे साधुओ को भी आहार-पानी कल्प्य हो जायगा। उन्होने चार महीने ऐसा ही किया।

विहार का समय आया। सूरिजी ने वकचूल को—"श्रमणो और पक्षियो का वास अनियत होता है" वाक्यो द्वारा सूचित किया। वह गुरु महाराज के साथ चला। अपनी सीमा पर पहुचा कर विनति की—हम परायी सीमा मे प्रवेश नही करते! सूरिजी ने कहा—हम सीमान्तर मे आ गए, अव कुछ उपदेश देंगे। वङ्कचूल ने कहा—मेरे से निर्वाह हो सके, ऐसा उपदेश दीजिए। सूरिजी ने उसे चार नियम दिलाए—१ अज्ञात फल न खाना, २ सात-आठ पाँव पीछे हट कर आघात करना, ३ पट्टरानी से गमन नही करना, ४ कौए का मास भक्षण न करना। वह नियम स्वीकार कर गुरु महाराज को नमस्कार कर अपने घर आ गया।

एक वार वह सार्थ पर डाका डालने के लिए गया। शकुन न होने के कारण सार्थ नही आया, वङ्कचूल का पाथेय समाप्त हो गया। ठाकुर लोग क्षुधा-पीडित हुए। उन्होने फला हुआ किम्पाक वृक्ष देखा, उसके फल ग्रहण किए। वङ्कचूल ने उस फल का नाम न जानने से उन्हे नही खाया, दूसरे सव लोगो ने खाया। वे लोग किम्पाक फल से मर गए। वङ्कचूल ने सोचा—अहो! नियम पालन का यह फल है। उसके बाद वह पल्ली मे अकेला आया। रात्रि मे अपने घर मे प्रविष्ट होकर दीपक के प्रकाश मे पुष्पचूला को पुरुष वेश मे अपनी पत्नी के साथ सोये हुए देखा। उन पर क्रुद्ध होकर कहा—दोनो को खड्ग से मारूँगा। ऐसा सोचकर नियम याद आ जाने से सात-आठ पाँव पीछे हट कर

आघात करने के उद्देश्य से पीछें हटा और खड्ग के खटके से जग कर वहिन ने "वङ्कचूल जीते रहो" शब्द कहे। उसने लज्जित होकर पूछा—यह ऐसा क्यो ? वहिन ने नट का सारा वृत्तान्त वतलाया।

कालक्रम से वङ्कचूल के राज्य-शासन करते उस पल्ली मे उन्ही आचार्य महाराज के धर्मऋषि धर्मदत्त नाम के दो मुनि वर्षावास रहे। उनमे से एक के तीन मासक्षमण और दूसरे के चार मासक्षमण तप था। वङ्कचूल आचार्य महाराज के उपदेश के के शुभ फल अनुभव कर चुका था, अत. उसने—कृपा कर कुछ उपदेश दीजिये—कहा। उन्होने क्लेश का नाश करनेवाला चैत्य निर्माण कराने का उपदेश दिया। वङ्कचूल ने 'शराविका' पर्वत समीपवर्त्ती उसी पल्ली मे चर्मणवती नदी के तट पर ऊँचे शिखर वाला सुन्दर जिनालय वनवाया। उसमे श्री महावीर स्वामी की प्रतिमा स्थापित की। वह तीर्थ के रूप मे प्रसिद्ध हो गया, चारो दिशाओ से सघ आने लगे।

कालान्तर मे कोई व्यापारी अपनी पत्नी के साथ सर्वऋद्धि सहित वहाँ की यात्रा के लिए चला। क्रमश. रन्ति नदी पर आया। नौका मे वैठे हुए दम्पति ने चैत्य का शिखर देखा और सोने के कटोरे मे कुकुम, चन्दन, कर्पूर आदि डालकर शीघ्रता से जल मे प्रक्षेप करते हुए व्यापारी की पत्नी के हाथ से प्रमादवश छूट कर नदी तल मे जा डूवा। वणिक ने कहा—यह करोडो के मूल्य वाला रत्नजटित कटोरा राजा द्वारा ग्रहणक मे दिया हुआ था, अव राजा से कैसे छुटकारा होगा ? उसने दीर्घ विचार करके यह वात वङ्कचूल से कही ताकि यह राजकीय वस्तु मिल जाय ऐसा प्रयत्न करे। वङ्कचूल ने उसकी खोज के लिए धीवर को आदेश दिया, वह नदी मे प्रविष्ट होकर तल तक गया। उसने

सोने के रथ मे स्थित जीवन्त स्वामी श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा देखी और उस प्रतिमा के हृदय पर उस कटोरे को भी देखा। धीवर ने कहा—ये दम्पत्ति धन्य हैं जिनका घिसा हुआ चन्दन विलेपन भगवान के हृदय पर स्थित है। धीवर ने उसे लाकर व्यापारी को दिया, उसने भी उसे प्रचुर द्रव्य दिया। नाविक ने विम्ब का स्वरूप कहा तो श्रद्धालु वङ्कचूल ने उसे ही प्रवेश कराके भगवत् प्रतिमा को निकलवा और स्वर्णरथ को वहो छोड दिया। भगवान ने स्वप्न मे आगे ही सूचित्त कर दिया था—जहाँ डाली हुई पुष्पमाला जाकर ठहरे वहाँ प्रतिमा की शोध करना। तदनुसार विम्व लाकर वङ्कचूल राजा को समर्पित कर दिया। उसने श्री महावीर स्वामी विम्ब-जिनालय के वहिर्मण्डप मे स्थापित किया और जवतक इसके लिए नया मन्दिर न वने तव तक यही विराजमान रहे। मन्दिर तैयार होने पर उसमे स्थापित करने के लिए राजकीय पुरुपो ने विम्व को उत्थापन करना प्रारम्भ किया पर देवताधिष्ठान से वह विम्व नही उठा और आज तक भी वैसे ही स्थित है।

धीवर ने पल्लीपति वङ्कचूल राजा से निभेदन किया—मैंने नदी मे प्रविष्ट होने पर दूसरी प्रतिमा भी देखी थी, उसे बाहर लाने का प्रयत्न करना चाहिए, पूजा होने पर ही ऐसा होता है! तव पल्लीपति ने अपनी सभा मे पूछा—कोई इन प्रतिमाओ का सविधान जानते हो? किसने इन्हे नदी मे रखा? यह सुन कर पुरातत्त्वविद स्थविर ने कहा—देव! एक नगर मे पहले एक राजा था जो परचक्र के आने पर उसके साथ युद्ध करने के लिए सैन्य सजा कर गया। उसकी पटरानी ने अपने सर्वस्व विम्वद्वय को सोने के रथ मे रख कर जल-दुर्ग समझ कर कोटिवक मे डाल कर चर्मणवती मे रख दिए। चिरकाल युद्धरत अवस्था मे किसी खल व्यक्ति ने वात फैला दी कि राजा को शत्रु ने नष्ट कर दिया।

रानी ने यह सुन कर उस कोटिबक को जल के तल मे रख दिया और स्वय मरण स्वीकार कर लिया। वह राजा जब शत्रु को हरा कर अपने नगर मे आया और रानी के वृत्तान्त को सुन कर ससार से विरक्त होकर भागवती दीक्षा स्वीकार कर ली। उममे से एक बिम्ब को देव बाहर लाये, वह तो पूज्यमान है, दूसरा भी निकाला जाय ऐसा उपक्रम करना चाहिए। यह सुन कर परमार्हत चूडामणि बकचूल ने उसी धीवर को बिम्ब निकलने के लिए नदी मे प्रवेश कराया। उसने उस प्रतिमा को कटि प्रदेश पर्यन्त जल-तल मे और अवशिष्ट बाह्य रहे हुए देख कर उसे बाहर निकालने के अनेक उपाय किये पर बाहर न निकलने से दैवी प्रभाव ज्ञात कर उसने अपने स्वामी को उसका स्वरूप निवेदन किया। आज भी वह वैसा ही है। सुना जाता है कि आज भी किसी वृद्ध धीवर ने नौका स्तम्भित होने पर उसका कारण खोजते उस स्वर्णमय रथ की एक कीलिका प्राप्त की। उसे स्वर्णमय देख कर लोभवश सोचा—मैं इस सारे रथ को क्रमश ग्रहण कर के धनवान हो जाऊँगा! इससे उसे रातभर नीद नही आई। किसी अदृश्य पुरुष ने कहा—यदि इसे वही रखोगे तो सुखी रहोगे, अन्यथा मैं तुम्हे शीघ्र ही मार दूगा। उसने भय के मारे उस युग-कीलिकादि को वही छोड दिया। देवाधिष्ठित पदार्थों के प्रति कौन-सी बात सम्भव नही होती?

सुना जाता है कि वर्त्तमान काल मे कोई म्लेच्छ हाथ मे पत्थर ले कर श्री पार्श्वनाथ प्रतिमा को तोडने के लिए उपस्थित हुआ। उसकी भुजाएँ स्तम्भित हो गई। बहुत कुछ पूजा-विधि करने से वह ठीक हुआ। श्री वीरप्रभु की प्रतिमा बडी है और श्री पार्श्वनाथ प्रतिमा उसकी अपेक्षा छोटी है अत. श्री महावीर प्रतिमा के सामने यह बालरूप देव है। इस प्रकार 'मेद' लोग

'चेल्लण' नाम से इसे कहते हैं। बड़े भारी माहात्म्य वाले श्री चेल्लण पार्श्वनाथ के समक्ष उन महर्षियों ने सुवर्ण मुकुट मन्त्राम्नाय भव्यों के लिए आधारित व प्रकाशित की। और वह सिंह-गुफा पल्ली कालान्तर में ढिपुरी नाम से प्रसिद्ध नगरी हुई। आज भी वे भगवान महावीर और वे चेल्लण पार्श्वनाथ उसी नगरी में यात्रोत्सवादि से आराधन किये जाते हैं।

एक बार वकचूल खात डाल कर चोरी करने के लिए उज्जैन में किसी सेठ के घर गया। कोलाहल सुन कर वहाँ से लौट आया और देवदत्ता नामक प्रधान गणिका के घर में प्रविष्ट हुआ। उसने उसे कोढ़ी के साथ सोये हुए देखा। वहाँ से निकल कर नगर सेठ के घर गया। वहाँ एक विशोपक हिसाब में कम हो रहा था जिसके लिए सेठ ने अपने पुत्र को दुर्वाक्यों से फटकार कर घर से निकाल दिया। यह देखते हुए रात बीत गई। फिर—राजकुल में जाऊँगा—यह सोचते हुए सूर्योदय होने से पल्लीपति वकचूल ने नगर से निकल कर गोह लेकर वृक्ष के नीचे दिन बिताया। रात्रि में फिर राजकोष भण्डार के बाहर से गोह के पूँछ द्वारा चढ कर अन्दर प्रविष्ट हो गया। उसे राजा की रूठी हुई पटरानी ने देख कर पूछा—तुम कौन हो? उसने कहा—मैं चोर हूँ। रानी ने कहा—डरो मत, मेरे साथ सगम करो। चोर ने कहा—तुम कौन हो? उसने कहा—मैं पटरानी हूँ। चोर ने कहा—तब तो तुम मेरी माँ होती हो। कहते हुए जाने का निश्चय किया तो रानी ने नखो से अग विदीर्ण कर पहरेदारो को पुकार के बुलाया। उन्होंने पकड लिया। रानी को मनाने के लिए आये हुए राजा ने यह दृश्य स्वय देख लिया था। अत उसने अपने पुरुषों को कहा—इसे ज्यादा कष्ट मत दो। उन्होंने उसे रखा। प्रात.काल राजा के पूछने पर उसने कहा—देव! मै चोरी करने के लिए प्रविष्ट हुआ, पीछे आपके भण्डार मे देवी ने मुझे देख लिया। इसके आगे कुछ

न कहने पर जानकार राजा ने प्रसन्न होकर उसे पुत्र रूप में स्वीकार कर लिया और सामन्त पद पर आरूढ किया। वकचूल ने राजा के द्वारा विडम्बना की जाती हुई रानी की रक्षा की। अब वकचूल सोचने लगा—अहो! नियम धारण करने का भी कैसा शुभ फल है!

एक वार राजा ने उसे कामरूप के राजा को जीतने के लिए भेजा। वह युद्ध मे गया और उसे जीत कर घावो से जर्जरित होकर स्वदेश लौटा! राजा ने वैद्यो को नियुक्त कर इलाज कराया पर घाव वढते ही गए। उन्होंने कहा—देव! कौए के मास से यह अच्छा होगा।

जिनदास श्रावक के साथ वकचूल की मित्रता थी अत राजा ने उसे वुलाने के लिए पुरुषो को भेजा ताकि मित्र के समझाने से ये काक-मास भक्षण कर ले। राजा द्वारा वुलाए हुए जिनदास ने अवन्ती आते हुए किन्ही दो देवियो को रोते हुए देखा। उसने पूछा—क्यो रोती हो! देवियो ने कहा—हमारा पति सौधर्म देव-लोक से च्युत हो गया अत हम राजकुमार वकचूल की प्रार्थना करती है, पर तुम्हारे जाने पर वह काक-मास भक्षण कर दुर्गति-भाजन हो जायगा, इसलिए रोती है। सेठ ने कहा—मै ऐसा ही करूँगा कि यह उसे भक्षण न करे। सेठ उज्जैन गया, राजा के अनुरोध से उसने वकचूल से कहा—काक-मास ग्रहण करो! अच्छे होकर प्रायश्चित्त कर लेना। वकचूल ने कहा—तुम जानते हो, जिस कार्य को करके फिर प्रायश्चित लेना पडे, इससे तो उसका आचरण पहले से ही न करना श्रेयस्कर है। कीचड को प्रक्षालन करने से तो अच्छा है कि उसका स्पर्श न कर दूर ही रहा जाय। इस प्रकार राजा को निषेधकर अपने नियमपालन मे दृढ रह कर वह मर कर अच्युत कल्प मे उत्पन्न हुआ।

४५. चौरासी तीर्थ-नामसंग्रह-कल्प

जिन्होने पाप का निग्रह कर दिया है ऐसे पच परमेष्ठी की उपासना करके तत्र जानने वालो को विदित 'चौरासी तीर्थ जिन' नाम का संग्रह करता हूँ।

जैसे कि शत्रुञ्जय परभुवन मे दीपक के तुल्य श्री वज्रस्वामी प्रतिष्ठित श्री आदिनाथ एवं पाडवो द्वारा स्थापित श्री मूलनायक नन्दिवर्द्धन युगादिनाथ, श्री शातिनाथ, पुण्डरीक, श्री कलश प्रतिष्ठित और दूसरे श्री वज्रस्वामी प्रतिष्ठित पूर्ण कलश। सुधाकुण्ड जीवित स्वामी श्री शातिनाथ और अवसर्पिणी मे भरत क्षेत्र से प्रथम सिद्ध होने वाली माता मरुदेवी स्वामिनी।

श्री उज्जयन्त गिरनार पर पुण्य कलश-मदन मूर्त्ति श्री नेमिनाथ, कचन वालानक मे अमृतनिधि श्री अरिष्टनेमि, पापा मठ मे अतीत चौबीसी मे से श्री नेमीश्वरादि आठो पुण्य के निधान है।

१ कायद्रा मे त्रिभुवन मगल कलश श्री आदिनाथ। पारकर देश मे आदिनाथ, अयोध्या मे श्री ऋषभदेव, कोलापुर मे वज्र-मिट्टमय श्री भरतेश्वरपूजित भुवनतिलक श्री आदिनाथ, सोपारक मे जीवत्त स्वामी श्री ऋषभदेव प्रतिमा। नगरमहास्थान मे श्री भरतेश्वर द्वारा कारित युगादि देव, दक्षिणापथ मे गोमटदेव श्री वाहुवली, उत्तरापथ मे कलिग देश मे गोमट श्री ऋषभदेव, खगारगढ मे श्री उग्रसेन द्वारा पूजित पृथ्वी के मुकुट श्री आदिनाथ, महानगरी के उद्दण्डविहार मे श्री आदिनाथ, पुरिमताल मे श्री आदिनाथ, तक्षशिला मे वाहुवलि का वनवाया हुआ धर्मचक्र। मोक्षतीर्थ मे आदिनाथपादुका, कुल्पाक में मन्दोदरी के देहरासर

के श्री माणिक्यस्वामी ऋषभदेव । गगा यमुना के वेणी सगम पर श्री आदिकर मण्डल तीर्थ है।

२ अयोध्या मे श्री अजितनाथ, चन्देरी मे श्री अजितनाथ, तारण तीर्थ की विग्वकोटिशिला पर श्री अजितनाथ, अगदिका मे श्री अजित-शाति दो तीर्थंकर ब्रह्मेन्द्र के देहरासर के हैं।

३ श्रावस्ती मे जागुली विद्यापति श्री सभवनाथ है।

४ सेगमती गाँव मे श्री अभिनन्दन देव है। नर्मदा नदी उन्ही के चरणो मे से निकली है।

५ क्रौच द्वीप, सिंहल द्वीप, हस द्वीप मे श्री सुमतिनाथ देव की पादुका है। आवुरिणि गाँव मे श्री सुमतिनाथ देव हैं।

६ माहेन्द्र पर्वत और कौशाम्बी मे श्री पद्मप्रभ हैं।

७ मथुरा मे महालक्ष्मीनिर्मित श्री सुपार्श्व-स्तूप है। दशपुर नगर मे सीता देवी के देहरासर के श्री सुपार्श्वनाथ हैं।

८ प्रभास मे शशिभूषण श्रीचन्द्रप्रभ स्वामी की चन्द्रकान्त मणिमय प्रतिमा श्री ज्वालामालिनी देवी के देहरासर की है। वल्लभी में आई हुई, श्री चन्द्रप्रभ स्वामी की प्रतिमा नन्दिवर्द्धन राजा की बनवायी हुई और श्री गौतमस्वामी द्वारा प्रतिष्ठित है। नाशिक मे जीवितस्वामी त्रिभुवनतिलक श्री चन्द्रप्रभ हैं। चन्द्रावती के मन्दिर में मुकुटसदृश श्री चन्द्रप्रभ है। वाराणसी के विग्वेश्वर मे भी श्री चन्द्रप्रभ भगवान है।

९ कायाद्वार मे श्री सुविधिनाथ भगवान है।

१० प्रयाग तीर्थ मे श्री शीतलनाथ है।

११ विन्ध्याचल और मलयगिरि पर श्री श्रेयासनाथ भगवान है।

१२ चम्पानगर में विश्वतिलक श्री वासुपूज्य है।

१३ कम्पिला जी तीर्थ में गगातट पर एव श्रीसिंहपुर मे श्री विमलनाथ हैं।
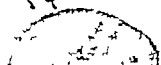
लौटते हुए जिनदास श्रावक ने उन देवियो को उसी प्रकार रोते देखकर कहा—अब क्यो रोती हो ? उसने मास ग्रहण नही किया है। देवियो ने कहा—वह तो अधिक धर्माराधन करके अच्युत-कल्प मे चला गया, हमारा पति नही बना।

इस प्रकार जैन धर्म के प्रभाव को बहुत काल तक विचारता, मनन करता हुआ जिनदास श्रावक अपने घर लौटा।

इस प्रकार इस तीर्थ के निर्माता वंकचूल भी जगत को आनंद देने वाले हुए। ढिंपुरीतीर्थरत्न का यह कल्प जैसा सुना, उसकी किंचित् रूप से श्री जिनप्रभसूरि ने रचना की।

यह चेल्लण पार्श्वनाथ का कल्प समाप्त हुआ। इसकी ग्रन्थ-संख्या ११६ अक्षर २६ ऊपर है।

■

४४. ढिंपुरीस्तव

विविध उत्तुंग पर्वतो के बीच शुभ्र छाया सुशोभित श्री महावीर प्रभु, पार्श्वनाथ, मुनि सुव्रत और आदिनाथ की प्रतिमाओ से युक्त, नियमधारण करने वाले श्री वंकचूल की विश्वविश्रुत पल्ली ढिंपुरी चिरकाल तक अद्भुत लक्ष्मी को करे।

यहाँ गम्भिदेव नदी के तट पर स्थित मनोहर गगनचुम्बी शिखर वाले चैत्यो को देखकर यात्री-गण अपने नेत्रो को शीतलता देते हैं।

यहाँ मूलनायक चरम जिनेश्वर महावीर स्वामी की लेप्यमय

विशाल प्रतिमा है। दाहिनी ओर चेल्लण पार्श्वनाथ जयवन्त है जिनके ऊपर सर्पफण अलकृत है।

एक ओर आदिनाथ जिनेश्वर और दूसरे और श्री मुनि सुव्रत भगवान है। इस प्रकार अनेक जिनेश्वर मूर्त्तियो वाला मन्दिर चमकीले वादलो के सदृश है। द्वार के समीपवर्त्तिनी अबिका देवी और छ भुजाओ वाला क्षेत्रपाल है। सर्वज्ञ भगवान के चरण कमलो मे वे दोनो सेवा करते हुए भ्रमर के समान सघ के विघ्न-समूह क्षण मात्र मे नष्ट करते है।

यहाँ पौप दशमी को लोक समूह द्वारा किये जाने वाले उत्सव को देखकर भव्यजन कलिकाल के घर निश्चय ही कृतयुग को पाहुने के रूप मे आने की सभावना करते है।

देवताओ द्वारा पूजित इस तीर्थ की भक्ति से आराधना करके समस्त मनोवाछित प्राप्त होते है और सर्व प्रकार के भयो को जीत लेते हैं। अत्यन्त सुगन्धित चन्दन को पा कर ताप से व्याप्त आलिङ्गित अग को कौन सहन कर सकता है?

पापो को दूर करने मे दृढ वद्यजन ढिपुरी तीर्थ रत्न की वन्दना करते हैं। जिसमे कल्प वृक्ष के सदृश प्रार्थित अर्थ को देने वाले पद्मावती और धरणेन्द्र द्वार चरण गृहीत भगवान चेल्लण पार्श्वनाथ की यह कायोत्सर्ग स्थित देह है।

शक सवत् १२५१ दीपावली के दिन सघसहित इस नगरी मे आकर प्रभावमहोदधि इस तीर्थ का मुदित मन वाले श्री जिनप्रभ-सूरि ने यह स्तोत्र वनाया है।

१४ मथुरा मे यमुना-ह्रद मे, द्वारिका मे समुद्र मे, और शाक-पाणि मे श्री अनन्तनाथ भगवान है।

१५ अयोध्या के समीप रत्नवाहपुर मे नागराजपूजित श्री धर्मनाथ भगवान हैं।

१६ किष्किन्धा, लका, पाताललका और त्रिकूटगिरि पर श्री शान्तिनाथ भगवान हैं।

१७ १८ गगा यमुना के वेणी सगम पर श्री कुन्थुनाथ—श्री अरनाथ भगवान है।

१९ श्रीपर्वत पर श्री मल्लिनाथ हैं।

२० भृगुपत्तन—भरोच मे अनर्घ्य रत्नचूड श्री मुनिसुव्रत हैं। प्रतिष्ठानपुर—अयोध्या, विन्ध्याचल मे माणिक्य दडक मे श्री मुनि सुव्रत भगवान हैं।

२१ अयोध्या मे मोक्ष तीर्थ मे श्री नमिनाथ हैं।

२२ सौरीपुर के शख-जिनालय मे, पाटला नगर मे, मथुरा, द्वारिका, सिंहपुर, स्तम्भ तीर्थ मे पातालर्लिग नामक श्री नेमि-नाथ भगवान हैं।

२३ अजाहरा मे नवविधि पार्श्वनाथ, स्तम्भन मे भवभयहर पार्श्वनाथ, फलौदी मे विश्वकल्पलता श्री पार्श्वनाथ, करहेडा में उपसर्गहर पार्श्वनाथ, अहिछत्रा में त्रिभुवनभानु पार्श्वनाथ, कलि-कुण्ड और नागह्रद में श्री पार्श्वनाथ, कुक्कुटेश्वर मे विश्वगज पार्श्वनाथ। माहेन्द्र पर्वत पर छाया पार्श्वनाथ, ओकार पर्वत पर सहस्रफणा पार्श्वनाथ, वाराणसी मे दण्डखात मे भव्य पुष्कराग-वर्त्तक पार्श्व, महाकाल के अन्तर मे पातालचक्रवर्ती पार्श्व, मथुरा मे कल्पद्रुम पार्श्व, चम्पा मे अशोकपार्श्व, मलयगिरि पर श्री पार्श्वनाथ भगवान हैं।

२४ श्रीपर्वत पर घण्टाकर्ण महावीर, विन्ध्याचल पर श्री-गुप्त, हिमाचल मे छायापार्श्व मन्त्राधिराज श्रीस्फुलिंग है। श्री-पुर मे अन्तरिक्ष श्री पार्श्वनाथ, डाकुली भीमेश्वर मे श्री पार्श्व-नाथ, भाइल स्वामिगढ मे देवाधिदेव हैं।

श्री रामसेन मे प्रद्योतकारी श्रीवर्द्धमान, मोढेरा, वायड, खेडनाणा, पाली, मतुण्डक, मूगथला, श्री मालपत्तन, ओसियाँ, कुण्डग्राम, सत्यपुर, टका मे, गंगाह्रद मे, सर स्थान मे, वीतभय मे, चम्पा मे, अपापा मे, पुण्ड्र मे पर्वत पर नन्दिवर्द्धन कोटि भूमि मे श्री वीर प्रभु हैं। राजगृह वैभारगिरि पर, कैलाश और श्री रोहणाचल मे भी श्री महावीर भगवान हैं।

अष्टापद पर चौवीस तीर्थङ्कर हैं, समेतशिखर पर वीस जिनेश्वर हैं, हेम सरोवर मे वहत्तर जिनालय है, कोटिशिला सिद्धक्षेत्र है।

इस प्रकार जैन धर्म मे प्रसिद्ध तीर्थो की नामावली को श्री जिनप्रभसूरि ने स्फुटित किया। इनमे कुछ मैने देखे हैं, कुछ सुने है वैसे ही अपने तीर्थों के नामो की पद्धति मे मैंने लिखे हैं।

समस्त तीर्थों का नामसग्रह-कल्प समाप्त हुआ। इसकी ग्रथ सख्या ४९ और २१ अक्षर हैं।

●

४६. समवशरण रचना-कल्प

श्री महावीर जिनेश्वर को नमस्कार करके पूर्वाचार्य कृत समवशरण-रचना का गाथाओ से कल्प कहता हूँ।

वायुकुमार और मेघकुमार क्रमश एक योजन भूमि शुद्ध कर सुगन्धित जल की वर्षा करते हैं। वाणमतर मणिरत्नमय भूमि रत्न करते है और कुसुमवृष्टि करते हैं।

श्रेष्ठ रजत कनक और रत्न के तीन प्राकार क्रमश भुवनपति, ज्योतिष और वाणमतर देव बनाते हैं। प्राकारो पर कचन, रत्न और मणियो के कपिशीर्षक होते हैं।

उन प्राकारो का एक-एक गाऊ और छ. सौ धनुष का अन्तर होता है। तेतीस धनुष एक हाथ और आठ अगुल का विस्तार होता है।

उन वप्रो के पाँच सौ धनुष ऊँचे द्वार होते है। ये सर्व माप जिनेश्वरो के स्वहस्त प्रमाण से जानना चाहिए।

भूमि से दश हजार सोपान चढने पर प्रथम प्राकार आता है। वहाँ से पचास धनुष जाने पर पाँच हजार सोपान चढकर दूसरा वप्र आता है।

उसका अन्तर भी पूर्वोक्त विधि से जान लेना चाहिए। तद-नन्तर पूरे बीस हजार सोपान चढने पर तीसरा कोट है।

वे सब क्रमश दश, पाँच और पाँच हजार सोपान एक हाथ ऊँचे व एक हाथ विस्तीर्ण है। बाह्य, मध्य और अभ्यन्तर वप्रो के ये सोपान समझना चाहिए।

उनके बीच मे भूमि से ढाई कोश ऊँचा, दो सौ धनुष लम्बा-

चौडा मणिपीठ है और जिनेश्वरो की धनुष-ऊँचाई के समान ही उसके चार द्वार हैं।

उस चार मणि-रत्न जटित सिंहासन है, जिन पर तीन छत्रो से भूषित भगवान पूर्वाभिमुख विराजमान होते हैं।

समधिक योजन विस्तार वाला दो सौ सोलह धनुष ऊँचा अशोक वृक्ष है। व्यन्तरदेव भगवान के तीन प्रतिबिम्व शेष तीन सिंहासनो पर विराजमान करते हैं।

परिषद के आगे प्रारम्भ मे मुनिराज, वैमानिक देवियाँ और साध्वियाँ रहती हैं। भुवनपति व्यन्तर ज्योतिषी देव-देवी, वैमानिक देव और पुरुष-स्त्री बैठते है।

कुडहिकेतु सकीर्ण एक हजार योजन ऊँचे दण्ड वाला धर्मध्वज होता है, दो यक्ष चामरधारी होते हैं और जिनेश्वर के आगे धर्म-चक्र होता है।

ऊँची ध्वजाएँ मणितोरण अष्ट मङ्गल, पूर्णकलश, मालाओ, पचालिकाओ और छत्रादि से प्रत्येक द्वार सुशोभित होते हैं, धूप-घटिकाएँ होती हैं।

क्रमश. हेम-श्वेत-रक्त और श्यामल वर्ण वाले वैमानिक, व्यन्तर, ज्योतिषी और भुवनपति प्रतिद्वार पर रत्न के वप्र वाले पूर्वादि वप्रो पर प्रतिहार होते हैं।

जय, विजय, जयन्त और अपराजित क्रमश गौर, रक्त, कनक व नील आभा वाली देवियाँ पूर्व क्रम से कनकमय स्थापित करती है।

प्रत्येक बाह्य वप्र के द्वार पर दोनो ओर जटित मुकुटो से मण्डित तुम्बुरु, पट्वाङ्ग पुरुष श्रीमालाओ से युक्त स्थापित करते हैं।

बाह्यवप्र मे यानादि रहते हैं, दूसरे वप्र मे तिर्यंच परस्पर

शत्रु भी मित्र भाव वाले होकर बैठते हैं। ये सब रत्न वप्र के बाहर मणिमय छद मे बैठते हैं।

बाह्य वप्र के द्वारा मध्य मे दो दो गोल वापियाँ होती हैं। कोनो मे एक-एक चौकोर वापी होती है।

तीर्थंकर पादमूल मे नमस्कार करते हुए देव चारो ओर कल-कल शब्द से उकडु बैठे हुए सिंहनाद करते हैं।

चैत्य वक्ष, पीठ छदक, आसन, छत्र, और चामर जो भी करणीय है, वे वाणमतर देव करते हैं।

पूर्व से पश्चिम का अवगाहन करती हुई दो-दो पद्मपक्तियाँ मार्ग मे भगवान के पाँवो के नीचे आती है। अन्य सात घूमती हुई क्रमश पाँवो के नीचे आती रहती हैं।

दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाभिमुख देव कृत प्रतिविम्ब होते हैं। ज्येष्ठ गणधर अथवा अन्य दक्षिण पूर्व मे निकट बैठते हैं।

जिनेश्वर देव के प्रतिविम्ब जो देवकृत हैं वे तोनो दिशाओ के अभिमुख हैं। उनका भी वैसा ही प्रभाव हैं और तदनुरूप होते हैं।

खडे हुए महर्द्धिक प्रणाम करते हैं, बैठे हुए भी प्रणाम करते न उन्हे कष्ट होता है न वे विकथा करते हैं, न उनमे परस्पर मात्सर्य भाव होता है न भय करते हैं।

भगवान साधारण शब्द से तीर्थ को प्रणाम करके योजन-गामिनी वाणी से सभी सन्नी जीवो को उपदेश देते हैं।

जहाँ पहले समवशरण नही होता, जिस श्रमण ने पहले नही देखा, वहाँ वे भी बारह योजन से शीघ्र आ जाते हैं।

निकली हुई भगवान की वाणी उनके कानो मे साधारण रूप से श्रवित होती है। और उनके श्रोत्र निवृत्त नही होते।

शीत, उष्ण, क्षुधा, पिपासा, परिश्रम भय की अवगणना करते

हुए जो जिनेश्वरदेव कहते है उसे यदि सारी आयु तक (आजीवन) सुनना पडे तो वे सुनने की इच्छा रखते हैं।

साढे बारह लाख और उतने करोड सोनइयो का प्रीतिदान भगवान का आगमन कहने वाले को चक्रवर्ती देते है।

वासुदेव इतने ही प्रमाण के रजत का दान देते है। लाख और हजार का दान मण्डलीक राजा (प्रान्तपति) देते हैं।

इभ्य—श्रेष्ठी आदि भी जिनेश्वर भगवान का आगमन सुनकर नियुक्त पुरुपो को अपनी-अपनी भक्ति और वैभव के अनुसार दान देते है।

राजा, युवराज, अमात्य द्वारा शासित प्रवर जनपद मे कोई दुर्वलाखडित पूजायोग्य आढक कलमा शालि विना तुले अखण्ड फलक जैसे वलि किए जाते है, जिनसे देवता भी स्तव्ध हो जाते हैं।

पूर्व द्वार से एक साथ ही पूजा की जाती हैं। तिगुनी पूर्व द्वार पर उसकी आधी अन्य द्वार स्थित देवो को दी जाती है।

आधी-आधी अधिपतियो की और अवशेष याचक जनो की होती है। यह सर्व रोगो का प्रशमन करने वाली होती है, छः मास तक कोई व्याधि नही आती।

पादपीठ पर राजोपनीत सिहासन पर वैठे हुए ज्येष्ठ गणधर अथवा दूसरे गणधर दूसरे प्रहर मे देशना देते है।

श्री जिनप्रभसूरि ने यह समवशरण रचना-कल्प सक्षेप से सूत्रानुसार लिखा है। इसे पढना चाहिए।

श्री समवशरण रचना-कल्प समाप्त हुआ। इसकी ग्रन्थ सख्या ४३ है।

●

४७. कुडुँगेश्वर नाभेय (ऋषभ) देव-कल्प

श्वेताम्बराचार्य चारणमुनि वज्रसेन द्वारा शक्रावतार तीर्थ मे प्रतिष्ठित श्री ऋषभदेव जयवन्त हो।

विशेष तेजस्वी भगवान कुडुगेश्वर ऋषभदेव का सक्षिप्त कल्प देखकर कहता हूँ।

पूर्व काल मे लाट देश मण्डन भरोच नगर के अलङ्कार शकुनिकाविहार स्थित श्री वृद्धवादीसूरि ने "जो जिससे हारेगा वह उसका शिष्य होगा" इस प्रतिज्ञा को लेकर दक्षिणापथ से आये हुए कर्णाट भट्ट दिवाकर को जीत कर उसे व्रत ग्रहण कराया, सिद्धसेन दिवाकर नाम रखा गया। फिर कितने ही दिनो मे उसने समस्त आगमो का अध्ययन कर लिया। एक दिन उहोने—सभी आगमो को मैं सस्कृत मे कर दूँगा—कहा तो पूज्यश्री ने कहा—क्या तीर्थङ्कर-गणधर सस्कृत नही जानते थे जो अर्द्धमागधी मे आगमो को कहा। ऐसा बोलने से तुम्हे प्रायश्चित्त लगा है। तुम्हे क्या कहा जाय, तुम स्वय जानते हो।

उन्होने विचार कर कहा—भगवन्! मौन धारण करके बारह वर्षीय पाराञ्चित नामक प्रायश्चित्त लेकर रजोहरण मुखवस्त्रिकादि साधु लिंग को गुप्त रखकर अवधूत के वेश मे विचरण करना आवश्यक है। गुरु महाराज के मुख से—"यह उपयुक्त है" ऐसा सुन कर ग्राम नगरादि देशान्तर मे पर्यटन करते हुए बारहवे वर्ष उज्जैन मे कुडुगेश्वर देवालय मे शेफालिका के कुसुम से रञ्जित वस्त्र धारण किए हुए आकर बैठ गए। लोगो द्वारा "देव को क्यो नही नमस्कार करते हो ?" ऐसा कहने पर भी कुछ नही बोले। इस प्रकार जन-परम्परा से सुनकर सबको ऋण मुक्त करके अपना

सवत्सर प्रवर्त्तन करने वाले महाराजा श्री विक्रमादित्यदेव ने आकर कहा—क्षीर चाटने वाले भिक्षु। क्या तुम देव को नमस्कार नही करते? तव उन्होने कहा—मेरे नमस्कार करने से देव का लिंग भग्न हो जायगा। जो आपके अप्रीति का कारण हो जायगा। राजा ने कहा—होने दो। आप नमस्कार तो कीजिये। उन्होने कहा—तव सुनिये। फिर उन्होने पद्मासनस्थ होकर द्वात्रिंगद् द्वात्रिंशिकाओ से देव की स्तुति करना प्रारम्भ किया। यथा—

"अव्यक्त, प्रव्याहत, विश्वलोक स्वरूप अनादि-मध्य-अन्त रहित पुण्य-पापविहीन स्वयभू और सहस्रनेत्रभूत अनेक रूप वाले एकाक्षर भावलिंग को ·   ।

इत्यादि प्रथम श्लोक से ही प्रासाद स्थित शिखि के शिखाग्र से धुआँ निकलने लगा। तव लोगो ने कहा—'आठ विद्याओ के अधीश्वर ये कालाग्नि रुद्र हैं। भगवान अपने तीसरे नेत्र की अग्नि से इस साधु को भस्म कर डालेगे।" इतने मे ही विजली के तेज समान तडतडाहट करते हुए प्रथम ज्योति निकलकर अप्रतिचक्रा—चक्रेश्वरी देवी द्वारा मिथ्यादृष्टि देवता को ताडयमान करते लिंग-मूल से दो टुकडे होकर पद्मासनस्थ स्वयभू भगवान ऋषभदेव प्रादुर्भूत हुए।

इस धर्मप्रभावना द्वारा पाराञ्चित समुद्र से उत्तीर्ण होकर उन्होने रक्ताम्बर त्याग कर रजोहरण मुखवस्त्रादि युक्त साधुलिंग मे प्रकट होकर महाराजा को धर्मलाभ आशीर्वाद दिया। "दूर से ही हाथ उठाए हुए आशीर्वादरूप 'धर्मलाभ' बोलने पर आचार्य सिद्धसेन को राजा ने करोड दिए।" फिर प्रभु से क्षमा-याचना कर राजा ने स्तुति की।

पाराञ्चित प्रायश्चित्त वहन करने वाले सिद्धसेन दिवाकराचार्य प्रतिष्ठित श्रीमान् कुडङ्गेश्वर नाभिराजाङ्गज ऋषभदेव जिनेश्वर आपका कल्याण करे।

फिर भगवान श्री सिद्धसेन दिवाकर सूरि की सजीवनी चारि-चरक न्याय से देशना द्वारा भद्र-स्वभावी श्री विक्रमादित्य महाराजा ने सम्यक्त्वमूल देशविरति धर्म विशेष रूप से स्वीकार किया। और उन्होने गोह्रद मण्डल मे सावद्रा आदि ९१ गाँव, चित्रकूटमण्डल के वसाड प्रभृति ८४ गाँव, घुटारसी आदि ८४ गाँव, मोहडवासक मण्डल के ईसरोडा प्रभृति ५६ गाँव श्रीकुडुगेश्वर ऋषभदेव भगवान को अपने नि.श्रेयस् के हेतु ताम्रशासन कर दिए। यह शासनपट्टिका "श्रीमद् उज्जयिनी मे सवत् १ चैत्र सुदी १ गुरुवार को भाट देशीय महाक्षपटलिक परमार्हत् श्वेताम्बरोपासक ब्राह्मण गौतम के पुत्र कात्यायन ने राजा (ज्ञा) से लिखी।"

अब श्री कुडुगेश्वर भगवान ऋषभदेव के प्रगट होने के दिन से लेकर सर्वात्म रूपमे मिथ्यात्व का उच्छेद कर सभी जटाधरादि दार्शनिक लोगो को श्वेताम्बर बनाकर मिथ्यादृष्टि देव-गुरु से परिमुक्त कर सारी पृथ्वी को जैन मुद्राङ्कित बनाया। प्रसन्न-चित्त श्री सिद्धसेन सूरि ने राजा से कहा—

हे विक्रमादित्य! तुम्हारे ग्यारह सौ निन्याणवे वर्ष पूर्ण होने पर तुम्हारे जैसा कुमारपाल राजा होगा।

इस प्रकार श्री कुडुगेश्वर युगादिदेव सर्वजगत्पूज्य ख्याति-प्राप्त हुए।

कुडुगेश्वर देव के इस कल्प की श्री जिनप्रभसूरि ने यथाश्रुत सुन्दर रचना की।

कुडुगेश्वर युगादिदेव-कल्प समाप्त हुआ, इसकी ग्रन्थ-सख्या ५५ अक्षर १८ ऊपर है।

•

४८ व्याघ्री-कल्प

जो जीव-जन्तु आराधक होते है, उनका कीर्त्तन करने से निश्चय ही कल्याण होता है, यह हृदय मे आलोचना-विचार करके मै किञ्चित् रूप मे व्याघ्री-कल्प कहता हू।

श्री शत्रुञ्जय पर आदिनाथ चैत्य दुर्ग के प्रतोली द्वार को रोक कर कभी कोई व्याघ्री आ बैठी। उसे निश्चलाङ्गी देखकर उससे आतङ्कित चिन्तित मन वाले श्रावक लोग जिनेश्वर को नमन बाहर से ही कर लेते, पर आगे नही जाते।

कोई साहसी ठाकुर उसके पास गया, पर वह न तो उसके प्रति आकृष्ट हुई और न उसको किञ्चित् भी मारने की चेष्टा की।

तब उस क्षत्रिय ने कही से मास लाकर उसके आगे रखा, पर उसने उस ओर आँख उठाकर भी नही देखा।

अब निर्भय होकर श्रावको ने भी उसके आगे आकर क्रमश उत्तम भक्ष्य और पानी रखा। तो भी उसे अनिच्छुक देखकर जनता ने हृदय मे सोचा—अवश्य ही इसने जातिस्मृति पाकर तीर्थ पर अनशन स्वीकार किया है।

इसका तिर्यंच भव भी प्रशसनीय है, जिसने चारो प्रकार का आहार छोड दिया। यह एकाग्र नेत्रो से देव को ही निरीक्षण करती है।

साधर्मी की वुद्धि से श्रावको ने उसकी चन्दन-पुष्पादि से पूजा की और सगीत उत्सवादि मे भावना-भक्ति मे लग गए।

निरागार प्रत्याख्यान करवाया और हर्षपूर्वक मन से ही उसने श्रद्धा करके उसे स्वीकार किया।

इस प्रकार वह तीर्थ के माहात्म्य से ही शुद्ध वासना-भावना समृद्ध हुई। सात आठ दिन अनशन पालन कर पापो को नष्ट कर वह स्वर्ग गई।

अगर-चन्दन मे उसके शरीर का अग्नि-सस्कार करके प्रतोली के दक्षिण तरफ उसकी पाषाणमूर्त्ति स्थापित की।

तीर्थचूडामणि श्री विमलाचल की चिरकाल जय हो, जहॉ तिर्यंच भी आराधकाग्रणी हुए।

श्री जिनप्रभसूरि ने यह व्याघ्री-कल्प रच कर जो पुण्य उपार्जन किया वह श्रीसघ को सुखकारी हो।

यह व्याघ्री-कल्प समाप्त हुआ, इसकी ग्रन्थ सख्या १४ है।

●

४९. अष्टापदगिरि-कल्प

अष्टापद-स्वर्ण के समान देह की कान्ति वाले भवरूपी हस्ती के लिए अष्टापद के समान श्री ऋषभदेव को नमस्कार करके अष्टापद गिरि का कल्प सक्षेप से कहता हूँ।

इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे दक्षिण भरतार्द्ध मे भारतवर्ष में नौ योजन चौडी और बारह योजन लबी अयोध्या नामक नगरी है। यही श्री ऋषभ-अजित-अभिनदन-सुमति-अनतादि जिनेश्वरो की जन्मभूमि है। इस के उत्तर दिशा मे बारह योजन पर अष्टा-पद नामक कैलाश अपर नाम वाला रम्य गिरिश्रेष्ठ आठ योजन ऊँचा, स्वच्छ स्फटिक शिलामय है। इसी से लोगो मे धवल गिरि

नाम भी प्रसिद्ध है। आज भी अयोध्या के निकटवर्ती उड्डयकूट पर स्थित होने पर आकाश निर्मल हो तो उसकी धवल शिखर पंक्तियाँ दीखती है। फिर वह महासरोवर, घने सरस वृक्ष, पानी के पूर वाले झरनो से युक्त, परिपार्श्व मे सचरण करते जलधर, मत्त मोर आदि पक्षियो के कोलाहल युक्त, किन्नर-विद्याधररमणियो से रमणीक, चैत्यो को वदन करने के लिए आने वाले चारण-श्रमणादि लोगो के दर्शनमात्र से भूख प्यास हरण करने वाला, निकटवर्ती मानसरोवर विराजित है। इसकी उपत्यका मे साकेत-वासी लोग नाना प्रकार की क्रीडाएँ कराते है।

इसी के शिखर पर ऋषभदेव स्वामी चतुर्दश भक्त से पर्यंकासन स्थित, दस हजार अणगारो के साथ माघी कृष्ण त्रयोदशी के दिन अभिजित नक्षत्र मे पूर्वाह्ण मे निर्वाण प्राप्त हुए। शक्रादि ने वहाँ स्वामी का देह-सस्कार किया। पूर्व दिशा मे स्वामी की चिता, दक्षिण दिशा मे इक्ष्वाकुवशियो की और पश्चिम दिशा मे शेप साधुओ की थी। उन तीन चितास्थानो पर देवो ने तीन स्तूप किये। भरत चक्रवर्ती ने स्वामी के सस्कार के निकटवर्ती भूतल पर एक योजन लवा, आधा योजन चौडा, तीन कोश ऊँचा सिंह-निषद्या नामक प्रासाद रत्नोपल-वार्द्धकि रत्न के द्वारा बनवाया। उसके स्फटिक रत्नमय चार द्वार है। उभय पक्ष मे सोलह रत्न चदन कलश है। प्रत्येक द्वार पर सोलह रत्नमय तोरण है। द्वार-द्वार पर सोलह अष्टमंगल हैं। उन द्वारो मे चार विशाल मुख्य मण्डप है। उन मुख्य मण्डपो के आगे चार प्रेक्षामण्डप है। उन प्रेक्षामण्डपो के मध्य भाग मे वज्रमय अक्षवाटक हैं। प्रत्येक अखाडे के वीच मे रत्नसिंहासन है। प्रत्येक प्रेक्षा-मण्डप के आगे मणिपीठिकाएँ है। उनके ऊपर रत्नमय चैत्य-स्तूप हैं। उन चैत्य-स्तूपो के आगे प्रत्येक के प्रतिदिशा मे वडी विशाल पूजा-मणि-

पीठिका हैं। उन प्रत्येक के ऊपर चैत्य वृक्ष है। चैत्य स्तूप के सम्मुख पाँच सौ धनुष प्रमाण वाली सर्वांग रत्न निर्मित ऋषभ-वर्द्धमान-चन्द्रानन-वारिषेण नामक पर्यंकासन विराजित मनोहर शास्वत जिनप्रतिमाएँ नन्दीश्वर द्वीप चैत्य मध्य स्थित की भाँति है। उन चैत्य-स्तूपो के आगे प्रत्येक चैत्य-पादप है। उन चैत्य-वृक्षो के आगे मणिपीठिकाएँ है। उन प्रत्येक के ऊपर इन्द्र-ध्वजाओ के आगे तोरण और सोपान युक्त, स्वच्छ शीतल जल से पूर्ण, विचित्र कमल शालिनी, मनोहर दधि मुखाधार पुष्करिणी के सदृश नन्दा पुष्करिणी है।

सिंह-निषद्या महाचैत्य के मध्य भाग मे विशाल मणिपीठिका है। उनके ऊपर चित्र रत्नमय देवच्छदक है। उसके ऊपर नाना वर्ण के सुगम उल्लोच हैं। उल्लोचो के अन्तर पार्श्व मे वज्रमय अकुश हैं। उन अकुशो से अवलम्बित घडे मे आने योग्य आँवले जैसे प्रमाण के मुक्ताओ के हार हैं। हार-पक्तियो मे विमल मणि-मालिकाएँ है। मणिमालिकाओ के नीचे वज्रमालिकाएँ है। चैत्य भित्ती में विचित्र मणिमय गवाक्ष हैं, जिनमें जलते हुए अगर-धूप समूह की मालिकाएँ हैं।

उस देवच्छदक मे रत्नमय ऋषभादि चौवीस जिनप्रतिमाएँ अपने-अपने सस्थान, प्रमाण और वर्ण वाली भरत चक्रवर्त्तीकारित हैं। उनमे सोलह प्रतिमाएँ ऋषभ, अजित, सभव, अभिनन्दन, सुमति, सुपार्श्व, शीतल, श्रेयास, विमल, अनन्त, शान्ति, कुन्थु, अर, नमि और महावीर भगवान की स्वर्णमय हैं। मुनिसुव्रत और नेमिनाथ की लाजवर्तमय है। चन्द्रप्रभ और सुविधिनाथ की स्फटिक रत्नमय हैं। मल्लि और पार्श्वनाथ की वैदूर्यमय हैं। पद्म-प्रभ और वासुपूज्य भगवान की पद्मरागमय हैं। उन सब प्रतिमाओ के लोहिताक्ष प्रतिपेक पूर्ण अक रत्नमय नख हैं। नखपर्यन्त जावयर के जैसे लोहिताक्ष मणि रस का जो सिंचन किया जाता

है उसे प्रतिषेक कहते हैं। नाभि, केशान्तभूमि, जिह्वा, तालु, श्रीवत्स, चुचुक, हाथ और पाँवो के तले तपनीय स्वर्णमय है। नयनपद्म, कनीनिकाएँ, मशु, भौहे, रोम और शिरके केश अरिष्ट-रत्नमय है। ओष्ठ विद्रुममय हैं, दन्त स्फटिकमय हैं, शीर्षघटिका वज्रमय है। अन्दर लोहिताक्ष प्रतिपेक वाली स्वर्णमय नासिकाएँ हैं। लोहिताक्ष प्रतिषेक प्रान्त वाले अंकमय लोचन हैं। उन प्रतिमाओ के पृष्ठ भाग मे प्रत्येक के एक-एक मुक्ताप्रवाल जाल कस कोरट मल्ल दाम वाली, स्फटिक मणि-रत्न के दण्ड वाली, श्वेत छत्र के धारण करने वाली छत्रधर प्रतिमाएँ है। उनके दोनो ओर प्रत्येक उठाए हुए मणिचामरो वाली रत्नमयी चामर-धारिणी प्रतिमाएँ हैं। प्रतिमाओ के आगे दो-दो नागप्रतिमाएँ, दो-दो यक्षप्रतिमाएँ, दो-दो भूतप्रतिमाएँ, दो-दो कुण्डधारिणी प्रतिमाएँ सर्वाङ्गोज्ज्वल रत्नमयी कृताञ्जलि हो पर्युपासना करती हैं। तथा देवछंदा मे चौवीस रत्न घण्टे, चौवीस माणिक्य दर्पण और वैसे ही स्वर्णमयी स्थान स्थित दीपिकाएँ है। तथा रत्नकरण्डक पुष्प चगेरियाँ, लोमहस्त, पटलिकाएँ, आभरणकरण्डक कनकमय हैं। धूपदहनक, आरतियाँ, रत्नमय मगलदीप, रत्नमय भृगार, रत्नमय स्थाल, सोने के प्रतिग्रह, रत्नचन्दन के कलश, रत्नमय सिंहासन, रत्नमय अष्टमङ्गल, स्वर्णमय तेल के डब्बे, कनकमय धूपभाण्ड और स्वर्णमय कमलहस्तक हैं। ये सब प्रत्येक प्रतिमा के आगे होते हैं। वह चैत्य चन्द्रकान्त शाल से शोभित है। ईहामृग, वृषभ, मकर, तुरगम, नर-किन्नर, विहग, वालग, रुरु, शरभ, चमरी, गज, वनलताओ से विचित्रित रत्नस्तम्भो से समाकुल है। स्वर्ण के ध्वज-दण्डमण्डित पताका है। उपरिस्थित किंकिणी शब्द से मुखर ऊपर पद्मराग कलश से विराजित और गोशीर्ष चन्दनरस के हस्तको से लाछित है। विचित्र चेष्टाओ वाली, अधिष्ठित नितम्ब वाली माणिक्य की शालभजिकाएँ, चन्दनरस से लिप्त

कलशयुग से अलंकृत द्वारदेश के उभय पक्ष मे शोभायमान है। तिरछी बाँध के लटकाई हुई धूपित-सुगन्धित सुन्दर मालाएँ, पचवर्ण कुसुम रचित गृहतल, कपूर, अगर, कस्तूरी, धूपधूम-धारित्त अप्सरागण सकीर्ण, विद्याधरी-परिवृत्त, आगे-पीछे और पार्श्व मे चारु चैत्य पादपो, मणिपीठिकाओ से विभूपित भरत की आज्ञा से यथाविधि वार्धकिरत्न के द्वारा निष्पादित है। वही दिव्य रत्न-शिलामय ९९ भाइयो की प्रतिमाएँ बनवाई। सुश्रूषा करती हुई अपनी प्रतिमा भी बनवाई। चैत्य के बाहर भगवान ऋषभदेव स्वामी का एक स्तूप और ९९ भाइयो के स्तूप करवाए। मनुष्य लोग यहाँ आवागमन करके आशातना न करे इसलिए लोहयत्रमय आरक्षक पुरुष बनवाए जिससे वह अगम्य हो गया। पर्वत की चोटियाँ भी दण्डरत्न से तोड दी, अत वह गिरिराज अनारोहणीय हो गया। योजन-योजन के अन्तर मे मेखलारूप आठ सीढियाँ—पदो द्वारा मनुष्यो के लिए अलंघ्य कर दिया। जिसमे अष्टापद नाम प्रसिद्ध हो गया।

फिर काल-क्रम से चैत्यरक्षण के निमित्त सगर चक्रवर्ती के साठ हजार पुत्रो ने दण्डरत्न से पृथ्वी को खोद कर सहस्र योजन की परिखा की। दण्डरत्न से गगातट को विदीर्ण कर जल से पूर्ण किया। तब गगा को खाई मे भरने से अष्टापदासन्न ग्राम-नगर, पुरादि डूबने लगे। अत उसे दण्ड-रत्न से निकाल कर कुरु देश के बीच से, हस्तिनापुर के दक्षिण से कोशल देश के पश्चिम, प्रयाग से उत्तर, काशी देश से दक्षिण, वत्सदेश मे दक्षिण से मगध के उत्तर से नदी का मार्ग काटते हुए सगरादिष्ट जण्हुपुत्र भागीरथ कुमार ने पूर्वी समुद्र मे उतार दिया। तब से गगासागर तीर्थ हो गया।

इसी पर्वत पर ऋषभदेव स्वामी के आठ पौत्र, और बाहुबलि-प्रमुख निन्नाणवें पुत्र भी स्वामी के साथ सिद्ध हुए। इस प्रकार

एक सौ आठ उत्कृष्ट अवगाहना से एक समय मे आश्चर्यभूत सिद्ध हुए।

श्री वर्द्धमान स्वामी ने स्वय कहा कि "जो मनुष्य इस पर्वत पर स्वशक्ति से चढ कर चैत्यो की वन्दना करेगा वह इसी भव मे मोक्ष प्राप्त होगा।" यह सुन कर लब्धिनिधान भगवान गौतम स्वामी इस पर्वतश्रेष्ठ पर चढे। चैत्यो की वन्दना कर अशोक वृक्ष के नीचे वैश्रमण के आगे तप से कृश अग का वखान करते हुए स्वय उपचित शरीर वाले अन्यथा वादकारी हैं—ऐसे उसके विकल्प को निवारण करने के लिए पुण्डरीक अध्ययन प्रणीत किया। पुष्ट देह वाला पुण्डरीक भावशुद्धि से सर्वार्थसिद्ध गया और दुर्वल शरीर वाला कण्डरीक सातवी नरक गया। यह पुण्डरीक अध्ययन सामानिक देव वैश्रमण ने गौतम स्वामी के मुख से सुनकर अवधारित किया। वे ही तुववण सन्निवेश मे धनगिरि की पत्नी सुनदा के गर्भ मे उत्पन्न होकर दश पूर्वधर श्री वज्र स्वामी हुए। अष्टापद से उतरते हुए गौतम स्वामी ने कौडिन्य-दिन्न-सेवालि तापसो को पन्द्रह सौ तीन की सख्या मे दीक्षित किया। उन्होने जनपरम्परा से "इस तीर्थ के चैत्यो की वदना करने वाला इसी भव मे मोक्ष प्राप्त करेगा"—ऐसे वीर-वचनो को सुनकर प्रथम, दूसरी और तीसरी मेखला सख्यानुसार कौडिन्यादि चढे और इससे आगे जाने मे असमर्थ थे। उन्होने गौतम स्वामी को अप्रतिहत उतरते देखकर विस्मित हो प्रतिवोध पाया और उनके पास दीक्षित हो गए।

इसी पर्वत पर भरत चक्रवर्ती आदि अनेक महर्षि कोटि सिद्ध हुए। वही सगर चक्रवर्त्ती के सुवुद्धि नामक महामात्य ने जन्हु आदि सगर के पुत्रो के समक्ष आदित्ययशा से लेकर पचास लाख कोटि सागरोपम काल मे भरत महाराजा के वश मे समुद्भूत

राजर्षियो को चित्रान्तर गण्डिका से सर्वार्थसिद्धगति और मोक्ष गए बतलाया है।

इसी गिरिराज पर प्रवचन देवतानीत वीरमती ने चौवीस जिन-प्रतिमाओ के भाल-स्थल पर रत्नजटित स्वर्णतिलक चढाए। उसके तब धूसरी भव, युगलिया भव और देव भव प्राप्त कर दमयन्ती के भव मे अन्धकार को दूर करने वाला भाल-स्थान मे स्वाभाविक तिलक हुआ।

इसी पर्वत पर बालि महर्षि कायोत्सर्ग करके स्थित थे। विमानस्खलन से कुपित रावण ने पूर्व वैर को स्मरण कर नीचे की भूमि खोदकर, उसमे प्रविष्ट होकर अपने वैरी सहित अष्टापद गिरि को उठाकर लवण समुद्र मे फेकने की बुद्धि से हजारो विद्याओ का स्मरण कर पर्वत को उठाया। उन राजर्षि ने अवधि-ज्ञान से यह जान कर चैत्य-रक्षा के निमित्त पैर के अगूठे से गिरि-शिखर को दबाया। तबं इससे सकुचितगात्र दशानन मुह से रुधिर वमन करते हुए चीखने लगा। जिससे वह रावण नाम से प्रसिद्ध हुआ। जब दयालु महर्षि ने छोडा तो वह चरणो मे गिर कर क्षमायाचना कर स्वस्थान गया।

यही लंकाधिपति ने जिनेश्वरदेव के समक्ष नाटक करते हुए दैवयोग से वीणा की ताँत टूटने पर नाट्य-भङ्ग न हो इस विचार से अपनी भुजा की तात काट कर वीणा मे जोड दिया। इस प्रकार वीणावादन और भक्ति-साहस से सन्तुष्ट धरणेन्द्र ने तीर्थ-वन्दना के लिए आये हुए रावण को अमोघ विजयाशक्ति रूप-कारिणी विद्या दी।

इसी पर्वत पर गौतम स्वामी ने सिहनिषद्या चैत्य के दक्षिण द्वार से प्रवेश कर पहले सभवनाथ आदि चार प्रतिमाओ को वन्दन किया। फिर प्रदक्षिणा देते हुए पश्चिम द्वार से सुपार्श्वादि

आठ तीर्थङ्करो को, फिर उत्तर द्वार से धर्मनाथादि दश को, फिर पूर्व द्वार से ऋषभदेव अजितनाथ जिनेश्वरद्वय को वन्दन किया।

यद्यपि यह तीर्थ अगम्य है फिर भी स्फटिक वन-गहन समर वालो से जो जल मे प्रतिविम्बित चैत्य के ध्वज-कलशादि देखता है वह भाव-विशुद्धि वाला भव्य जीव वहाँ ही पूजा-न्हवणादि करते हुए यात्रा का फल प्राप्त करता है, क्योकि भावोचित फलप्राप्ति कही है।

भरतेश्वर से निर्मापित प्रतिमायुक्त इस चैत्य-स्तूपो की जो वन्दन-पूजन करते हैं वे धन्य है, वे श्रीनिलय हैं।

श्री जिनप्रभसूरि द्वारा निर्मित इस अष्टापद-कल्प की जो भव्य अपने मन मे भावना करते है, उनके कल्याण उल्लसित होते हैं। पहले अष्टापद-स्तवन मे जो अर्थ सक्षेप से कीर्त्तन किया है वही हमने विस्तार से इस कल्प मे प्रकाशित किया है।

श्री अष्टापद तीर्थ का कल्प समाप्त हुआ, इसकी ग्रथ सख्या ११८ है।

■

५०. हस्तिनापुरतीर्थ-स्तवन

जगद्वद्य श्री शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ भगवान को नमस्कार कर के इन्द्रो के समूह से स्तुत्य गजपुर तीर्थ की स्तवना करता हूँ।

भगवान ऋषभदेव के सौ पुत्रो मे कुरु नामक राजा हुआ। उसके नाम से यह राष्ट्र कुरुक्षेत्र नाम से प्रसिद्ध हुआ। कुरु का

पुत्र हस्ति हुआ जिसके नाम से यह हस्तिनापुर नगर है जो अनेक आश्चर्य की खान है। पहले श्री आदिनाथ भगवान का प्रथम पारणा श्रेयास के घर इक्षुरस से हुआ और पच दिव्य प्रकट हुए। यहाँ शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ—तीन जिनेश्वरो का जन्म हुआ और यही सार्वभौम सम्राट होकर ऋद्धि का भोग किया। मल्लिनाथ प्रभु भी यहाँ समवसरे थे जिससे यहाँ श्रावको के वनवाये हुए चैत्यचतुष्टय अद्भुत महिमा वाले देखे जाते हैं।

यहाँ जगत् के नेत्रो को पवित्र करने वाला अम्बिका देवी का भवन भी यात्रियो के उपद्रव को नष्ट करने वाला भासमान है।

उन चैत्य की दीवालो को जाह्नवी गगा अपनी तरंगो से प्रक्षालित करती है। उछलती हुई कल्लोले भक्तिपूर्वक स्नात्र कराती हो ऐसा लगता है।

सनत्कुमार, सुभूम और महापद्म चक्रवर्त्ती एव मुक्तिश्री को वरण करने वाले पॉच पाण्डव भी यही हुए हैं।

गगादत्त और कार्त्तिक सेठ मुनि सुव्रत स्वामी के शिष्य हुए और विष्णुकुमार ने नमुचि को यही शासित किया था।

कलि के दर्प को नष्ट करने वाली भक्ति और विस्तृत सगीत-युक्त उत्तम व्यय युक्त निर्व्याज भक्ति यहाँ भव्यो ने की।

इस पत्तन मे शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ के चार कल्याणक हुए और जगत् के लोगो को आनन्दकारी श्री सम्मेत-शिखर गिरि पर निर्वाण प्राप्त हुए।

भाद्रपद कृष्ण ७, भाद्रपद शुक्ल ९ और फाल्गुन शुक्ल २ तिथि को इनका देवलोक से च्यवन हुआ। ज्येष्ठ कृष्ण १३, वैशाख कृष्ण १४, और मार्गशीर्ष शुक्ल १० तिथि मे जन्म हुआ। ज्येष्ठ कृष्ण १४, वैशाख कृष्ण ५, माघ सुदि ११ तीनो के दीक्षा के दिन हैं। पोष वदि ९ चैत्र शुक्ल ३, ऊर्ज शुक्ल १२ आपकी ज्ञानोत्पत्ति के दिन हैं।

ज्येठ कृष्ण १३, वैशाख शुक्ल १५, मार्गशीर्ष सुदि १० क्रमश: आपकी निर्वाण-तिथियाँ है।

आप जैसे पुरुषरत्नो की यह जन्मभूमि है जो स्पर्शमात्र से ही श्रेष्ठ जनो के अनिष्ट को नष्ट करती है।

स्तुति की तो वात ही क्या ? उस प्रकार के अतिशयो वाले पुरुपप्रणीत जिनप्रतिविम्व (शान्ति-कुन्थु-अर) त्रयी के महोत्सवो से शोभायमान भागीरथी के जलसग से पवित्र पृथ्वी पर तीर्थरत्न यह गजपुर चिरकाल जयवन्त रहे।

शक सवत् १२५३ वैशाख शुक्ल ६ को इस प्रकार यात्रोत्सव के लिए आये हुए सघसहित श्री जिनप्रभसूरि ने यह गजपुर का स्तवन किया।

■

५१. कन्यानयन महावीर-कल्प परिशेष

श्री सघतिलक सूरि के आदेश से विद्यातिलक मुनि कन्नाणय महावीर-कल्प का कुछ परिशेष कहते है।

भट्टारक श्री जिनप्रभसूरि ने श्री दौलतावाद नगर के साहु पेथड, साहु सहजा, ठा० अचल द्वारा कारित चैत्यो का तुर्कों द्वारा भङ्ग किये जाते समय फरमान दिखाकर निवारण किया। श्री जैन-शासन की अतिशय प्रभावना करते हुए, शिष्यादि अध्ययनेच्छुओ का सिद्धान्त वाचना देते, तपस्वियो के अग और अनग प्रविष्टागम तपादि कराते, अपने शिष्यो व दूसरे गच्छ के मुनियो को भी प्रमाण, व्याकरण, काव्य, नाटक, अलकार शास्त्रादि पढाते,

उद्भट वादभट्ट वादिवृन्दो के अनल्प दर्प को अपहरण करते हुए उन्होने कुछ कम तीन वर्ष विताये ।

इधर श्री योगिनीपुर-दिल्ली मे शकाधिराज श्री महम्मद शाह किसी अवसर प्रस्तुत होने पर पण्डित्तो की गोष्ठी मे शास्त्र-विचार मे सशय उत्पन्न होने पर गुरु महाराज के गुणो का स्मरण किया। सुलतान कहने लगा—आज यदि वे भट्टारकसभा को अलकृत करते तो मेरे मनोगत सारे संशय दूर करने मे क्षणमात्र मे सहज क्षमताशील थे। निश्चय ही उनकी वुद्धि से पराजित्त होकर वृहस्पत्ति भी भूमि का त्याग कर आकाश में चला गया।

इस प्रकार राजा द्वारा गुरु-गुण-वर्णना-व्यतिकर से तत्काल समयज्ञ दौलतावाद से आये हुए ताज मल्लिक ने पृथ्वी पर मस्तक टिका कर निवेदन किया—महाराज! वे महात्मा वहाँ हैं पर उस नगर का जल नही मानने से वे वहुत्त कृशाङ्ग—थक गए हैं। तव गुरुगुणप्राग्भार स्मृत पृथ्वीपति सुलतान ने उसी मीर को आदेश दिया कि—मल्लिक! तुम शीघ्र दुवीरखाने मे जाकर फरमान पत्र लिखाकर वहाँ भेजो। वैसी सामग्री भी भेजो जिससे भट्टारक पुन यहाँ आवें।

मल्लिक ने वैसा ही किया, फरमान भेजा। क्रमश दौलतावाद-राजसभा मे पहुँचा। नगरनायक श्री कुतुलखान ने भट्टारक श्री जिनप्रभसूरि जी को विनयपूर्वक शाही फरमान आने व दिल्ली के प्रति प्रस्थान करने की सूचना दी। तव दस दिन के पश्चात् तैयार होकर ज्येष्ठ शुक्ल १२ राजयोग मे गुरु महाराज ने सघ सहित आने की सूचना पहुचाते हुए प्रस्थान किया।

क्रमश स्थान-स्थान पर महोत्सवादि का प्रादुर्भाव कराते, विषम दूषम काल के दर्प को दलन करते, अन्तरालवर्त्ति सकल जनता के नेत्रो को कुतुहल उत्पन्न करते, धर्म-स्थानो के उद्धार करवाते, दूर से ही दर्शनोत्कण्ठित भक्तो व स्वागतार्थ आते हुए

आचार्यवर्गो द्वारा वंद्यमान राजभूमिमण्डन श्री अल्लावपुर दुर्ग पहुचे। वहाँ उस प्रकार की प्रभावना का प्रकर्ष को नही सहन करने वाले म्लेच्छो की विप्रतिपत्ति को जानकर सूरि महाराज के शिष्योत्तम, राजसभामण्डन, गुरुगुणालकृत देह वाले श्री जिनदेव सूरि द्वारा विज्ञप्ति करने पर नरेश्वर ने वहुमानपूर्वक सन्मुख भेज कर मल्लिक के प्रति फरमान के साथ सकल स्वस्तिक वस्तु विशेष से जिनशासन की प्रभावना करते हुए डेढ मास रहकर अल्लाव-पुर से चले। फिर सुलतान ने श्री सिरोह महानगर में गुरु महाराज के सामने स्निग्ध देव दूष्य प्राय उत्तदश वस्त्र भेजकर अलकृत किया। गुरु महाराज हम्मीर वीर की राजधानी—रणथभोर—के निकट प्रदेश मे पहुचे। चिरोपचित भक्ति राग पूर्वक दर्शननिमित्त को भी अमृत कुण्ड-स्थान की भाँति अपने को धन्य मानने वाले, सामने आये हुए आचार्य-मुनि-श्रावकवृन्द से परिवृत्त युगप्रधान प्रभु मिती भाद्रपद शुक्ल २ के दिन राजसभा मे पधारे। आनद पूर्ण नेत्रो वाले सुलतान श्री महम्मद बादशाह ने अभ्युत्थान आचरण पूर्वक कोमल वाणी से श्री सूरिजी से कुशल पृच्छा की। उसने गुरु महाराज के हाथ का चुम्बन कर अत्यन्त स्नेह पूर्वक वडे आदर के साथ उनका आदर अपने हृदय पर रखा। गुरु महाराज ने भी तत्काल निर्मित नवीन आशीर्वाद काव्य द्वारा नरेश्वर का चित्त चमत्कृत किया। उसने महा महोत्सव के साथ सूरिजी को विशाल शाला वाली पौषधशाला मे भेजा। बादशाह ने गुरु महाराज के साथ जाने के लिए प्रधान पुरुषो, हिन्दू राजाओ और महामल्लिक श्री दीनार प्रमुखो को आदेश दिया।

हजारो वंदनार्थ चिर उत्कण्ठित और चिर दर्शन लालसा वाले श्रावको व नागरिको ने नमस्कार किया। कौतूहल प्रकृति से जानपद लोग भी साथ चल पडे। वन्दी वृन्द के विरुदावली, स्तवना करते, बादशाहि प्रसादित भेरी-वेणु-वीणा-मद्दल-मृदग-

पटु-पटह-शख युक्त भुगलादि विपुल वाजित्रो से दिग्‌दिगत को ध्वनित करते, विप्रवर्ग के वेदध्वनिपाठ और गन्धर्वों, नधवाओ द्वारा मगल गाते हुए तत्काल श्री सुलतान सराय की पौंपध शाला पहुँचे। सघ के प्रधान पुरुषो ने वधामणा महोत्सव किया। सकल सघ कारित महोत्सव सहित भाद्रपद शुक्ल ३ के दिन श्री पर्यूषण कल्प सूत्र वाचा। गुर्वागमन प्रभावना-लेख स्थान-स्थान पर पहुंचे, सारे देश का सघ रजित हुआ। सैकडो राज-वन्दी, वद्ध लोगो और वन्दी वनाये हुए सैकडो-हजारो श्रावको को छुड़ाया। करुणापूर्वक जैनेतर लोगो को भी कारागार से उन्मुक्त किया। अप्रतिष्ठित लोगो को प्रतिष्ठा दी और दिलाई। इस तरह अनेक प्रकार से जैन धर्म की प्रभावना की और कराई।

सूरि महाराज प्रतिदिन राजसभा मे पधार कर पण्डितो, वादिवृन्दो पर विजय प्राप्त कर धर्म-प्रभावना करते। क्रमशः चातुर्मास पूर्ण किया। एक दिन फाल्गुन महीने मे सुलतान ने अपनी माता 'मगदूम-इ-जहाँ' के दौलतावाद से आते समय चतुरगिणी सेना और परिवार सहित सुसज्जित होकर स्वागतार्थ सामने जाते हुए सूरिजी को भी साथ मे लिया। 'वडथूण' स्थान मे माता से मिलकर वादशाह ने सबको महादान दिया और प्रधान 'कवाहि' वस्त्र पहनाये। क्रमश राजधानी मे महोत्सव पूर्वक आये। गुरु महाराज को वस्त्र कर्पूरादि से सम्मानित किया।

सूरिजी ने मिति चैत्र शुक्ल १२ के दिन राजयोग मे सुलतान को पूछ कर शाही साईवान की छाया मे नन्दी मण्डाण कराके पॉच शिष्यो को दीक्षा दी। मालारोपण, सम्यक्त्व धारण आदि धर्मकृत्य कराये। थिरदेव के पुत्र ठक्कुर मदन ने व्यय किया। मिति आषाढ शुक्ल १० के दिन नव्य निर्मापित तेरह प्रतिमाओ की विस्तृत समारोह पूर्वक प्रतिष्ठा की। विम्ब-निर्माताओं ने, विशेषकर साहु महाराय पुत्र अजयदेव ने प्रचुर द्रव्यव्यय किया।

एक दिन सुलतान ने गुरु महाराज को दूर से आने मे प्रतिदिन कष्ट होता है, सोचकर स्वयमेव अपने महल के निकट अभिनव भवनादि से शोभित 'सराई' दे कर श्रावक सघ को वसने का आदेश दिया। सुलतान ने स्वय उस वस्ती का नाम "भट्टारक सराइ" दिया। बादशाह ने वही भगवान महावीर स्वामी का मन्दिर और पौषधशाला वनवाई। स० १३८९ मिती आषाढ कृष्ण ७ के सुमुहूर्त्त मे बादशाह के समादिष्ट गीत वाजित्र नाटकादि सम्पदा से प्रकटित अमित महोत्सवादि से स्वय सुलतान के मगल-क्रिया देते हुए भट्टारक गुरु पौषधशाला मे प्रविष्ट हुए। प्रीति दान से सन्तुष्ट किया। दीन अनाथ लोगो का दान से उद्धार किया।

एक बार मार्गसिर मास मे पूर्व देश की जय-यात्रा के निमित्त जाते समय सुलतान ने अपने साथ गुरु महाराज को लिया। स्थान-स्थान पर बन्दियो को छुडा कर धर्म-प्रभावना की। मथुरा तीर्थ का उद्धार किया। ब्राह्मणो को दानादि से सन्तुष्ट किया। सत्यप्रतिज्ञ गुरु महाराज को नित्य प्रवास से कष्ट होता समझ कर सुलतान ने खोजा जहाँमल्लिक के साथ आगरा नगर से राजधानी के प्रति वापस भेज दिया। हस्तिनापुर यात्रा के लिए फरमान ले कर सूरि जी स्वस्थान पधारे। चतुर्विध सघ को एकत्र कर चाहड शाह के पुत्र वोहित्थ शाह को सघपति तिलक किया और गुरु महाराज ने आचार्य आदि परिवार परिवृत श्री हस्तिनापुर तीर्थ की यात्रा के लिए प्रस्थान किया। स्थान-स्थान पर सघपति वोहित्थ ने महोत्सव किए। तीर्थभूमि मे पहुँच कर तीर्थ को वधाया। गुरु महाराज ने वहाँ नये वनवाये हुए शान्तिनाथ-कुन्थुनाथ और अरनाथ जिनेश्वर के विम्ब और अम्बिका देवी की प्रतिमा चैत्य स्थान मे प्रतिष्ठित किए। संघ वात्सल्यादि द्वारा सघ-

पत्ति और सघ ने महोत्सव किये। भाट-भोजक आदि लोगो का वस्त्र-भोजन-ताम्बूलादि से पूजा सत्कार किया।

गुरु महाराज ने यात्रा से लौटते ही मिती वैशाख शुक्ल १० के दिन समस्त दुरित नाशक श्री महावीर स्वामी के बिम्ब की महोत्सव पूर्वक स्थापना की। बादशाह के बनवाए हुए मन्दिर मे सघ के द्वारा वहाँ पूजा की जाती है। सुलतान के दिग्यात्रा से आने पर मन्दिर मे विशेष उत्सव प्रवर्त्तित होते हैं। सार्वभौम सम्राट उत्तरोत्तर अधिकाधिक मान दे कर गुरु महाराज को सम्मानित करता है। सूरिसार्वभौम श्री जिनप्रभसूरि की धर्म-प्रभावना का यशपटह सर्व दिशाओ मे बजता है। राजाधिराज के दिए हुए फरमान हाथ मे होने से श्वेताम्बर-दिगम्बर सर्व देश मे बिना किसी उपसर्ग बाधा के विचरण करते हैं। यवन सैन्य परिभूत दिशि चक्र किये होने पर भी खरतर गच्छालकार गुरु महाराज के प्रसाद से फरमान ग्रहण करते शत्रुञ्जय-गिरनार-फलौदी आदि तीर्थ निर्भय-निरापद हुए। इस प्रकार के धर्मकृत्यो से श्री पादलिप्तसूरि-मल्लवादी-सिद्धसेन दिवाकर-हरिभद्रसूरि-हेमचन्द्रसूरि आदि पूर्वाचार्यों को उद्योदित किया। अधिक क्या कहा जाय, सूरिचक्रवर्ती गुरु महाराज के गुणो से खिचे हुए नरेन्द्र भी सकल धर्म कार्यारम्भ मे प्रवर्त्तन करता था।

चैत्य-वसतियो मे प्रति प्रात काल शखध्वनि बजती रहती है। धार्मिक लोगो द्वारा वीरविहार मे मादल, मृदङ्ग, भुगल, ताल बजते हुए प्रेक्षणीय महापूजाएँ की जाती हैं। भगवान महावीर के आगे भव्य लोग कर्पूर, अगर, परिमल युक्त धूप दे कर उसकी सुगन्धि दिग्मंडल मे व्याप्त करते हैं। हिन्दू राज्य के समान सचरण करते हैं। इस पचम काल और अनार्य राज्य मे भी चतुर्थ आरे की भाँति जो जिन-शासन की प्रभावना होती है वह गुरु-शिक्षा का ही प्रभाव है। और तो क्या ? गुरु महाराज के चरणो

मे पाँचो दर्शनी लोग किंकर की भाँति सपरिवार लौटते हैं। गुरु महाराज के वचनो की प्रतीक्षा मे प्रतीक्षित रहते हैं। गुरु महाराज के दर्शनो के उत्सुक इह—परलोक कार्यार्थी परतीर्थिक लोग दरवाजे पर स्थित रह कर निरन्तर सेवा करते हैं। गुरु महाराज नरेश्वर की अभ्यर्थना से नित्य राजसभा मे जाते है और वन्दी वर्ग को मुक्त कराते हैं।

सच्चारित्र वाले सूरि महाराज अपनी उच्च कोटि की चर्या मे प्रवृत्त रह कर पद-पद पर धर्म-प्रभावना करते हुए जिनोक्त युक्तियुक्त वचनो से निरन्तर नरेश्वर के मन मे कुतूहल उत्पन्न करते हैं। गगाजल की भाँति स्वच्छ चित्त वाले वे अपनी यशश्चन्द्रिका द्वारा अन्तराल को धवलित करते हैं। उनके वचनामृत से जीव लोक उपजीवित है। स्वदर्शनी व परदर्शनी लोग समग्र व्यापार मे आज्ञा शिरोधार्य करते है। युगप्रधान प्रभु स्व पर सिद्धान्तो की अनन्य असाधारण भगिमा से व्याख्या करते हैं।

इस प्रकार धर्म-प्रभावनाप्रकारो से परिभाव्यमान पवाडे—कीर्त्ति जिनके नित्य ही वर्त्तमान है ऐसो अपरिमित कीर्त्ति को अल्पमति कैसे कह सकते है ?

ये सूरि महाराज करोडो वर्ष जीवे, जिन-शासन की चिरकाल प्रभावना करे।

कन्नाणय महावीर कल्प के परिशिष्ट रूप मे श्री जिनप्रभ सूरिजी के प्रभावना अगो की यह गुणस्तुति लेशमात्र—सक्षेप मे कही गई है।

●

५२ श्री कुल्पाक ऋषभदेव-स्तुति

श्री कुल्पाक प्रासाद के आभरण, सत्पुरुषो के शरण्य, माणिक्य देव नामक श्री ऋषभदेव जिनेश्वर के नमस्कार करता हूँ।

श्री कुल्पाकपुर लक्ष्मी के शिरोभूपण प्रासाद मे पवित्र रूप से अधिष्ठित पृथ्वी पर माणिक्य देव नाम से प्रसिद्ध जो ऋषभदेव हैं उनके चरणकमलो को नमस्कार करता हूँ।

प्रसन्न चित्त वाले इन्द्र चन्द्र आदि के मुकुटो के श्रेणितट से जिनके चरण और आसन का घर्षण होता है ऐसे तीर्थंकरो का समूह मेरे दारुण दु.ख रूपो वृक्षो की श्रेणि को पीस डालने के लिए मत्त गजेन्द्र है, वे मेरे लिए गज बने।

हेतु, उपपत्तियो से निरूपित वस्तु तत्त्व वाला, स्याद्वादपद्धति से दुर्नय समूह को उसमे समावेश करने वाला, उत्तम सिद्धपल्ली के लिए विपिन के समान, तीन भुवन मे पूजा का पात्र श्री जिनेन्द्र-वचन का मै शरण लेता हूँ।

श्री ऋषभदेव भगवान के शासन रूपी आम्रवन की रक्षिका नवविद्रुम के समान शरीर की कान्ति वाली है। जो खेचर चक्री (गरुड) पर चढ कर आकाश मे विचरती हैं, मनोहर चक्र हाथ मे धारण करती है वह चक्रेश्वरी देवी कल्याणकारी हो।

●

५३. आमरकुण्ड पद्मावती देवी-कल्प

तिलग जनपद विभूषण और मनोहर आमरकुण्ड नगर मे पर्वत-शिखर के भुवन मे विराजमान स्थित श्री पद्मावती देवी जयवन्त हो।

कल्याण करने वाले समस्त गुणगण नीरन्ध्र युक्त आन्ध्र देश मे आमरकुण्ड नामक नगर है। गगनचुम्बी मनोहर हवेलियो की श्रेणी से नयनाभिराम, नाना प्रकार के छाया वाले वृक्षो से परिष्कृत, मधुर-मधुर गूँजते हुए मधुकरो के समूह से घिरे हुए पुष्पो के सौरभ से सुगन्धित दिशाओ वाला, निर्मल पानी से भरे हुए बडे-बडे सरोवरो और नदो से शोभित और शत्रुओ से क्षुब्ध न होने वाला अदुर्ग होने पर भी दुर्गयुक्त वह नगर है। उस श्रेष्ठ नगर का क्या वर्णन करे? जहाँ करवीर के पुष्प है वे भी कस्तूरी की गन्ध वाले है। विशिष्ट गन्ने और बडे-बडे केले के फल मनोहर नार-गियाँ, अनेक प्रकार के आम्र, सरस पनस, पुन्नाग, नागवल्ली, पूग-सुपारी अत्यन्त स्वादिष्ट शालि और नारियल आदि के फल आदि मनोहर खाद्य हैं। प्रति ऋतु मे सुगन्ध से समस्त दिशाओ को सुवासित करने वाली शालि फलती है। परीक्षको द्वारा दुकानो मे पट्टाशुक आदि, विभिन्न प्रकार के शस्त्रो का समूह, मौक्तिक, रत्न आदि अगणित पण्य वस्तुएँ देखी जाती है।

इधर से ही निष्पन्न मुरगल नामक मनोहर एकशिला पत्तन है। उसके समीप भूमि का अलकार और विष्णुपद आकाशचुम्बी शिखरो की परम्परा-ऊँची चोटियो वाला रमणीय पर्वत है जो अन्य पर्वतो के गर्व को चूर्ण करने वाला समर्थ पर्वतराज है।

उसके ऊपर परिनाह आरोहशाली श्री ऋषभदेव और शान्तिनाथादि प्रतिमाओ से अलकृत मनुष्यो के मन को प्रसन्न करने वाले शुभ प्रासाद शोभायमान है। वहाँ एक पवित्रतर और पारगत भवन मे छद्म से मुक्त मन वाले विषय-सुखो से जिनका हृदय जरा भी क्षुभित नही होता था और अपनी कृपा से सहृदय के हृदयो को आह्लादित करने वाले थे, ऐसे कामदेव को जीतने वाले और विस्मयकारी चारित्र-आचरण से वश की गई पद्मावती से लब्ध-प्रतिष्ठ मेघचन्द्र नाम के दिगम्बर आचार्य थे, जिनकी सेवा अनेक लोग करते थे। वे एक वार श्रावक गोष्ठी को कह कर दूसरे स्थान पर विचरने के लिए प्रस्थान कर गये। ज्यो ही कितनी भूमि चले, अपने अस्तालकार पुस्तक नही देखी तव उन्होने कहा—अहो! हम कैसे प्रमादी हैं कि अपने हाथ की पुस्तक भी भूल गये। ऐसा क्षणमात्र विषाद कर के शीघ्र ही माधवराज नामक क्षत्रियजातीय एक छात्र को पुस्तक लाने के लिए वापस भेजा। वह सरल वुद्धि वाला छात्र लौट कर ज्यो ही मठ मे प्रवेश करता है त्यो ही एक अद्भुत रूप-कान्ति वाली स्त्री उस पुस्तक को उरु पर रखे वैठी थी, देखा। ज्यो ही वह निर्भीक और अक्षुब्ध चित्त से उस पर रखी हुई उस पुस्तक को लेने लगा त्यो ही वह वरवर्णिनी उस पुस्तक को अपने कन्धे पर धारण किये हुए है ऐसा देखा। इसके वाद वह विद्यार्थी "यह मेरी माता के समान है" ऐसा सोच कर उसकी जघाओ पर भी पाँव दे कर उसके स्कन्ध से पुस्तक को लेने लगा। तव उस स्त्री ने देखा कि यह व्यक्ति राज्य के योग्य है ऐसा सोच कर हाथ पकड लिया और वोली—वत्स! तुम कुछ वर माँगो! वह मैं तुम्हे दू! मैं तुम्हारे साहस से तुष्ट हुई हूँ! शिष्य ने कहा—ससार मे एकमात्र वद्य मेरे गुरु मुझे सव प्रकार के अभिरुचित अर्थ को देने मे समर्थ ही है, इसलिए हे शुभवती! मैं आपसे क्या माँगू ? ऐसा कह कर और

पुस्तक ले कर वह छात्र अपने आचार्य के पास आ गया। वहाँ का सारा स्वरूप निवेदन कर पुस्तक आचार्य को दे दी। क्षपणक गणाधिपति वोले—भद्र वह स्त्री मात्र नही, किन्तु वह भगवती पद्मावती देवी है। इसलिए जाओ और मनोहर पद्य लिखा हुआ यह पत्र उन्हे दिखलाओ।

गुरु के आदेशानुसार वह छात्र शीघ्र ही मठ मे लौटा और उस देवी को वह पत्र समर्पण कर आगे खडा रहा। देवी ने उस पत्र को पढा। यथा—"आठ हजार हाथी, नव कोटि पदाति, इतने ही रथ तथा घोडे एव एक लाख मुद्राओ का कोष इसे दीजिये!" भगवती ने भी पद्यार्थ को समझ कर उस शिष्य को एक चतुर घोडा दिया और बोली—आप इसके ऊपर चढ कर जाओ, जो इस पत्र मे लिखा है वह सव तुम्हारे पीछे ही आ जायगा। केवल पहाडी मार्ग से तुम जाना और पीछे मत देखना।" ऐसा उसका वचन "ऐसा ही होगा" कहते हुए स्वीकार कर कृत्य को समझने वाला वह पहाड की गुफा मे अश्वसहित प्रवेश कर गया और वारह योजन तक चलता रहा। इसके वाद आते हुए हाथियो के समूह की घटाओ से रणत्कार की तुमुल और जोर की ध्वनि सुनकर वह छात्र उतावल से कुतूहलपूर्वक पीछे मुडकर सिंहावलोकित न्याय से देखने लगा। उसने हाथी, घोडे आदि समूह से परिपूर्ण सेना को देखा और विस्मय रसमय हृदय वाला होने से वही पर वारह योजन वाद जिस घोडे पर चढा था वह घोडा ठहर गया। तदनन्तर परम जैन श्री माधवराज ने सेना से घिरे हुए वही नगर वसा कर उसमे देवी का भुवन वनवाया, फिर आमरकुण्ड नगर मे आकर भूपालमौलि लालित्य वाली राज्यलक्ष्मी का पालन किया। उसे स्वर्ण-कलश, दण्ड, ध्वज से शोभायमान गगनचुम्वी शिखर वाले प्रासाद का निर्माण कराया और उसमे चित्रीयमान नमस्कार करते हुए मनुष्ययुक्त श्री

पद्मावती देवी को प्रतिष्ठित किया। वह पूर्ण भक्तियुक्त हृदय से त्रिकाल अष्टप्रकारी पूजा करता। आज भी भुवनोदरव्यापी माहात्म्य अमन्द लक्ष्मी वाला भगवती का भव्य मन्दिर, भव्य जनता से पर्युपास्यमान विद्यमान है।

उस पहाडी गुफा के द्वार पर चौडा शिलापट्ट आज भी लगा हुआ है कि जिससे उस मार्ग से सब लोग नही जा सकते क्योकि वहाँ शिला को उघाड कर विस्तारपूर्वक पूजा करके कितनी कला तक लोटते-रेंगते हुए जाय, उससे आगे बैठा-बैठा चले और आगे विशेष चौडाई मे ऊँचा देवी के मन्दिरपर्यन्त जाना चाहिए। सकडो विघ्नो की सम्भावना और कष्ट के भय से प्राय कोई उस गुफा के द्वार को चतुरतापूर्वक उघाडने का साहस नही करता है। शिला से ढँके हुए मुख वाले गुफास्थान मे ही सभी श्रद्धालुगण पद्मावती की पूजा करते हैं और सभी प्रकार की अभीष्ट सिद्धियो को प्राप्त करते हैं। माधवराज के वशज पुरटिरित्तमराज, पिण्डिकुण्डिमराज, पोल्लराज, रुद्रदेव, गणपतिदेव हुए हैं। गणपति-देव की पुत्री रुद्रमहादेवी ने पैंतीस वर्ष तक राज्य किया, इसके बाद श्री प्रतापरुद्र राजा ने राज्य किया। ये ककती ग्रामवासी होने से काकतीय नाम से प्रसिद्ध हैं।

इस प्रकार आमरकुण्डा नामक पद्मावती का यह कल्प सक्षेप से श्री जिनप्रभसूरि ने यथाश्रुत कहा।

श्री आमरकुण्ड पद्मावती का कल्प समाप्त हुआ। इनकी श्लोक-सख्या ५९ और २२ अक्षर हैं।

५४. चतुर्विंशतिजिनकल्याण-कल्प

अतीत, वर्त्तमान और अनागत चौवीस जिनेश्वरो का उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी मे हुए अनुलोम प्रतिलोम से पाँच भरत और पाच ऐरवत मे स्वर्गादि से पृथ्वी पर आगमनरूप हुए च्यवन-कल्याणक है, पच महाविदेहो शास्वत क्षेत्रो के नही ।

एकाशना, नीवी, आयबिल और उपवास से प्रथम और दूसरे पच कल्याणको मे से प्रथम और दूसरा एकाशना, नीवी, आयबिल और उपवास आदि करके सक्षेप से पच कल्याणको का अपराध करो ।

विस्तृत रूप से आराधन करने वाले को च्यवन और जन्म कल्याणक के दिन उपवास करना तथा दीक्षादि तीन कल्याणक जिनेश्वरो द्वारा किए हुए तप से आराधन करना चाहिए ।

सुमतिनाथ भगवान नित्यभक्त से दीक्षित हुए और वासुपूज्य स्वामी ने उपवास से दीक्षा ली । पार्श्वनाथ और मल्लिनाथ ने अष्टम तप पूर्वक दीक्षा ली । अवशिष्ट जिनेश्वरो ने छट्ठ भक्त (२ उपवास) से अभिनिष्क्रमण किया ।

ऋषभदेव, मल्लिनाथ, नेमिनाथ और पार्श्वनाथ को अष्टम तप से केवलज्ञान हुआ । वासुपुज्य भगवान को चतुर्थ भक्त से एव शेष तीर्थंकरो को छट्ठ भक्त से केवलज्ञान हुआ ।

ऋषभदेव चतुर्थ भक्त से, महावीर स्वामी छट्ठ भक्त से, नित्य-भोजी सुमतिनाथ भी उपवास से सिद्ध हुए ।

जिन-पथ के आराधक इस प्रकार कल्याणक तप करके विधि-पूर्वक उद्यापन करते हैं । वे क्रमश. परम पद को प्राप्त करते है । जिणपह शब्द से कर्त्ता ने अपना नाम भी दे दिया है ।

मभी जिनेश्वरो के च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवल और मोक्ष ये पच कल्याणक हुए हैं, किन्तु भगवान महावीर के गर्भापहारसहित छ कल्याणक हैं।

इन क्षेत्रो मे होने वाले जिनेश्वरो के पंचकल्याणक जिसने आराधन किए उसने दश क्षेत्रो मे होने वाले तीन काल के अर्हन्तो की उपासना की।

भव्यजनो के मन के अभीष्ट सकल्पो को पूर्ण करने वाले इस पंचकल्याणक तप को जो भव्य पढते सुनते है उन्हे सिद्धिश्री अवश्य वरण करती है।

इसकी ग्रन्थ संख्या १३१ अक्षर १५ है।

●

५५. तीर्थंकर अतिशय-विचार

पहले चार सहज अतिशय, उसके वाद घाती कर्मो के क्षय से ग्यारह अतिशय और देवकृत १९ अतिशय होते हैं। इस प्रकार कुल ३४ अतिशय हुए। इनमे अपायापगम अतिशय, ज्ञानातिशय, वचनातिशय और पूजातिशय का समावेश हो जाता है।

ग्रन्थ-संख्या ? अक्षर ७ है।

●

५६. पञ्चकल्याणक-स्तवन

जिनेश्वर भगवान को नमस्कार करके उन्ही के च्यवन-जन्म-दीक्षा-ज्ञान और निर्वाण के पंच कल्याणको का कीर्त्तन करता हूँ। कार्त्तिक कृष्ण ५ को सभवनाथ का, वारस को नेमिनाथ का च्यवन और पद्मप्रभ का जन्म हुआ।

तेरस को पद्मप्रभ की दीक्षा, अमावस्या को वीर प्रभु का निर्वाण, काती सुदि तीज को सुविधिनाथ का और अरनाथ स्वामी का वारस को निर्वाण हुआ। मार्गशीर्ष कृष्ण पचमी को सुविधिनाथ का जन्म, छठ के दिन सुविधिनाथ की और दशमी को महावीर स्वामी की दीक्षा हुई।

मार्गशीर्ष वदि ग्यारस को पद्मप्रभ का मोक्ष, सुदि दशमी को अरनाथ का मोक्ष और जन्म हुआ। ग्यारस को अरनाथ की दीक्षा, मल्लिनाथ का जन्म दीक्षा और ज्ञान, नमिनाथ का भी केवलज्ञान हुआ।

मार्गशीर्ष शुक्ल १४ जन्म और पूर्णिमा को संभवनाथ की दीक्षा हुई। पोप कृष्ण १० को पार्श्वनाथ का जन्मोत्सव हुआ। ग्यारस को पार्श्वनाथ की दीक्षा, वारस को चन्द्रप्रभ का जन्म और तेरस के दिन दीक्षा हुई।

पौष कृष्ण चतुर्दशी को शीतलनाथ को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। पोष सुदि ६ को विमलनाथ और नवमी के दिन शान्तिनाथ ने दीक्षा ली। सुदि चतुर्दशी को अभिनदन एव पूर्णिमा को धर्मनाथ का मनुष्यो को आनद देने वाला केवलज्ञान हुआ।

माघ कृष्ण छठ को पद्मप्रभ का च्यवन, वारस को शीतलनाथ का जन्म और दीक्षा दो कल्याणक हुए। ऋषभदेव त्रयोदशी को

निर्वाण प्राप्त हुए। अमावस्या के दिन श्रेयासनाथ को केवलज्ञान हुआ।

माघ शुक्ल दूज के दिन अभिनदन का जन्म और वासुपूज्य का केवलज्ञान ये दो कल्याणक हुए। तृतीया के दिन धर्मनाथ और विमलनाथ जिनेश्वर का जन्म हुआ। चतुर्थी के दिन विमलनाथ की दीक्षा हुई और सुदि अष्टमी को अजितनाथ का जन्म हुआ।

अजितनाथ स्वामी ने माघ शुक्ल नवमी को दीक्षा ली और बारस को अभिनदन स्वामी की दीक्षा एव धर्मनाथ जिनेश्वर की दीक्षा भी तेरस को प्रसिद्ध है। फाल्गुन कृष्ण छठ को सुपार्श्वनाथ को केवलज्ञान और सप्तमी को निर्वाण हुआ। उसी दिन चन्द्रप्रभ भगवान को केवल ज्ञान हुआ।

फाल्गुन कृष्ण नवमी को सुविधिनाथ का च्यवन और ग्यारस के दिन ऋषभदेव को केवलज्ञान हुआ। श्रेयांसनाथ का जन्म और मुनि सुव्रत का केवलज्ञान बारस के दिन हुआ। त्रयोदशी को श्रेयासनाथ भगवान ने चारित्र लिया। चतुर्दशी वासुपूज्य का जन्म और अमावस्या के दिन दीक्षाकल्याणक है।

फाल्गुन शुक्ल दूज को अरनाथ जिनेश्वर का च्यवन हुआ। चतुर्थी को मल्लिनाथ और अष्टमी को सभवनाथ जी का च्यवन कल्याणक है। बारस के दिन सुमतिनाथ की दीक्षा और मल्लिनाथ जिनेश्वर का निर्वाण हुआ। चैत्र कृष्ण चतुर्थी को पार्श्वनाथ भगवान का केवलज्ञान और च्यवनकल्याणक है।

चैत्र कृष्ण पचमी को चन्द्रप्रभ भगवान का च्यवन, अष्टमी के दिन ऋषभदेव प्रभु का जन्म, और दीक्षाकल्याणक हैं। चैत्र शुक्ल तृतीया को कुन्थुनाथ का केवल ज्ञान, पचमी को अनतनाथ का अजितनाथ का और सभवनाथ का भी निर्वाण हुआ।

चैत्र शुक्ल नवमी के दिन सुमतिनाथ का निर्वाण और ग्यारस को केवलज्ञान हुआ। त्रयोदशी के दिन भगवान महावीर का जन्मोत्सव हुआ। पूर्णिमा के दिन पद्मप्रभ को केवलज्ञान हुआ। वैशाख कृष्ण प्रतिपदा के दिन कुन्थुनाथ भगवान का निर्वाण हुआ।

वैशाख कृष्ण द्वितीया को शीतलनाथ का निर्वाण, पचमी को कुन्थुनाथ की दीक्षा, और छट्ठ के दिन शीतलनाथ का च्यवन हुआ। दशमी के दिन नमिनाथ का मोक्ष, त्रयोदशी को अनन्तनाथ का जन्म और चतुर्दशी को उनकी दीक्षा और केवलज्ञान कल्याणक हुआ।

वैशाख कृष्ण चतुर्दशी के दिन निर्मल चित्त वाले कुन्थुनाथ भगवान का जन्म और शुक्ल चतुर्थी को अभिनन्दन का च्यवन हुआ। सप्तमी के दिन धर्मनाथ तीर्थंकर का च्यवन और अष्टमी के दिन अभिनन्दन स्वामी का निर्वाण हुआ।

वैशाख शुक्ल अष्टमी को सुमतिनाथ का जन्म और नवमी को दीक्षा हुई। दशमी के दिन महावीर स्वामी को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। द्वादशी के दिन विमलनाथ का एव त्रयोदशी को अजितनाथ का च्यवनकल्याणक है। ज्येष्ठ वदि छठ को श्रेयासनाथ का च्यवन हुआ।

ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी को मुनि सुव्रत का जन्म और नवमी के दिन निर्वाण हुआ। त्रयोदशी के दिन शान्तिनाथ स्वामी का जन्म एव निर्वाण हुआ एव चतुर्दशी को उन्ही का दीक्षा कल्याणक है। शुक्ल पचमी को धर्मनाथ स्वामी का निर्वाण और नवमी को वासुपूज्य जिनेश्वर का च्यवनकल्याणक है।

ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशी को सुपार्श्वनाथ जी का जन्म और त्रयोदशी को दीक्षा हुई। आषाढ कृष्ण चतुर्थी को ऋषभदेव

भगवान का च्यवनकल्याणक है। सप्तमी को विमलनाथ का निर्वाण, नवमी के दिन नमिनाथ प्रभु की दीक्षा हुई। शुक्ल छठ को वीर प्रभु का च्यवन और अष्टमी के दिन श्री नमिनाथ का निर्वाण हुआ।

आषाढ शुक्ल चतुर्दशी के दिन श्री वासुपूज्य स्वामी सिद्ध हुए। श्रावण कृष्ण तृतीया को श्रेयासनाथ का निर्वाण हुआ। सप्तमी के दिन अनन्तनाथ का च्यवन, अष्टमी को नमिनाथ का जन्म, नवमी को कुन्थुनाथ का च्यवन और शुक्ल द्वितीया को सुमतिनाथ जी की दीक्षा हुई।

श्रावण शुक्ल पचमी के दिन नेमिनाथ भगवान का जन्म और दीक्षा, अष्टमी को पार्श्वनाथ जी का निर्वाण एव पूर्णिमा को मुनि सुव्रत भगवान का च्यवन हुआ। भाद्रपद कृष्ण सप्तमी को शान्तिनाथ जी का च्यवन और चन्द्रप्रभ का मोक्ष हुआ। अष्टमी के दिन सुपार्श्वनाथ तीर्थंकर का च्यवनकल्याणक है।

भाद्रपद शुक्ल नवमी को सुविधिनाथ जिनेश्वर का निर्वाण हुआ। आश्विन कृष्ण अमावस्या को नेमिनाथ भगवान केवली हुए। पूर्णिमा को नमिनाथ का च्यवन कल्याणक है।

श्री सोमसूरि स्तवना करते हुए कहते है कि वे हमे मगल-कारी हो।

श्री सोमसूरि द्वारा कृत कल्याणकस्तवन समाप्त हुआ। यह २० काव्यो मे है।

५७. कुल्पाकमाणिक्यदेवतीर्थ-कल्प

श्री कुल्पाकपुर श्रेष्ठ के मडन माणिक्यदेव ऋषभ स्वामी का कल्प किञ्चित् सक्षेप से यथाश्रुत लिखूँगा ।

पूर्वकाल मे भरत चक्रवर्त्ती ने अष्टापद पर्वत पर अपने-अपने वर्ण-प्रमाण-सस्थानयुक्त चौबीस तीर्थङ्करो की सिहनिषद्या प्रासाद मे रत्नमय प्रतिमाएँ बनवाई । वह मनुष्यो के लिए अगम्य होगा, ऐसा सोचकर एक ऋषभदेव स्वामी की एक प्रतिमा लोकानुग्रहार्थ स्वच्छ मरकत मणिमय, कधो पर जटायुगल, चिवुक पर सूर्य, भालस्थल मे चन्द्र और नाभि पर शिव-लिग वाली प्रतिमा बनवाई, जो माणिक्यदेव नाम से विख्यात हुए। कालान्तर मे यात्रा के लिए आये हुए विद्याधरो ने उसे देखा—वह अपूर्व रूप वाली थी । अत. विस्मित मन से विमान मे रखकर वैताढच पर्वत की दक्षिण श्रेणी मे ले गए और उसकी हार्दिक भक्तिपूर्वक पूजा करने लगे ।

एक बार नारद ऋषि भ्रमण करते हुए वैताढच पर्वत पर गए । उन्होने उस प्रतिमा को देख कर विद्याधरो से पूछा—यह कहाँ से आई ? उन्होने कहा—हम अष्टापद से लाये है । जब से हम इनकी पूजा करते है तब से हमारी ऋद्धि दिनो-दिन बढती जा रही है । यह सुनकर नारद ने स्वर्ग मे इन्द्र को इस प्रतिमा का माहात्म्य कहा । इन्द्र ने स्वर्ग मे मँगा कर भक्तिपूर्वक पूजा करनी प्रारम्भ की । उसने मुनि सुव्रत और और नमिनाथ भगवान के अन्तराल यावत् पूजा की । इसके पश्चात् लका मे त्रैलोक्य कण्टक रावण उत्पन्न हुआ । उसकी भार्या मन्दोदरी परम सम्यक्-दृष्टि थी । उसने नारद से इस रत्न-बिम्ब का माहात्म्य श्रवण कर उसकी पूजा करने का गाढ अभिग्रह ले लिया । महाराजा रावण

ने यह वृत्तान्त ज्ञात कर इन्द्र की आराधना की। उसने सन्तुष्ट होकर वह प्रतिमा महादेवी को समर्पित की। वह प्रसन्नतापूर्वक त्रिकाल पूजा करने लगी।

एक वार रावण ने सीतादेवी का अपहरण किया और मदोदरी के समझाने पर भी उसने उसे नही छोडा तो प्रतिमा के अधिष्ठायक ने स्वप्न मे मन्दोदरी को लंका का भग और गवण का विनाग वतलाया। उसने उस प्रतिमा को समुद्र मे डुवा दिया वहाँ देवो द्वारा पूजा होने लगी।

अव कन्नड देग के कल्याणनगर मे गकर नामक जिनेन्द्र-भक्त राजा हुआ। किसी मिथ्यात्वी देव ने उसके राज्य मे कुपित होकर महामारि रोग पैदा कर दिया। राजा चिन्तित हुआ। पद्मावती देवी ने उसे दुखी देखकर रात्रि मे स्वप्न मे कहा—महाराज! यदि समुद्र मे से माणिक्यदेव को अपने नगर मे लाकर पूजा करो तो कल्याण हो! तव राजा ने समुद्र तट पर जाकर उपवास किया। सन्तुष्ट लवण-समुद्र के अधिष्ठाता ने प्रकट होकर राजा से कहा—इच्छानुसार रत्न ग्रहण करो! राजा ने कहा—राजा ने कहा—मुझे रत्नादि से प्रयोजन नही, मन्दोदरी की स्थापित प्रतिमा दो! देव ने प्रतिमा निकाल कर राजा को समर्पित की और कहा—तुम्हारे देश के लोग सुखी होगे, परन्तु मार्ग चलते जहाँ तुम्हे सन्देह हो, वही प्रतिमा स्थापित कर देना! राजा ने यह वात मान ली। देवता के प्रभाव से वछडो की जोडी पर जुते हुए गाडे मे विराजमान विम्व आने लगा। दुर्गम मार्ग को उल्लघन कर राजा के मन मे सगय हुआ कि भगवान आते हैं कि नही? तव शासनदेवी तिलग देश कुल्पाक नगर—जो पण्डितो द्वारा "दक्षिण वाराणसी" नाम से प्रसिद्ध है—मे प्रतिमा को स्थापित किया। पहले यह अत्यन्त निर्मल मरकतमणि की थी,

परन्तु चिरकालपर्यन्त क्षारसमुद्र-नीर के सग कठिनाङ्ग हो गई।

भगवान माणिक्यदेव को स्वर्ग से लाये ग्यारह लाख असी हजार नौ सौ पाँच वर्ष बीत गए। राजा ने वहाँ श्रेष्ठ प्रासाद और देव-पूजार्थ बारह गाँव दिए। विक्रम सवत् ६८० पर्यन्त भगवान अन्तरिक्ष स्थित रहे। फिर म्लेच्छो का प्रवेश ज्ञात कर सिंहासन पर विराजमान हुए। यह प्रतिमा अपनी अपूर्व कान्ति से भव्य जीवो के नयनो मे अमृत वर्षा करती है।

क्या यह प्रतिमा टकोत्कीर्णित है या खान से लायी हुई है ? क्या नागकुमार ने घडी है ? यह वज्रमय है या नीलमणिमय है ? निश्चय नही किया जाता। कदलीस्तम्भ जैसी दिखाई देती है। आज भी भगवान के न्हवण-जल से दीपक जलता है। आज भी न्हवण-जल से मिट्टी को भिगो कर अन्धे की आँखो पर बाँधने से नेत्र ज्योतिसहित हो जाते हैं। आज भी तीर्थानुभाव से चैत्यमण्डप से झरते हुए जल-सीकर यात्री लोगो के वस्त्रादि को सिक्त करता है। प्रभु के आगे से साँप काटा मनुष्य भी उठ खडा होता है। इस प्रकार अनेक प्रकार के प्रभाव वाले महातीर्थ का माणिक्यदेव का यात्रा-महोत्सव व पूजा जो करते, कराते हैं, अनुमोदन करते है वे लोग इहलोक और पारलौकिक सुखश्री को प्राप्त करते हैं।

श्री जिनप्रभसूरि जी द्वारा सक्षेप से वर्णित यह माणिक्यदेव का कल्प जीवो का कल्याण करे।

श्री माणिक्यदेव तीर्थ-कल्प समाप्त हुआ। इसकी ग्रथ-सख्या ४४ अक्षर ५ हैं।

●

५८. श्रीपुर-अन्तरिक्षपार्श्वनाथ-कल्प

प्रकट प्रभावशाली श्रीपुर के अलकार पार्श्वनाथ भगवान को नमस्कार करके अतरिक्ष स्थित उनकी प्रतिमा का सक्षिप्त कल्प कीर्त्तन करता हूँ।

पूर्वकाल मे अर्द्धचक्री प्रतिवासुदेव दशग्रीव रावण ने मालि, सुमालि नामक अपने सेवको को कही किसी कार्य के लिए भेजा। आकाश मार्ग से विमानारूढ़ जाते हुए उनके भोजन का समय हो गया। पुष्प-वटुक ने सोचा—मैंने आज उतावल मे जिन-प्रतिमा का करण्डिया घर पर ही भुला दिया, ये दोनो पुण्यात्मा देव-पूजा किए विना कही भी भोजन नही करेगे। एवं देवपूजा के समय करण्डिया न देखकर मुझ पर रुष्ट होगे। उसने विद्यावल से पवित्र वालुका की नवीन भावितीर्थङ्कर पार्श्वनाथ की प्रतिमा तैयार की। मालि-सुमालि ने पूजन करके भोजन किया। पुष्प-वटुक ने प्रतिमा आकाश मार्ग से प्रस्थान करते समय निकटवर्ती सरोवर के जल मे डाल दी। देवता के प्रभाव से वह प्रतिमा सरोवर मे अखण्ड रही। कालक्रम से उस तालाव का पानी थोडा रह गया और जल से भरे खड्डे की भाँति लगा।

कितने ही काल पश्चात् चिंगउल्ल देश के चिंगउल्ल नगर मे श्रीपाल नामक राजा हुआ। वह सर्वाङ्ग मे कुष्ठ व्याधि से ग्रस्त था। एक वार वह शिकार खेलने के लिए गया, वहाँ प्यास लगने पर क्रमश. उस खड्डे पर पहुंचा। मुह हाथ धोकर पानी पिया तब उसका अग-अवयव कनक-कमलोज्वल नीरोग हो गया। घर आने पर महादेवी ने राजा को देख कर साश्चर्य पूछा—स्वामिन्! आज अपने कही स्नानादि किया? राजा के यथास्थित कहने पर

उसने सोचा—अहो ! वह दिव्य जल है। दूसरे दिन वह राजा को वहाँ ले गई, सर्वाङ्ग-प्रक्षालन किया जिससे राजा का सारा शरीर अभिनव हो गया। देवी ने बलि-पूजादि करके कहा—यहाँ जो देवता हो वे अपने को प्रकट करे।

घर आने पर रानी को देवता ने स्वप्न मे कहा—यहाँ भावी तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा रखी हुई है, उसी के प्रभाव से राजा को आरोग्यलाभ हुआ है। उस प्रतिमा को गाडे मे चढाकर सात्त दिन के जन्मे बछडो को कच्चे सूत ततु की रस्सी मात्र से जोत कर राजा स्वय सारथी बन कर अपने स्थान के प्रति ले चलें। जहाँ भी राजा पीछे मुड कर देखेंगे वही प्रतिमा स्थिर हो जायगी।

राजा ने खड्डे के जल को आलोडित्त कर प्रतिमा प्राप्त की और उसी प्रकार विधि करके प्रतिमा को लेकर चला। कितनी ही दूर जाने पर राजा ने प्रतिमा आती है कि नही ? यह जानने के लिए पीछे सिंहावलोकन किया। प्रतिमा वही आकाश मे ठहर गई, गाडी आगे निकल गई। राजा ने अधृति से प्रतिमा को न देखकर वही पर अपने नाम से श्रीपुरनगर बसाया, वही मन्दिर निर्माण कराया और बडे भारी समारोह के साथ प्रतिमा प्रतिष्ठित्त की गई। राजा उसकी त्रिकाल पूजा करने लगा। आज भी वह प्रतिमा उसी प्रकार अतरिक्ष मे ठहरी हुई है। पूर्वकाल मे बेहडे-घडे सहित सिर पर रखे स्त्री प्रतिमा के सिंहासन के नीचे से निकल जाती थी। कालक्रम से भूमि ऊँच हो जाने से या म्लेच्छादि दूपित्त कालानुभाव से नीची-नीची होते वर्त्तमान मे केवल वस्त्र ही प्रतिमा के नीचे से निकलता है। दीपकप्रभा भी सिंहासन और भूमि के बीच दिखाई देती है।

जब वह प्रतिमा गाडी पर चढाई, तब अम्बा देवी और क्षेत्र-

पाल भी प्रतिमा के साथ थे। उतावलवश अम्बा देवी के सिद्ध-वुद्ध पुत्रो मे से एक तो देवी ने लिया और एक पीछे छूट गया। देवी ने क्षेत्रपाल को आज्ञा दी कि लडके को तुम ले आना। अतिशीघ्रता से चलते हुए वह भी नही लाया तो देवी ने ठोले से उसके मस्तक पर प्रहार किया जो आज भी उसी प्रकार क्षेत्रपाल के मस्तक पर दिखाई देता है।

इस प्रकार अम्बा देवी और क्षेत्रपाल द्वारा ससेवित धरणेन्द्र, पद्मावती द्वारा कृतप्रातिहार्य वह प्रतिमा भव्य लोको द्वारा पूजी जाती है। यात्रीगण यात्रामहोत्सव करते हैं। वहाँ प्रभु के न्हवण-जल से सीची हुई आरती नही वुझती। न्हवण-जल से अभिषिक्त शरीर के दाद, खाज, कुष्ठ रोगादि उपशान्त होते हैं।

श्री अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ का कल्प यथाश्रुत किंचित् श्री जिन-प्रभसूरि ने परोपकार के हेतु लिखा है।

श्री अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ-कल्प समाप्त हुआ, इसकी श्लोक-सख्या ४१ और ८ अक्षर हैं।

•

५९. स्तम्भन-पार्श्वनाथ-कल्प शिलोञ्छ

स्तम्भन पार्श्वनाथ कल्प मे जो बातें विस्तारभय से सगृहीत नही की उन्हे श्री जिनप्रभसूरि इस कल्प मे अंशमात्र कहते हैं।

ढक पर्वत पर रणसिंह राजपुत्र की भोपल नामक पुत्री को रूपलावण्यसम्पन्न देख कर अनुराग उत्पन्न होने पर वासुकि ने सेवन किया और उसके नागार्जुन नामक पुत्र हुआ। उसे पिता ने

पुत्र-स्नेहमोहित मन से सभी महौषधियो के फल, मूल और पत्ते खिलाये जिसके प्रभाव से वह महासिद्धियो से अलकृत सिद्ध पुरुष के रूप मे प्रसिद्ध हुआ। वह पृथ्वीमण्डल मे घूमता हुआ राजा सालाहण का कलागुरु हुआ। वह पादलिप्तपुर मे गगनगामिनी विद्या-अध्ययनार्थ पादलिप्ताचार्य की सेवा करने लगा। एक बार पादलेप के वल से उड कर अष्टापदादि तीर्थों की वन्दना कर भोजनावसर मे स्वस्थान लौटने पर पादलिप्तसूरि के चरण-प्रक्षालन के जल को चख कर वर्ण, रस, गधादि द्वारा उनके नामादि निश्चय कर गुरु के उपदेश विना ही पादलेप करके कुर्कुट की भाँति उडता हुआ कुएँ के तट पर जा गिरा। नागार्जुन के जर्जरित अग को देख कर गुरु महाराज ने पूछा तो उसने यथास्थित वात कही। सूरिजी ने उसके कौशल से चमत्कृत होकर मस्तक पर हाथ रख कर कहा—उन औषधियो को साठी चावल के पानी के साथ वाँट कर पादलेप करने से आकाश मार्ग मे गमन होता है। वह सिद्धि प्राप्त कर परितुष्ट हुआ।

फिर कभी उसने गुरु महाराज के मुख से सुना कि—श्री पार्श्वनाथ भगवान के सामने समस्त सुस्त्रीलक्षणयुक्त महासती द्वारा मर्दन किया हुआ रस कोटिवेधी होता है। यह सुनकर वह पार्श्वनाथ प्रतिमा का अन्वेषण करने मे लग गया। द्वारिका मे समुद्रविजय दशार्ह ने श्री नेमिनाथ प्रभु के मुख से महान् अतिशय वाली ज्ञात कर रत्नमयी श्री पार्श्वनाथ प्रतिमा को प्रासाद मे स्थापित कर पूजी। द्वारिका के दाह के अनन्तर वह प्रतिमा समुद्र मे गई और वही रही। कालान्तर मे कान्तिनगरनिवासी धनपति नामक सेठ का जहाज देवतातिशय से स्खलित हो गया। उसने देववाणी से निश्चय किया कि यहाँ जिन-प्रतिमा विद्यमान है। उसने नौका प्रक्षिप्त कर सात कच्चे सूत के तन्तु से प्रतिमा को वाहर निकाला। उसने अपने नगर मे ले जाकर वहाँ प्रासाद मे

स्थापित किया। वह चिन्ता दूर कर लाभकारी रूप मे प्रतिष्ठित होने से प्रतिदिन पूजी जाती थी। नागार्जुन ने उस प्रतिमा को सर्वातिशयी ज्ञात कर रससिद्धि के लिए अपहरण कर सेढी नदी के तट पर स्थापित किया। और उसके आगे रससिद्धि करने लिए उसने शालिवाहन राजा की रानी महासती चन्द्रलेखादेवी को सिद्ध व्यन्तरदेव के सान्निध्य से वहाँ लाकर प्रतिरात्रि रस-मर्द्दन कराने लगा। इस प्रकार वहाँ बारम्बार जाने-आने से नागार्जुन उसका भाई बन गया। जब उसने उसे औषधियाँ मर्द्दन कराने का कारण पूछा तो उसने कोटिरस वेध का यथास्थित वृत्तान्त कहा।

एक दिन चन्द्रलेखा ने अपने दोनो पुत्रो को बताया कि इससे रससिद्धि होगी। रस के लोभ से वे अपना राज्य छोड कर नागार्जुन के पास आए। रस ग्रहण करने की इच्छा से वे प्रच्छन्न वेश मे रहते थे। जब नागार्जुन भोजन करने लगा तो उसे रससिद्धि का वृत्तान्त पुछा। वह उनको ज्ञात कराने के हेतु नमक सहित रसोई बनाती है। छ महीने बीतने पर उसने क्षार-दोषपूर्ण रसोई बतलाई। रानी ने इगिताकार से रससिद्धि पुत्रो को सूचित कर दिया और परम्परा से जाना कि नागार्जुन की मृत्यु वासुकि ने दर्भाङ्कुर से बतलाई है, अत उन्होने उसी शस्त्र से उसे मार डाला। जहाँ रस स्तम्भित हुआ वहाँ स्तम्भन नामक नगर हुआ। कालान्तर से वह प्रतिमा केवल मुख के सिवाय सारी जमीन के अन्दर चली गई।

अब चन्द्रकुल के श्रीवर्द्धमानसूरि शिष्य जिनेश्वरसूरि शिष्य श्री अभयदेवसूरि गुजरात मे सम्भायण स्थान मे विचरे। उनके महाव्याधिवश अतिसारादि रोग उत्पन्न होने पर प्रत्यासन्न नगर-गाँवो से पाक्षिक प्रतिक्रमणार्थ आने वाले लोगो को विशेष रूप से मिथ्या दुष्कृत देने के लिए सभी श्रावक सघो को बुलाया। तेरस

की अर्द्धरात्रि मे प्रभु को शासनदेवता ने कहा—भगवन् ! जगते है या सो रहे है ? मन्द्र स्वर मे प्रभु ने कहा—मुझे नीद कहाँ ? देवी ने कहा—ये नौ सूत्त की कुक्कुडी सुलझाइये ! प्रभु ने कहा—नही सकूँगा ! देवी ने कहा—क्यो नही सकेगे ? अभी तो आप भगवान महावीर के शासन की चिरकाल प्रभावना करेगे, नौ अगो की वृत्तियां भी करेगे ! आचार्य भगवान ने कहा—इस प्रकार के शरीर से मैं कैसे करूँगा ? देवी ने कहा—स्तम्भनपुर मे सेढी नदी के तीर पर खाखरापलाश के बीच श्री स्वयभू पार्श्वनाथ हैं ! उनके आगे आप देववन्दन करिये जिससे शरीर स्वस्थ हो जायगा।

दूर से आये हुए श्रावकसघ ने प्रभु को वन्दन किया। प्रभु ने कहा—स्तम्भन मे पार्श्वनाथ प्रभु को हम वन्दन करेगे ! सघ ने सोचा कि निश्चय ही प्रभु को कोई उपदेश है तभी ऐसा कहते हैं ! सघ ने कहा—हम लोग भी वन्दन करेंगे ! वाहन मे जाते हुए प्रभु का शरीर कुछ स्वस्थ हो गया तो धवलका से पादविहार करते हुए स्तम्भनपुर पहुँचे। श्रावक लोग सर्वत्र पार्श्वनाथ भगवान को खोजने लगे तो गुरु महाराज ने कहा—खाखरापलाश मे देखो ! उन्होंने श्री पार्श्वनाथ-प्रतिमा का मुख देखा। वहाँ प्रतिदिन एक गाय आकर प्रभु-प्रतिमा के मस्तक पर दूध झार देती थी। श्रावको ने जैसे देखा गुरु महाराज से निवेदन किया। श्री अभयदेवसूरि ने वहाँ जाकर मुख दर्शन मात्र से "जयतिहुअण वर कप्परुक्ख" आदि तत्काल निर्मित्त काव्य द्वारा स्तुति प्रारम्भ की। इसका सोलहवाँ वृत्त वोलते समय भगवान सर्वाङ्ग से प्रत्यक्ष हो गए। तब "जय पच्चक्ख जिणेसर" सत्तरहवें वृत्त मे कहा। बत्तीस छन्द मे स्तवन पूर्ण हुआ। अन्तिम दो वृत्त देवी को अत्यन्त आकृष्ट कर होने से देवता ने प्रार्थना की—भगवन् ! तीस गाथाओ से ही सान्निध्य करूँगी, अन्तिम दोनो को निकाल दें। क्योकि हमे कलियुग मे आगमन दुष्कर होगा। प्रभु ने वैसा ही किया। सघ-

सहित चैत्यवन्दन किया। सघ ने उत्तुग देवगृह बनवाया। प्रभु का रोग उपशान्त हो गया था, उन्होने पार्श्वनाथ स्वामी को स्थापित किया। महातीर्थ स्तम्भन प्रसिद्ध हुआ। काल-क्रम से स्थानाङ्गादि नव अगो पर वृत्ति की। आचाराङ्ग और सूत्रकृताङ्ग पर तो पहले ही शीलाकाचार्य द्वारा की हुई थी। प्रभु श्री अभयदेवसूरि जी ने उसके बाद चिरकाल तक वीरशासन की प्रभावना की।

श्री स्तम्भनक पार्श्वनाथ का सक्षिप्त-कल्प समाप्त हुआ। इसकी ग्रन्थ-सख्या ६७ है।

•

६०. श्री फलवर्द्धिपार्श्वनाथ-कल्प

श्री फलवर्द्धिक चैत्य मे विराजमान पार्श्वनाथ स्वामी को प्रमाण कर के उन्ही का कलिकाल के दर्प को चूर्ण करने वाला कल्प यथाश्रुत कहता हूँ।

सवालक्ष देश मे मेडता नगर के समीप स्थित वीर-भवनादि नानाविध देवालयों से सुन्दर फलवर्द्धि नामक ग्राम है। वहाँ फलवर्द्धि नामक देवी का भवन उत्तुङ्ग शिखर वाला है। वह नगर ऋद्धिसमृद्ध होते हुए भी कालक्रम से ऊजड हो गया। तो भी वहाँ कितने ही वणिक लोग आ कर बस गये। उनमे एक श्री श्रीमाल वश मे मुक्ता के सदृश, धार्मिक लोगो मे अग्रणी धधल नामक श्रावक था। दूसरा वैसे ही गुणो वाला ओसवालकुल-नभस्थल मे चन्द्रसदृश शिवकर नामक था। उन दोनो के प्रचुर

गाये थी। उनमे धवल की एक प्रतिदिन दूध देनेवाली गाय भी दूध नही देती थी तो धवल ने ग्वाले को पूछा—क्या इस गाय को तुम या अन्य कोई बाहर मे दूह लेता है ? जिससे यह दूध नहीं देती। ग्वाले ने शपथादि करके अपने को निरपराधी किया।

ग्वाले द्वारा कुछ दिन सम्यक् निरीक्षण करते एक दिन ऊँचे रडे पर बोरडो वृक्ष के पास चारो थणो से दूध झरती गाय को देखा। और प्रतिदिन पूछने वाले धवल को दिखाया। उसने सोचा—अवश्य ही भूमि के अन्दर यहाँ कोई यक्षादि देवताविशेष होगा। घर आने पर उसे रात्रि मे सुखपूर्वक सोये हुए एक स्वप्न आया—एक पुरुष ने कहा इस रडे मे भगवान पार्श्वनाथ गर्भगृह-देवकुलिका मे है, जिन्हें बाहर निकाल कर पूजा करो।

धवल ने प्रभात के समय शिवकर को स्वप्न का वृत्तान्त कहा। तब दोनो कौतूहलपूर्ण चित्त से बलि पूजा विधान पूर्वक ओड लोगो से रडय भूमि को खुदवा कर गर्भगृह देवकुलिका सहित पार्श्वनाथ प्रभु को सप्तफणामण्डित प्रतिमा निकली। दोनो श्रावक प्रतिदिन महान् ऋद्धि से पूजा करने लगे। इस प्रकार त्रिभुवननाथ की पूजा होते फिर एक दिन अधिष्ठायक ने स्वप्न मे उन्हे आदेश दिया कि इसी प्रदेश मे चैत्य कराओ। तब उन दोनो ने प्रसन्न चित्त से अपने वैभव के अनुसार चैत्य कराना प्रारम्भ किया। सुथार लोग कमठाणे मे प्रवृत्त हुए। जब अग्रमण्डप निष्पन्न हुआ, धन की कमी से द्रव्य-व्यय मे असमर्थ होकर कमठाणा बन्द कर दिया और दोनो परम श्रावको का धैर्य टूट गया। इसके पश्चात् रात्रि मे फिर अधिष्ठायक देव ने स्वप्न मे कहा—"उषाकाल मे अन्धेरे-अन्धेरे देव के आगे द्रम्म मुद्राओ का स्वस्तिक किया देखोगे। उन द्रम्मो को मन्दिर के कार्य मे व्यय करना। उन्होने उसी प्रकार देख कर द्रम्म ग्रहण कर अवशिष्ट कमठाणा कराना प्रारम्भ किया। इस प्रकार तीनो भुवनो के चित्त को चमत्कृति

उत्पन्न करने वाले पाँचो मण्डप व लघु मण्डप परिपूर्ण हुए। चैत्य के वहुत कुछ निष्पन्न होने पर उनके पुत्र ने सोचा—ये द्रव्य कहाँ से आता है। जिससे अविच्छिन्न रूप से कमठाणा चलता है। एक दिन अति प्रभात मे स्तम्भ के पीछे छिप कर देखना प्रारम्भ किया। उस दिन देव ने द्रम्मो का स्वस्तिक नही पूरा।

इसके वाद देवता का आराधन करने पर भी निकट भविष्य मे म्लेच्छ-राज्य होना ज्ञात कर अधिष्ठाता ने द्रव्य पूरा नही, चैत्य-निर्माण कार्य अधूरा ही रहा।

विक्रमादित्य राजा के ११८१ वर्ष वीतने पर राजगच्छ-मण्डन श्री शीलभद्रसूरिपट्टप्रतिष्ठित, महावादी दिगम्वर गुणचन्द्र पर विजय प्राप्त कर प्रतिष्ठा पाने वाले श्री धर्मघोषसूरि ने पार्श्व-नाथ चैत्य शिखर की चतुर्विध सघ समक्ष प्रतिष्ठा की।

कालान्तर मे कलिकाल के माहात्म्य से व्यन्तर लोग केलि-प्रिय होते है इस लिए अधिष्ठायक देव अस्थिर चित्त व प्रमाद परवश होने से सुलतान साहावुद्दीन ने मूल विम्व भग्न किया, फिर सावधान होकर अधिष्ठायक देव ने म्लेच्छ राजा और म्लेच्छो को अन्धत्व एव रुधिर वमनादि चमत्कार दिखाया। तव सुलतान ने फरमान दिया कि इस देव-मन्दिर का कोई भग न करे। अधिष्ठायक देवो को अन्य प्रतिमा असह्य होने से संघ ने विम्व दूसरा स्थापित नही किया। विकलाङ्ग प्रतिमा होने पर भी भगवान का वडा भारी माहात्म्य है। प्रतिवर्ष पौष कृष्ण १० को जन्मकल्याणक के दिन चारो दिशाओ से श्रावकसघ आकर न्हवण-गीत-नाटक-वाजित्र-कुसुम-आभरणारोहण-इन्द्रध्वजादि मनो-हर यात्रामहिमाएँ करते हुए सघ पूजादि कार्यो द्वारा शासन-प्रभावना करके दूषम काल के प्रभाव को निर्दलित कर सुकृत भण्डार भरते हैं। यहाँ मन्दिर मे धरणेन्द्र-पद्मावती, क्षेत्रपाल

अधिष्ठायक सघ के विघ्नो को उपगमन करते है। और प्रणत लोगो का मनोरथ भी पूर्ण करते हैं। यहाँ हाथ मे स्थिर प्रदीप लिए हुए घूमते पुरुष को मन्दिर मे शान्त चित्त वाले भव्य जन देखते हैं।

इस महातीर्थभूत पार्श्वनाथ के दर्शन से कलिकुण्ड-कुक्कुटेश्वर-श्रीपर्वत-शखेश्वर-सैरीसा-मथुरा-वाराणसी-अहिछत्ता-स्तभन-अजाहर-प्रवरनगर-देवपत्तन-करहेडा-नागदा-श्रीपुर-सामिणि-चारूपढिपुरी-उज्जैन-शुद्धदन्ती-हरिकखी-लिबोडक आदि स्थानो मे विद्यमान पार्श्वनाथ प्रतिमाओ का यात्रा करने का फल होता है ऐसा सम्प्रदाय-पुरुषो का उपदेश है।

फलवर्द्धिपुर स्थित पार्श्वनाथ जिनेश्वर के इस छोटे से कल्प को सुनने वाले भव्यो का कल्याण हो।

आप्त जनो के मुख से कुछ सप्रदायादि उपादानो से श्री जिनप्रभसूरि ने यह फलवर्द्धिपार्श्वनाथ-प्रतिमा का कल्प बनाया है।

यह श्री फलवर्द्धिपार्श्वनाथ-कल्प सम्पूर्ण हुआ। ग्रथसख्या ५५ अक्षर २ ऊपर है।

■

६१. अम्बिकादेवी-कल्प

श्री उज्जयन्त गिरि शिखर के मण्डन श्री नेमिनाथ भगवान को नमस्कार करके कोहडिदेवी-कल्प वृद्धोपदेशानुसार लिखता हूँ।

सौराष्ट्र देश मे धन धान्य सम्पन्न, जनसमृद्ध कोडीनार नामक नगर है। वहाँ सोम नामक ऋद्धि-समृद्ध षट्कर्मपरायण,

वेदागमपारगामी ब्राह्मण था। उसकी अंबिणी नामकी स्त्री अपने शरीर मे शीलरूपी मूल्यवान अलंकार को धारण करने वाली थी। उनके विषय-सुखानुभव करते दो पुत्र उत्पन्न हुए, पहला सिद्ध और दूसरा वुद्ध था।

एक वार पितर पक्ष आने पर सोम भट्ट ने श्राद्ध के दिन ब्राह्मणो को निमन्त्रित किया। कही वे वेद पाठ करते है, कही पिण्डदान प्रारभ करते है, कही अग्नि होम करते हैं। अंबिणी ने जीमनवार के लिए खीर-खाँड, दाल, भात, व्यञ्जन, पक्वान्नादि तैयार किए। उसकी सासू स्नान करने मे प्रवृत्त थी। उस समय मासक्षमण के पारने के लिए एक साधु उसके घर मे भिक्षार्थ आया। उसे देखकर हर्षपूर्ण पुलकित अग वाली अम्बिणी उठी और भक्ति-बहुमानपूर्वक उस मुनिराज को भात-पाणी देकर प्रति-लाभा। साधु भिक्षा लेकर चला गया और सासू भी नहा-धोकर रसोई मे आई। खाद्य पदार्थ पर शिखा न देखकर क्रोधपूर्वक उसने वहू से पूछा। उसके यथास्थित कहने पर सासू ने उसे फटकारा—पापिनी! यह तुमने क्या किया? अभी तो कुल-देवता की पूजा नही की और न अभी तक ब्राह्मणो को भोजन कराया, न पिण्डदान ही हुआ है अत तुमने अग्रशिखा साधु को किस लिए दी?

सासू ने सोमभट्ट से सारा व्यतिकर कहा। उसने रुष्ट होकर स्वच्छंदी कहते हुए उसे घर से निकाल दिया। पराभव से दुखी होकर अम्बिणी वुद्ध को गोद लेकर सिद्ध की अगुली पकड़े नगर से वाहर चल पडी। मार्ग मे प्यासे पुत्रो ने जल माँगा, अम्बिणी अश्रुपूर्ण नेत्रो वाली हुई तो सामने रहा हुआ सूखा सरोवर उसके अमृत्य शील के प्रभाव से तत्काल जलपूर्ण हो गया। दोनो पुत्रो को शीतल जल पिलाया। फिर भूखे वालको ने भोजन माँगा तो

सामने रहा हुआ आम्र वृक्ष तत्काल फला। अविणी ने उन्हे आम्र-फल दिए, वे खाकर स्वस्थ हुए।

जव वे आम्र वृक्ष की छाया मे विश्राम करने लगे तव जो हुआ वह सुने। उसने पहले वालको को जिमाया था उन पत्तलो के वाहर झूठन पडी थी उसे अविणी के शील प्रभाव से शासनदेवी ने स्वर्णथाल और कटोरे के रूप में परिणत कर दिया और वाहर भूमि पर गिरे झूठन के कणो को मोती आदि वना दिया। रसोई मे उसी प्रकार अग्रशिखा युक्त वर्त्तन भरे देखे। सासू ने यह अत्यद्भुत चमत्कार देखकर सोमभट्ट से कहा—वेटा! यह वहू सुलक्षणी और पतिव्रता है, उसे वापस वुलाकर घर मे लाओ।

जननी की प्रेरणा से सोमभट्ट परचात्तापाग्नि मे जलता हुआ वहू को लाने के लिए गया। अविणी ने पीछे आते हुए अपने पति व्राह्मण को देखकर दिशावलोकन किया तो उसे सामने मार्ग मे कूप दिखाई दिया। उसने जिनेश्वर भगवान को मन मे धारण कर सुपात्रदान की अनुमोदना करते हुए अपने आपको कुँए मे गिरा दिया। शुभ अध्यवसायो से मर कर वह सौधर्म कल्प स्थित चार योजन वाले कोहण्ड विमान मे "अम्विका देवी" नामक महर्द्धिक देवी हुई। विमान के नाम से उसे "कोहडी" भी कहते हैं। सोमभट्ट ने उस महासती को कुएँ मे गिरते देखा तो वह स्वय भी कूद पडा। वह भी मर के वही पर देव हुआ। आभियोगिक कर्म से सिह रूप धारण कर उसी अम्विका देवी का वाहन हो गया। अन्य लोग कहते है—अम्विणी ने रैवत गिरि शिखर से झम्पापात किया और उसके पीछे सोमभट्ट भी उसी प्रकार मरा—शेप वात एक सी है।

उस भगवती के चार भुजाएँ हैं, दाहिने हाथ मे आम्रलुम्व एव पाश धारण किया हुआ है। वाँये हाथ मे पुत्र और अंकुश

धारण किया हुआ है। उनका शरीर तपे हुए सोने जैसा है। वह श्री नेमिनाथ भगवान की शासनदेवी है और गिरनार शिखर पर उसका निवास है। उसके मुकुट, कुण्डल, मुक्ताहार, रत्नकंकण, नुपूरादि सर्वांगाभरण रमणीक हैं। वह सम्यग्दृष्टियों के मनोरथ पूर्ण करती है, विघ्नसमूह दूर करती है। उस देवी का मन्त्र मण्डलादि रचनापूर्वक आराधन करने वाले भव्यों के अनेक प्रकार की ऋद्धि-समृद्धि देखी जाती है एवं उनका भूत, पिशाच, शाकिनी और दुष्टग्रह पराभव नही करते। पुत्र, कलत्र, धन-धान्य, राज्य श्रीसम्पन्न होता है। अम्बिका मंत्र यह है—

वयबीयम कुल कुलजलहरिहय अक्कततत्त पेआइ।
पणइणिवायावसिओ अंबिअदेवीइ अहमंतो ॥ १ ॥
धुवभुवण देवि संवुद्धिपास अकुस तिलोअ पंचसरा।
णहसिहि कुलकल अव्भासिअमाया परपणामपय ॥ २ ॥
वागुब्भव तिलोअ पास सिणीहाओतडअवन्नस्स।
कूड च अंबिआए नमुत्ति आराहणा मतो ॥ ३ ॥

इस प्रकार अम्बिका देवी के बहुत से मंत्र स्वपर की रक्षा करने वाले स्मरणयोग्य मार्ग-क्षेमादि गोचर हैं। उन मन्त्रों को व मण्डल को यहाँ विस्तार भय से नही कह रहे, जिज्ञासुओं को गुरुमुख से जानना चाहिए।

यह अम्बिका देवी का कल्प अविकल्पचित्तवृत्ति वाले, वाचने सुनने वाले समीहित अर्थ से पूर्ण होते हैं।

अम्बिका देवी का यह कल्प समाप्त हुआ। इसकी ग्रंथ-संख्या ४७ व अक्षर अधिक है।

■

६२. पंचपरमेष्ठी नमस्कार-कल्प

तीन जगत को पावन करने वाले पुण्यतम मत्र श्री पच-परमेष्ठी नमस्कार का योगी चिन्तन करे। वह इस प्रकार है—

ज्ञानीजन आठ दल वाले सफेद कमल की कर्णिका मे स्थित प्रथम सात अक्षर का पवित्र मत्र चिन्तन करे—णमो अरिहताण।

चारो दिशाओ के पत्रो मे यथाक्रम से सिद्धादि चार पदो का और विदिशा के दलो पर चार चूला पद का चिन्तन करे।

मुनि इसका त्रिशुद्धिपूर्वक एक सौ आठ बार चिन्तन करते हुए भी चतुर्थ तप-उपवास का फल प्राप्त कर लेते है।

इस लोक मे योगीजन इस महामत्र का समाराधन करके परम-पद को प्राप्त त्रैलोक्यनिवासी जनो द्वारा पूजे जाते हैं।

हजारो पाप करके सैकडो जन्तुओ को मारने वाले तिर्यञ्च भी इस मत्र का आराधन करके स्वर्ग मे गए है।

गुरुपचक नाम से बनी हुई षोडशाक्षरा विद्या होती है। उसको दो सौ वार जपता हुआ प्राणी चतुर्थ तप का फल प्राप्त करता है।

पंचपरमेष्ठि नमस्कार-कल्प समाप्त हुआ।

६३. ग्रन्थ-समाप्ति का कथन

इस ग्रन्थ का आदि से अन्त तक (समस्त कल्पो) का ग्रन्था-ग्रन्थ (श्लोकपरिमाण) अनुष्टुप् मान के अनुसार ३५६० हुआ है ॥ १ ॥

मनुष्य को किस कार्य मे सज्जित (उद्यत) होना चाहिए ?

'जि' (अर्थात् जयविपय कार्य)

निषेधार्थक शब्द कौन सा है ?

'न' (अर्थात् नही)

प्रथम उपसर्ग कौन सा है ?

'प्र' (यह उपसर्ग सर्वप्रथम परिगणित है)

निशा (रात्रि) कैसी है ?

'भ' (अर्थात् तारो से युक्त)

प्राणियो को प्रिय कौन होता है ?

'सूरि' (अर्थात् विद्वान्)

इस ग्रन्थ का प्रणेता कौन है ?

'जिनप्रभसूरि' ॥ २ ॥

यह ग्रन्थ दिल्ली मे वि० स० १३८९ भाद्रपद कृष्णा १०, वुधवार के दिन भूमण्डल के इन्द्र श्री हम्मीर महम्मद (मुहम्मद तुगलक) के प्रतापी शासन-काल मे पूर्ण हुआ ॥ ३ ॥

तीर्थो एव तीर्थभक्तो के वर्णन से पवित्रीभूत यह 'कल्पप्रदीप' नामक ग्रन्थ चिरकालपर्यन्त प्रतिष्ठा को प्राप्त होता रहे ।

■

परिशिष्ट १

जीरापल्ली तीर्थ

(उपदेशसप्तति से)

आगे सवत् ११०९ अनेक जैन और शैव प्रासादो से रमणीक ब्राह्मण नामक महास्थान मे धाधल सेठ नाम का महाश्रावक रहता था। वहाँ एक क्षमाशील वुढिया रहती थी जिसकी गाय प्रतिदिन सेहिली नदी के पार्श्व स्थित देवीत्री पर्वत की गुफा मे दूध झार आती थी जिससे सन्ध्या समय घर आने पर वह कुछ भी दूध नही देती। कितने ही दिन पश्चात् क्रमश वह स्थान उस वुढिया के जानने मे आया। उसने धाधल आदि मुख्य व्यक्तियो को यह वृत्तान्त वतलाया।

साहूकार लोगो ने निश्चय किया वह चमत्कारिक स्थान है और वे रात्रि मे पवित्र हो कर पचपरमेष्ठी के स्मरणपूर्वक किसी उपाश्रयादि पावन स्थान मे सो गये। रात्रि के समय नील वर्ण के अश्व पर किसी दिव्य पुरुष ने उन्हे स्वप्न मे कहा कि जहाँ गाय दूध झरती है वहाँ श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा स्थित है, मैं उसका अधिष्ठायक देव हूँ। अत उस जिनप्रतिमा की पूजा हो वैसा तुम लोग उपाय करो। देव अन्तर्धान हो गया। प्रात काल वे साहूकार वहाँ गए और भूमि का उत्खनन कर प्रतिमा को रथ मे विराजमान करने लगे, इतने ही मे जीरापल्ली के नागरिक वहाँ आ कर कहने लगे हमारी हद मे स्थित जिनविम्व को तुम लोग क्यो ले जाते हो? विवाद वढने पर किसी वृद्ध ने निर्णय किया एक वैल हमारा और एक वैल आप लोगो का—दोनो को रथ मे जोड दो, वे जहाँ जाएँ प्रभु इच्छा। विवाद कर्म-वन्ध का हेतु है

अत उन्होने इस निर्णय को मान्य किया। भगवान जीरापल्ली नगरी मे पधारे, महाजन लोगो ने प्रवेशोत्सव किया। वहाँ के जिनालय की महावीर प्रतिमा को स्थानान्तर कर के संघ ने सर्व-सम्मति पार्श्वनाथ भगवान को मूलनायक रूप मे विराजमान किया। वहाँ अनेक अभिग्रह धारण कर आने लगा। अधिष्ठायक देव उनकी मनोकामना पूर्ण करता जिससे जीरावला पार्श्वनाथ तीर्थ रूप मे प्रसिद्ध हो गया। धाधल सेठ देव-द्रव्यादि की सार-सम्भाल करता था।

एक वार जावालि नगर से यवनो की सेना आई जिसे अधिष्ठायक देव ने अश्वारूढ हो कर भगा दिया। फिर सेना मे से सात सेख—गुरु लोग रुधिर का पात्र भर कर लाए और देव-स्तुति के वहाने मन्दिर मे रहे और रात्रि मे रुधिर छिडक कर प्रतिमा को भग कर दिया। शास्त्रवाक्य है कि रक्तस्पर्श से देवो की प्रभा लुप्त हो जाती है। शेख लोग आशातना कर के भाग गये, प्रात -काल इस दुर्घटना को ज्ञात कर धाधल सेठ आदि सभी लोग वडे दुखी हुए। राजा ने अपने सुभट भेज कर सातो सेखो को नष्ट कर दिया।

उपवास कर के वैठने पर अधिष्ठाता देव ने कहा—ऐसी अपवित्रता के समय मैं भी असमर्थ हूँ। तुम चिन्ता मत करो, अब नौ सेर चन्दन के अन्तर्लेप से ये नवो खण्ड मिला कर रख दो और सात दिन कपाट वन्द रखो। गोष्ठिक ने उसी प्रकार किया पर सातवे दिन एक सघ आया जिसने उत्सुकतावश द्वारोद्घाटन कर दर्शन किये। कुछ अवयव अश्लिष्ट रह गए, आज भी भगवान के नव अग स्पष्ट दिखाई पडते हैं। अपने नगर मे पहुँचने पर उन आततायी लोगो के घरो मे ज्वलन, द्रव्यनाश आदि होने लगा तो दैवी उपद्रव ज्ञात कर वहाँ के राजा ने अपना मंत्री भेजा। देव ने उसे स्वप्न मे कहा कि जव राजा स्वयं यहाँ आ कर अपना शिर

मुण्डन करायगा तभी कुशल होगा। राजा के स्वय आ कर भोग-योग कराने पर शान्ति हुई। ऐसा देख कर जनता भी अनुकरण मे शिर मुण्डनादि कराने लगी। और यह गतानुगतिक प्रथा चल पडी।

इस प्रकार जीरावाला तीर्थ का प्रकर्ष और माहात्म्य बढने लगा। देव ने अधिकारी को स्वप्न ने कहा कि खण्डित मूर्ति मुख्य स्थान मे शोभा नही देने से इसी नाम से दूसरी प्रतिमा स्थापित करो। फिर नव्य प्रतिमा प्रतिष्ठित हुई जिसकी इहलोक-परलोक-कल्याणाभिलाषी जन आज भी पूजा करते है। प्राचीन प्रतिमा को दक्षिण भाग मे स्थापित किया जिसकी पूजा, नमस्कार ध्वजा आदि पहले किया जाता है। अव वह जीर्ण प्रतिमा दादा पार्श्वनाथ नाम से पहिचानी जाती है और उसी के समक्ष शिर मुण्डनादि किये जाते है। धाधल सेठ के सतान मे आसीहड गोष्टिक चौदहवॉ हुआ ऐसा इतिहास है।

इस जीरापल्ली तीर्थं प्रवन्ध को मैने यथाश्रुत कहा है। बहुश्रुता को आस्थापूर्वक मध्यस्थ भाव से अतर पट पर उतारने का प्रयत्न करना चाहिए।

फलवर्द्धि तीर्थ

विक्रम सवत् ११७४ मे चौरासी वाद-विजेता श्री वादिदेव सूरि हुए। एक बार आचार्य महाराज भव्यजनो को पावन करते हुए मेडता चातुर्मास रहे। श्रावक लोगो ने धर्म कृत्यो से अपना जीवन सफल किया। चातुर्मास पूर्णकर आचार्य महाराज मासकल्प करने के लिए फलवर्द्धिपुर पधारे। वहाँ पारस श्रावक बडा श्रद्धालु था, वह प्रतिदिन पवित्रता से जिनेश्वर देव की त्रिकाल पूजा किया करता था पर वह निर्धन था। एक बार उसने जगल

मे अम्लान पुष्पो से मण्डित एक ढेर देखा और आश्चर्यपूर्वक गुरु महाराज से निवेदन किया। आचार्य महाराज ने देख कर कहा—इस स्थान मे जिन-प्रतिमा होनी चाहिए। उस भूमि का उत्खनन किया गया पुण्योदय से विकसित कमल जैसी पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा प्रगट हुई। सेठ ने उसे उत्सवपूर्वक ले जाकर घास के झोंपडे मे विराजमान किया और पूजा करने लगा। रात्रि के समय अधिष्ठायकदेव ने स्वप्न मे कहा—भगवान का प्रासाद वनवाओ। सेठ ने कहा—द्रव्य के विना कैसे जिनालय वने? अधिष्ठता ने कहा—भगवान के समक्ष लोगो द्वारा चढाए हुए सभी चावल प्रात काल प्रतिदिन सोने के हो जाएंगे। इस प्रकार जिनालय के लिए द्रव्य की प्राप्ति हो जायगी पर यह वात किसी को मत वतलाना। यदि कह दोगे तो स्वर्ण की प्राप्ति वद हो जायगी। पारस ने वैसा ही किया।

शुभ मुहूर्त मे शिल्पियो द्वारा चैत्य निर्माण प्रारभ हुआ। कितने ही अरसे मे गर्भगृह के उत्तुग तीन मण्डप युक्त अनेक स्तभो सुशोभित विशाल प्रवेश द्वार, मत्त गजेन्द्र युक्त, मेघ मण्डलवत् विभ्राजमान तोरण, उभय पक्ष मे शालाओ से मनोहर स्वर्ग-विमान तुल्य चैत्यालय निष्पन्न हुआ। सेठकी भावना थी कि ऐसे और भी तीनो दिशाओ मे चैत्य निर्माण हो। परन्तु एक पुत्र के कदाग्रह से द्रव्य-प्राप्ति का रहस्य प्रगट हो गया जिससे धन-प्राप्ति वद हो गई।

पारस सेठ ने वडे समारोहपूर्वक स० १२०४ मे श्री देवसूरि के पट्टधर मुनि चन्द्रसूरि से विम्व व चैत्य की प्रतिष्ठा सम्पन्न करवाई।

वह गगनस्पर्शी चैत्य अनुक्रम से फलवद्धि तीर्थ नाम से प्रख्यात हुआ। आज भी श्रद्धालु सघ अपने पाप-पक का प्रक्षालन करता है।

आरासण तीर्थ

पासिल नामक श्रद्धालु श्रावक द्वारा आरासण गाँव मे निर्मापित और श्री देवसूरि जी के प्रतिष्ठित चैत्य अनुक्रम से तीर्थ रूप मे प्रसिद्ध हुआ ।

एक वार श्री मुनि चद्र गुरु के शिष्य आचार्य देवसूरि भृगुपुर चातुर्मास स्थित थे। उस समय कान्हड नामक एक योगी क्रूर साँपो के ८४ करडिए ले कर वहाँ आया और कहने लगा—हे सूरीन्द्र! मेरे साथ विवाद कीजिए नही तो इस सिंहासन का त्याग कर दे। आचार्यश्री ने कहा—अरे मूर्ख, तुम्हारे साथ वाद कैसा ? क्या श्वान के साथ सिंह कभी युद्ध होता है ? योगी ने कहा—मै सर्प-क्रीडा जानता हूँ जिससे राजमहल आदि स्थानो मे जा कर दूसरो से अधिक आभरणादि पुरस्कार प्राप्त करता हूँ। आचार्य महाराज ने कहा— हे योगी! हमे किसी प्रकार के वाद करने की इच्छा नही है, क्योकि मुनि तत्त्वज्ञ होते हैं और जैन मुनि तो विशेष कर तत्त्व-प्राज्ञ होते हैं। फिर भी तुम्हे यह कौतुक हो तो राजा के समक्ष विवाद करे, क्योकि विजयेच्छुको को चतुरंग वाद करना चाहिए।

योगी और आचार्य महाराज श्रीसंघ के साथ राजसभा मे आये। राजा ने उन्हे सम्मानपूर्वक सिंहासन पर वैठाया। आचार्य महाराज उदयाचल पर आरूढ सूर्य विम्व की भाँति सुशोभित थे। योगी ने कहा—राजेन्द्र! और तो सुखावह वाद होते हैं, यह प्राणान्तिक वाद है अत. मेरी शक्ति को देखिए। आचार्य महाराज ने उसे शेखी वघारते देख कर कहा—अरे वराक, तुम्हे पता नहीं हम लोग सर्वज्ञ-पुत्र हैं। फिर आचार्य महाराज ने अपने चारो ओर सात रेखाएँ वनाई। योगी द्वारा वहुत से साँप छोडे गये पर

किसी ने रेखा का उल्लघन नही किया। योगी ने उदास हो कर दूसरा प्रयोग प्रारम्भ किया। उसने कदलीपत्र पर नालिका मे से एक साँप छोडा जिससे वह पत्र तुरन्त भस्म हो गया। दुष्ट योगी ने कहा—सुनो लोगो, यह रक्ताक्ष पन्नग शीघ्र अन्त करने वाला है। यह कहते हुए महाजनो के देखते-देखते सर्प को छोड़ा। फिर दूसरे सर्प को छोडा जो उसका वाहन हो गया। योगी द्वारा प्रेरित वह सिहासन पर चढने लगा। आचार्य महाराज तो स्वस्थचित्त से ध्यानारूढ हो गए। सव लोग हाहाकार करने लगे और योगी मुस्कुराने लगा। गुरु महाराज के माहात्म्य से वह दृष्टिविष सर्प हतप्रभ हो गया। तप के प्रभाव से एक शकुनिका आई और उसने सर्प युगल को उठा कर तुरन्त नर्मदा-तट पर छोड दिया। योगी दीनतापूर्वक गुरु महाराज के चरणो मे गिर कर निरहकार हो कर चला गया। सघ को अपार हर्ष हुआ। राजा ने महोत्सव-पूर्वक गुरु महाराज को स्वस्थान पहुँचाया।

उसी रात्रि मे एक देवी ने आकर कहा—भगवन् इस सामने वाले वट वृक्ष पर रहने वाली यक्षिणी ने आपकी धर्मदेशना सुनी, वही मैं वहाँ से मर के कुरुकुल्ला देवी हुई हूँ। मैंने ही शकुनिका वन कर साँपो को हटाया है। गुरु महाराज ने कुरुकुल्ला-स्तव की नव्य रचना की जिसके पाठ द्वारा भव्यजन साँपो को दूर कर सकते हैं। गुरु महाराज ने पारण की ओर विहार किया।

उस समय आरासण गाँव मे गोगा मत्री का पुत्र पासिल नामक श्रावक रहता था जो पवित्र आशय वाला, पर निर्धन था। एक वार वह घृत-तेल आदि विक्रय करने के लिए पाटण गया। जव वह गुरु महाराज को वदन करने आया तव छाडा की पुत्री हासी ने उपहासपूर्वक उसे कहा—यह जो ९९ लक्ष स्वर्णमुद्रा के व्यय से राजा ने मन्दिर वनवाया है, वैसा तुम्हे भी वनाने की

स्पृहा है ? पासिल ने कहा—वहिन ! मेरे जैसे से यह कार्य होना कठिन है, क्या वालक मे मेरु पर्वत तोलने की शक्ति कभी होती है ? फिर भी यदि मन्दिर वनवाऊँ तो तुम वहाँ अवश्य आना। पासिल अपने स्थान गया और उसने गुरु महाराज की वताई हुई विधि से अम्वा देवी का आरावन किया। दस उपवास होनेपर देवी ने प्रगट होकर कहा—मेरे प्रभाव से सीसे की खान चाँदी की हो जायगी। तुम उसे ग्रहण करके प्रासाद का निर्माण कराओ। उसने देवी के आदेश से नेमिनाथ जिनालय का निर्माण-कार्य प्रारम्भ कर दिया।

एक बार उस गाँव मे कोई गुरु महाराज आये। उन्होने पासिल से पूछा—चैत्य का कार्य निर्विघ्नता से चलता है ? उसने कहा—देव ! गुरु के प्रसाद ठीक से चलता है। अम्विका देवी ने सोचा, यह तो कृतघ्न है, मेरा उपकार नही मानता ! सीसे की खान की चाँदी से चैत्य शिखर तक काम चला वाद मे वन्द हो गया। पाटण से गुरु महाराज और उस वहिन को वुलाकर नेमिनाथ जिनालय की प्रतिष्ठा कराई। उस वहिन ने भाई से वस्त्र याचना-पूर्वक मन्दिर का मण्डप वनवाने की आज्ञा माँगी। सेठ के स्वीकार करने पर उसने नौ लाख रुपये व्यय करके मेघनाद मण्डप वनवाया। फिर दूसरे व्यापारियो ने भी वहाँ मन्दिर बनवाए। इस प्रकार आरासण एक तीर्थरूप मे प्रसिद्ध हो गया।

अन्य ग्रन्थ मे भी कहा है कि—गोगा मंत्री के चतुर और श्रद्धालु पुत्र पासिल ने श्री नेमिनाथ भगवान का यह उत्तुग जिनालय निर्माण कराया जिसकी प्रतिष्ठा श्री मुनिचन्द्रसूरि के शिष्य वादीन्द्र श्री देवसूरि ने करवाई।

कलिकुण्ड तीर्थोत्पत्ति

महत्तर माहात्म्य लक्ष्मी से मनोहर श्री पार्श्वनाथ प्रभु को

नमस्कार करके गुरु उपदेश से यथाश्रुत श्री कलिकुण्ड तीर्थ की उत्पत्ति कहता हूँ।

चम्पानगरी के पास श्वापद श्रेणि से भयकर और विकट कादम्वरी नामक अटवी है। वहाँ कलि नामक एक वड़ा पहाड है जिसके नीचे के भू-भाग मे कुण्ड नामक सरोवर है। इन उभय नामो को मिलाकर यह स्थान कलिकुण्ड नाम से प्रसिद्ध हो गया और श्री पार्श्वनाथ भगवान के चरणो से पवित्र होकर तीर्थरूप मे प्रख्यात हुआ।

आगे कोई नगर मे एक वामन व्यक्ति रहता था जिसकी राजा आदि सभी लोग स्थान-स्थान पर हँसी उडाते थे। वह उद्विग्न होकर आत्मघात करने की इच्छा से वृक्ष पर लटकने लगा तो सुप्रतिष्ठित नामक मित्र श्रावक ने उसे मना करते हुए कहा—महाभाग! व्यर्थ मरने से कोई लाभ नही, यदि सौभाग्य, आरोग्य और रूप चाहते हो तो अहिंसा-संयम-तप रूप जैनधर्म का आराधन करो! वह उसे गुरु महाराज के पास ले गया और उनके धर्मोपदेश से शुद्ध श्रावक बनाया। वह अनेक प्रकार के तप करके उच्च देह-धारी वनने का नियाणा करके उस अटवी मे महावलवान यूथा-धिपति महीधर नामक हाथी हुआ।

एक वार भगवान पार्श्वनाथ छद्मस्थावस्था में विचरते हुए कुण्ड के पास कायोत्सर्ग स्थित रहे। महीधर हाथी भी जलपान करने के लिए सरोवर पर आया और प्रभु को देख कर जातिस्मरण को प्राप्त हुआ। उसने सोचा—मैंने अज्ञान से धर्म की विराधना कर के पशु-योनि प्राप्त की, अव इन देवाधिदेव की पूजा कर अपना जन्म सफल करूँ! उसने कमलो से पार्श्वनाथ भगवान की पूजा की और अनशन ले कर महर्द्धिक व्यन्तर देव उत्पन्न हुआ। यह वृत्तान्त जव चम्पानगरी के राजा करकण्डु ने सुना तो वह विस्मय

पूर्वक सोत्साह प्रभु वन्दनार्थ आया। भगवान तो विहार कर चुके थे अत मन मे विषाद ला कर जिनदर्शन न पाने पर आत्म-निन्दा व हाथी की प्रशसा करने लगा। राजा ने वहाँ जिनालय बनवा कर नौ हाथ प्रमाण की पार्श्वनाथ-प्रतिमा स्थापित की।

कुछ लोग कहते हैं कि धरणेन्द्र के प्रभाव से वहाँ तत्काल नौ हाथ प्रमाण वाली पार्श्वनाथ प्रतिमा प्रगट हुई, राजा ने प्रमुदित चित्त से पूजन कर उस अपने बनवाए हुए मन्दिर में हाथी की प्रतिमा भी स्थापित की। वह व्यन्तर देव लोगो के मनोवाछित पूर्ण करने लगा जिससे कलिकुण्ड तीर्थ की प्रसिद्धि हुई। राजा करकण्डु भी नानाविध भक्ति द्वारा परमप्रभावक श्रावक के रूप मे प्रसिद्ध हुआ। व्यन्तर देव भी प्रभु-भक्तिरत रह कर अनुक्रम से सद्गतिभाजन होगा।

श्री अन्तरिक्ष तीर्थ-श्रीपाल राजा

जिनके अग स्पर्श से पवित्र जल का पान करने से श्रीपाल राजा कुष्ठरोगरहित हुआ, वे श्री पार्श्वनाथ भगवान भव्य प्राणियो के लिए कल्याणकारी हो।

एक बार रावण द्वारा अपने निजी कार्य के लिए नियुक्त मालि और सुमालि विद्याधर विमान मे आरूढ हो कर कही जा रहे थे। उन्हे जिनपूजा किए बिना भोजन न करने का दृढ नियम था किन्तु जिन-प्रतिमा घर पर भूल गए। भोजन का समय होने पर पवित्र वालुका के कणो से पार्श्वनाथ-प्रतिमा निर्माण कर पूजा की और जाते समय उस प्रतिमा को सरोवर मे स्थापित कर दी। दिव्य प्रभाव से वह प्रतिमा स्थिर हो गई और उसके प्रभाव से उस तालाब का जल सर्वदा निर्मल और अखूट रहने लगा।

एक बार विगिल्लपुर मे श्रीपाल नामक राजा हुआ जिसका

सर्वाङ्ग कुष्ठव्याधिपीडित था। राजवैद्यो ने सैकडो औषधि-प्रयोग किए पर उसके कोई लाभ नही हुआ। एक वार राजा उस सरोवर पर क्रीडा करने लगा और थक कर तृषातुर होने से जल-पान कर के विश्राम करने लगा। उसने हाथ-पैर धोये और अपने को स्वस्थ अनुभव कर अपने नगर आया राजा के शरीर के अवयव एकदम कचन जैसे हुए देख कर प्रात काल रानी ने साश्चर्य इसका कारण पूछा तो राजा ने सरोवर के जल से प्रक्षालन करने और जलपान करने का वृत्तान्त कहा। रानी ने कहा—यहाँ अवश्य कुछ सप्रभाव है! राजा ने विस्मयपूर्वक उस सरोवर मे स्नान किया जिससे राजा बिल्कुल निरोग हो गया। तदनन्तर धूप-दीप नैवेद्यादि चढा कर प्रार्थना की कि जो देव हो वे प्रगट हो। राजा रात्रि मे वही सो गया। ब्राह्ममुहूर्त्त मे अधिष्ठाता देव ने आ कर कहा—यहाँ भावि तीर्थङ्कर श्री पार्श्वनाथ की प्रतिमा है, जिसके प्रभाव से तुम्हारा कुष्ठ रोग नष्ट हो गया है। इसलिए अब सात दिन पूर्ण जन्मे हुए बछडो को रथ मे जोत कर भगवान को विराजमान कर स्वय सारथी बन कर शीघ्र ले जाओ। जहाँ भी पीछा मुँह कर के देखोगे वही भगवान स्थिर हो जायँगे।

राजा ने उठकर देव के निर्देशानुसार किया। कुछ दूर जाने पर राजा के मन मे सन्देह हुआ कि भगवान आते हैं कि नही? उसने मुडकर देखा तो प्रतिमा वही आकाश मे स्थिर हो गई, रथ आगे निकल गया। राजा ने सविस्मय वही पर श्रीपुर नामक नगर बसाकर विशाल चैत्यालय मे प्रतिष्ठित की। स्थविर कहते हैं कि आगे घटयुगलयुक्त पनिहारी उसके नीचे से निकल सकती थी। राजा श्रीपाल ने चिरकाल उस प्रतिमा की पूजा कर अभीष्ट प्राप्त किया और क्रमश. मोक्ष आवेगा। आज भी भगवान की प्रतिमा और पृथ्वी के बीच कुछ अन्तर है, ऐसा वहाँ के अधिवासी एव अन्य लोग कहते हैं।

इस प्रकार जैसे श्रीपाल् राजा अतरिक्ष पार्श्वनाथ की पूजा करके निरोग हुआ वैसे ही हे भव्य जीवो ! तुम लोग भी जिनेश्वर की आराधना करके परम सुखी वनो ।

माणिक्यदेव (कुल्पाक)

माणिक्य की जिनेन्द्र-प्रतिमा का पूजन करने से शकर राजा की भॉति श्री देवाधिदेव का अर्चन करने से दुर्वार महामारि आदि उपसर्ग नष्ट होते हैं ।

भरत महाराजा ने अष्टापद के चैत्य मे वर्णादि युक्त सर्व तीर्थंकरो की प्रतिमाएँ स्थापित की । वहाँ उदीयमान किरणो से युक्त एक नीलरत्न की आदिनाथप्रतिमा भी उसने पृथक् स्थापित की थी इसलिए उस प्रतिमा को लोग माणिक्यदेव नाम से पहिचानते हैं वह अत्यन्त प्रभावशाली है । कुछ लोग ऐसा भी कहते है कि—"भरतेश्वर की मुद्रिका मे स्थित पाचिरत्न की यह प्रतिमा बनाई हुई है इस प्रतिमा की पूजा वहाँ चिरकाल पर्यन्त हुई ।

एक वार कितने ही विद्याधर वहाँ यात्रार्थ आये और इस अपूर्व प्रतिमा को प्रसन्नतापूर्वक दक्षिण श्रेणी मे ले गए । वे वहाँ प्रतिदिन पूजा करने लगे । एक वार नारद ऋषि वहॉ अतिथि रूप मे आये और प्रतिमा को देखकर पूछा—यह प्रतिमा तुम्हारे यहाँ कैसे ? उन्होने कहा—हम इस प्रतिमा को वैताढ्य पर्वत से लाए हैं, इनके शुभागमन से हमारे राज्य-राष्ट्रादि से हमारी वृद्धि हुई है । मेरु पर्वत पर शास्वत चैत्यों को वन्दनार्थ आने पर नारद ने इन्द्र से इस प्रतिमा का माहात्म्य वतलाया, उसने देवो द्वारा उसे देवलोक मे मगवा ली और अत्यन्त भक्तिपूर्वक वहॉ कई सागरोपम पर्यन्त इन्द्रादि देवो ने उसकी पूजा की ।

भरतक्षेत्र मे जव त्रैलोक्यकटक राक्षसराज रावण हुआ,

उसके मन्दोदरी रानी थी। एक बार नारद के मुँह से उस प्रतिमा का माहात्म्य सुनकर उसने रावण को प्रेरित किया। रावण ने शक्रेन्द्र की आराधना की। शक्रेन्द्र ने प्रसन्न होकर मन्दोदरी को वह प्रतिमा दी जो उसकी त्रिकालपूजा करने लगी।

एक बार रावण ने सीता का अपहरण किया और भ्राता-पुत्रादि के निवारण करने पर भी उसे न छोडा तो उस प्रतिमा के अधिष्ठायक देव ने कहा—लका और लकापति का नाश होगा। यह ज्ञात कर मन्दोदरी ने उस जिन-प्रतिमा को समुद्र मे स्थापन कर दी।

अब कर्णाटक देश के कल्याणनगर मे जिनेश्वर के चरण-कमल मे अनुरक्त मधुकर की भाँति अभग भाग्यशाली राजा शकर हुआ। एक बार किसी मिथ्यादृष्टि देव ने वहाँ महामारी फैला दी। राजा और मत्री आदि को चिन्तित देखकर पद्मावती देवी ने स्वप्न मे कहा कि—समुद्र मे स्थित माणिक्य स्वामी की प्रतिमा यदि यहाँ नगर मे आवे तो शीघ्र उपद्रव शान्त हो जाय। उपाय हस्तगत होने से शकर राजा ने भक्ति युक्ति से लवणसमुद्र के अधिष्ठाता देव को प्रसन्न किया उसने मन्दोदरी से सम्बन्धित उस प्रतिमा को राजा को समर्पित कर दिया। उसने कहा—तुम अपनी पीठ पर भगवान को लेकर सानद जाओ, परन्तु जहाँ भी सन्देह करोगे भगवान वही स्थिर हो जाएँगे।

देव के अदृश्य हो जाने पर राजा शकर अपनी पीठ पर भगवान को विराजमान कर सैन्यसहित चला। जब वह तिलंग देश के कुल्पाक नगर मे पहुचा तो प्रतिमा का भार अनुभव नही होने से मन में सन्देह हो गया कि भगवान आते हैं कि नही? माणिक्य स्वामी वही स्थिर हो गए। राजा ने कुल्पाक नगर में एक सुन्दर जिनालय बनवाकर निर्मल मरकतमणिमय बिम्ब को

वहाँ स्थापित कर दिया। यह प्रतिमा ६८० वर्ष पर्यन्त गगन मे अधर रही और पूजन के प्रभाव से सर्व प्रकार के रोगों की उपशान्ति हुई। राजा ने पुजारियो को पूजा के निमित्त बारह गाँव भेंट किए। राजा ने स्वय भी चिरकाल पूजा की।

स्वर्ग मे से मनुष्य लोक मे आए भगवान को ११८१००० वर्ष हुए। उनके नाम का माहात्म्य लोक मे अतिशयवत्त हैं ऐसे माणिक्य देव श्री आदिनाथ भगवान चिरकालपर्यन्त आपके श्रेय-कल्याणकारी हो।

श्री स्तंभनतीर्थ

पृथ्वी के अन्दर रही हुई जिनकी देदीप्यमान प्रतिमा को श्री अभयदेव सूरि ने प्रगट की वे सर्वप्रभावनासमूह से विराजमान श्री स्तभन पार्श्वनाथ जयवन्त हो।

पूर्वकाल मे जब पाटण मे भीम राजा राज्य करता था, उस समय श्री जिनेश्वर सूरि जी भूमडल मे विराजमान थे। उनके पट्ट पर श्री अभयदेव सूरि जगद्विख्यात हुए कि जिनसे खरतर गच्छ प्रतिष्ठा पाया। पूर्व कर्मोदय से उन राजमान्य आचार्य महाराज को कुष्ठ रोग हो गया और शारीरिक शक्ति क्षीण हो जाने पर भी गुजरात के शभाणक नगर की ओर विहार किया। रोग की बहुलता से अपना आयुष्य अल्प ज्ञात कर मिथ्या दुष्कृत देने के लिए उन्होने सघ को बुलाया। उसी रात्रि मे शासनदेवी ने स्वप्न मे आकर कहा—प्रभो! निद्रित हैं या जागृत? सूरिजी ने कहा—व्याधिग्रस्त को निद्रा कहाँ? देवी ने कहा—सूत की इन नौ कोकडी को सुलझाइये! गुरु महाराज ने कहा—शक्ति के अभाव मे कैसे हो? देवी ने कहा—प्रभो! ऐसा न कहे, अभी तो आप नौ अगो पर वृत्ति की रचना करेंगे। सूरिजी ने कहा—गण-

धर भगवत्तो के ग्रन्थो पर मैं विवरण कैसे लिखूँ ? पगु व्यक्ति कभी मेरु पर्वत्त पर चढने मे कुशल हो सकता है ? देवी ने कहा—जहाँ सन्देह लगे वहाँ मुझे स्मरण करना, मैं सीमंधर स्वामी से पूछ कर सभी सन्देह दूर करूँगी। सूरिजी ने कहा—परन्तु मात्ता, मै रोगग्रस्त व्यक्ति कैसे वृत्ति करूँगा ? देवी ने कहा—ऐसा न कहे, रोगप्रतिकार का उपाय बताती हूँ।—स्तभनक गाँव मे सेढी नामक महानदी हैं, वहाँ श्री पार्श्वनाथ भगवान की सातिशय प्रतिमा है। जहाँ कपिला गाय प्रतिदिन दूध झरती हैं, उसके खुर के नीचे की जमीन खोदने पर प्रभु का मुख दिखाई देगा। उस प्रभु-बिम्ब का आप भावपूर्वक वन्दन करें जिससे शरीर स्वस्थ हो जायगा।

देवी के सकेतानुसार आचार्य महाराज सघसहित्त स्तम्भनक गाँव की ओर चले। निर्दिष्ट स्थान पर जाकर पार्श्वनाथ भगवान के दर्शन कर वे सोल्लास रोमाचित होकर भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगे—"तीन लोक मे उत्कृष्ट कल्प-वृक्ष के सदृश, जिनो मे धन्वन्तरि के सदृश, जगत के कल्याण के भण्डार और दुरितरूपी हाथी को नाश करने मे केशरी सिंह के समान हे नाथ आपकी जय हो। आपकी आज्ञा तीन लोक मे अनुल्लघनीय है। आप तीन भुवन के स्वामी हैं, हे स्तम्भनकपुर मे विराजमान पार्श्वनाथ जिनेश्वर मेरा कल्याण करो।" इस प्रकार स्तुति करते सोलहवे श्लोक के बाद वह प्रतिमा सर्वाङ्गत प्रगट हो गई! सतरहवे श्लोक मे कहा हैं कि—पार्श्वनाथ भगवान ने कमठ नामक असुर के उपसर्ग सहे। उस समय धरणेन्द्र के फणो पर लगे मणियो के प्रकाश मे प्रियगुलता के, तमालपत्र के व नीलोत्पल कमल के सदृश वर्ण वाले स्तम्भनपुर मे प्रत्यक्षीभूत पार्श्वनाथ भगवान आप जयवन्त रहे।

इस प्रकार बत्तीस श्लोको द्वारा सूरिजी ने भगवान की स्तुति

की। श्री सघ ने महापूजन आदि उत्सव किये। देवी के अनुरोध से अन्तिम दो श्लोक वाद देकर "जय तिहुअण" स्तोत्र की ३० गाथाएँ रखी। आचार्य महाराज तत्काल रोगमुक्त हुए और नवनिर्मित जिनालय मे भगवान को स्थापित किया। तत्पश्चात् क्रमश स्थानाग आदि नौ अगो पर वृत्तियाँ रची। महाराजा भीम ने नव अगो की प्रामाणिक सटीक प्रतियाँ देखकर तीन लाख रुपये व्यय करके स्वगच्छ-परगच्छ के आचार्यों से प्रतियाँ लिखवा कर प्रचारित की। इस प्रकार उदीयमान आचार्य महाराज ने चिर-काल तक वीरशासन की प्रभावना की।

इस प्रकार अज्ञात आदिकाल वाले भगवन्त इन्द्र, श्रीराम, कृष्ण, धरणेन्द्र और समुद्राधिष्ठायक आदि द्वारा विविध स्थानो मे चिरकाल पूजित हुए, वे श्री पार्श्वनाथ (स्तम्भन) ससार से भव्य-जनो का रक्षण करें। कितने ही ऐसा कहते है कि—श्री कुंथुनाथ स्वामी से मम्मण व्यवहारी ने पूछा—भगवन्! मैं मोक्ष कब प्राप्त करूँगा? स्वामी ने कहा—श्री पार्श्वनाथ के तीर्थ मे तुम्हे सिद्धि प्राप्त होगी। उसने यह प्रतिमा निर्माण करवाई थी।

मालवदेश मे मगलपुर नगर के समीप एक भील लोगो की पल्ली थी। वहाँ आगे किसी का बनवाया हुआ एक जिनालय था जिसमे चौथे तीर्थङ्कर श्री अभिनन्दन भगवान की प्रभावशाली प्रतिमा थी। एक बार अकस्मात म्लेच्छ सेना ने आकर जिनायतन का भग कर डाला और अधिष्ठाता देव के प्रमाद के कारण चैत्य के अलकारस्वरूप जिन-प्रतिमा के सात टुकडे कर डाले। यद्यपि भील लोग तत्त्वज्ञान से रहित थे, फिर भी उन्होने खेदपूर्वक उन सात टुकडो को बराबर मिलाकर एक स्थान मे रखा।

धारली गाँव से एक वणिक वहाँ प्रतिदिन माल की खरीद-बिक्री करने के लिए आता था। वह श्रावक था इसलिए भोजन

के समय अपने गाँव जाकर ही भोजन करता, क्योकि उसे जिनेश्वर भगवान की पूजा करने पर ही भोजन करने का नियम था। एक वार पल्लीनिवासी भीलो ने उसे कहा—आपको प्रतिदिन जाने-आने मे वडी कठिनाई होती है तो यही भोजन व निवास क्यो नही कर लेते, क्योकि हम सव आपके सेवक तुल्य हैं। सेठ ने कहा—देवपूजा किये विना मैं भोजन नही करता इसीलिए घर जाता हू। और वहाँ पूजा करके भोजन करता हू! भीलों ने प्रसन्नतापूर्वक कहा—यहाँ भी एक देव हैं। उन्होने उसे उस सात खण्डो को वरावर मिलाई हुई प्रतिमा वतलाई। सेठ सरल था, उसने शुद्ध आरस पापाण की अखण्ड प्रतिमा मान कर भक्तिपूर्वक वन्दन किया और पुष्पादि से पूजा करके स्तोत्रो से स्तुति कर प्रतिदिन वही भोजन करने लगा।

एक दिन भील लोगो ने उससे कुछ माँगा जिसे न देने पर उन लोगो ने क्रुद्ध होकर जिन-प्रतिमा को खण्डित रूप मे पुन करके कही छिपा दिया। पूजा के समय प्रतिमा को न पा कर सेठ वडा खिन्न हुआ और उस दिन उसने भोजन नही किया, इस प्रकार उसके तीन उपवास हो गए। भीलो ने उसे भोजन न करने का कारण पूछा। सेठ ने कहा—तुम लोग मेरा निश्चय नही जानते? मैं देव-पूजा किए विना भोजन नही करता चाहे प्राण चले जाँय। भीलो ने कहा—आप हमे गुड दे तो हम वह देवप्रतिमा आपको वतावे। सेठ की स्वीकृति पर प्रसन्न होकर भीलो ने उसके सामने ही सातों टुकडो को व्यवस्थित लगा कर यथावत् दर्शन कराए। सत्वशील पुण्यात्मा सेठ के चित्त मे अत्यन्त खेद हुआ और उसने अभिग्रह ले लिया कि जव तक यह विम्व अखण्ड न हो जाय, सर्वथा भोजन नही करूँगा। अधिष्ठायक देव ने उसे स्वप्न में कहा—चन्दन के विलेपन द्वारा सातो खण्डो को मिलाने से वे अखण्ड हो जाएँगे। प्रात.काल सेठ ने वैसा ही किया। इस

प्रकार अभिनन्दन भगवान की प्रतिमा को अखण्डाकार वाली बना कर भील लोगो को गुडादि बाँटा। उस प्रतिमा को मनोज्ञ स्थान मे विराजमान कर पूजा करने लगा, कुछ दिनो मे प्रभु की महिमा सर्वत्र फैली और वह स्थान तीर्थ रूप मे प्रसिद्ध हो गया। चारो दिशाओ से सघ आने लगे। प्राग्वाट वश मे मुकुट के समान हालासाह के पुत्र ने वहाँ जिनालय निर्माण कराया। तीर्थ का माहात्म्य सुन कर मालवनरेश भी प्रतिदिन वहाँ पूजा, ध्वजारोप और स्नात्र-महोत्सवादि कराने लगा।

द्वादश उपदेश मे रावण की कथा है। जिसमे लिखा है कि वह एक वार अपनी रानी मन्दोदरी के साथ अष्टापद तीर्थ पर आया और चौबीस तीर्थङ्करो की पूजा की। धरणेन्द्र ने उसे अष्टापद तीर्थ का माहात्म्य बतलाया जिसके सन्दर्भ मे श्री जिनप्रभसूरिकृत अष्टापदतीर्थ-कल्प की गाथाएँ दी है जिसका अर्थ उपदेशसप्तति मे छपा है।

■

परिशिष्ट—२

एक तीर्थयात्रा विवरण

श्री सारदाय नमो नम । श्री ऋषभदेव नम । नीमीवणमी वाहवल जी 'मूल **कोटनी संख्या** । देहरा देहरी आलिया ४५८ मोटी नानी प्रतिमा २३४७ सख्या जिन गणधर मुनि पगला सख्या ८७५ ।

• मोटा नाना देहरा देहरी आलिया २३४ सरवाले मली ने प्रतिमानी सख्या ७९७ पगलाँ की सख्या ६५ ए सख्या हाथी पोल वाहरनी छै ।

• **अदवद वावा** को मदर १ प्रतिमा १ पासे देहरी ३ प्रतिमा ३ एव देवल ४ प्रतिमा ४ ।

• पेमावसी माँ देवल प्रतिमा पगला ॥ देहरा देहरी ४० प्रतिमा ३८२ पगला ८६ त्रिकाल नमस्कार होज्यो ।

• अथ **छीपावसीनि** सख्या लखीये छें ॥ देहरा देहरी १३ प्रतिमा ५२ पगला २ एहो नैं नमस्कार होज्यो ।

• अथ खडतरवसीनि सख्या लख्यते । देहरा देहरी आलिया १०५ प्रतिमा १५०५ पगला १०८४ ए तिहु टुकने तिहु काल नमस्कार होज्यो ।

[प्रथम आदीश्वर जिनालय मे मध्य वैठो पद्मासनस्थ प्रतिमा के दोनो ओर काउसग्गिए खड़े है। वृषभ लाछन हैं। नीचे। रतनपोल-लिखा है । दूसरी पोलमे दोनो ओर दो हाथी व तीसरी मे २ वाघ है । उपरोक्त वर्णन वीच मे लिखा हुआ है ।]

श्री तीर्थ जात्रा करी तेहनी वगत लखी छै । प्रथम श्री सिद्धा-

चल जी नी भमती, ते मद्धे १०८ फरती डेरी छे। अने भमती माहि डेराछे प्रथम सेहश्रकोट जी तथा समोसरण जी तथा अष्टापद जी तथा मेरुपर्वत जी तथा समत सीखर जी तथा नेमनाथ जी डेरो छे, तथा श्री महावीर जी को तथा चोमुख जी की डेगी चोवीस छे, तथा एक रायण नो झाड छे, ते हेठले पगलां श्री ऋषभदेव जी ना छे। पगला नि डेरी २७ वीश छे तथा गणधर ना पगला छे। तथा। सहश्र कुट ना पगला १००० १० पगला छे। तेहने पाशे श्री शान्तिजी को देवल छे तथा दरवाजो पासे साहम सामाबे डेरा श्री ऋखभदेव जी ना छै।

एक चोमुख जी को देवरो छे एक जीवत स्वामी को। एक श्री मदोर स्वामी जी को छे। तथा एक श्री गोडी पार्श्वनाथ जी का एक श्री अमीझरा पार्श्वनाथ जी को छे तथा दरवाजा पर श्री पुडरीक गणधर जी को देवल छे। पाशें एक चौवीसी को देवरो छे, एक पचतीर्थी धात की छे।

अथ हवे दरवाजा बाहरे वामादेवी छे तथा दरवाजा वाहरे बभननाथ जी को देवरो छे अने अजीतनाथ जी अनें श्री शातिनाथ जी को अने सहस्रफणा पार्श्वनाथ जी छे। तिहांथी छेटे आवतां जमणी को रेगामलीया पार्श्वनाथ जी अने श्री चितामण पार्श्वनाथ जी ओर डेरा १०१५१ छे हवे श्री नेमनाथ जी की चोरी छेते मद्धे भमती छे तेहने बाहरें मोक्ष वारी छे तेहनें वाहरे केसरी चकेसरी छे तेहने साहमू श्री शातिनाथ जी को देवरो छे ते साहमा कवड यक्ष बेठा छे तेहनें माथे श्री चउमुखी जी नो देरो छे अनें दरवाजा त्रीजा वार हडूमान जी छे तथा खेत्रपाल छे तथा गणेश जी छे तथा वामादेवी के साहमी शासन देवी छे तिहाँ जक्ष नी चोकी छे। [श्री देवकी जी ना ६ पुत्र छे सी पाछे]॥ तेहने साहमी छत्री छे मुनीश्वर की तिहा थी गउ दो जइये एतले गुपा गुप्त छें तीहा ते

मध्ये रत्न नी प्रतिमा छे। ते प्रतिमा नी देवता सेवा करे छे तहाथी पखाल वहे छे ते पखाल नू पाणी कुड मा आवे छे ते कुड उपरें पगला छे तीहाथी आगले जाता सिद्धगल्ल तलाव अने पगला छे तिहाथी आगले जाता सिद्धगल्ला तलाव अने पगलां छे तिहाथी आगलें जाता माडवा नो डूगर छे ते डूगर पर श्री अजितनाथ जी शातिनाथ जी चोमासो रया छे तिहा अनत साधु सिद्ध थया छे। तिहाथी सिद्धवड आवीये। वड नुं झाड छे ते हेठल पगल्या छे ते वावडी छे तहांथी छेटी नी पायग छे।

तेह थी गाउ १ गामछे ताहा थी शेतुंजी नही छे ए गाम ऊपर ऋषभदेव जी ना पगल्या छे। ते ऊपर गाउ १ चोवीसी जन ना पगला छें ते पासे कुड छे ते उपर गायो १ दरवजो छो अदव जी जी दरवजो छे। हाथी पोल बारे सूरजकुड छे तेरनी जोडे भेमकुड छें भेमकुड उपर महादेवजी नो डेरू छें तेहने पाखतो वाडी छे अदवुद जी ना पात्रडोया १०८ ते ऊपर देरू तेहनी वाजूए कुड छे देवी खाडोयरं वेठा छें। प्रेमचद मोदीनी टुक श्री ऋषभदेवजी नुं देरू छौ। तेनी भमती म देरी २४ चोवीस तेम देवल सहसफणा पार्श्वनाथजी ना २ सामाला पारसनाथजी नुछे अमीझर पार्श्वनाथ श्री शांतिनाथजी तेने आगल पगल्या छे श्री जिना छे ते आगल सिद्धचक्र जी ना पगला छे आगल दरवाजा वारे गोतमस्वामी ना पगला छे। ते आगल फूल नी वाडी छे ते हेठल कुड छे ते आगल चौउमुख जि छे ते आगल पाच पाडव रो देवल छे ते पछी सेहेस को देवल छे ते देवल मद्धे नेमनाथ की चोउरी छे ते पछी खडतर वसी छे ते मद्धे देवल रिषभदेवजी नो चोमुख छे तेनी भमती नी देरी ५१ छे ते मद्धे देवल २ संतनाथजी ना छे देवल १ सामलीया पार्श्वनाथजी रो छ देवल १ मदिर स्वामी रो छे देवल १ अजित-नाथ जी रो छे देवल १ धरमनाथजी रो छे ते पासे चोरासी गणधर ना पगला छे ते पासे दादाजी जिनचदसूर दादा कुशलसूर ना

पगुला छे ते सामे शीतलनाथजी रो देरो छे ते आगल चउमुखजी को देरो छे ते आगल दरवाजो छे दरवाजा उपर पुडरीकजी रो देरो छे ते हेठे चक्केसरी माता छे दरवाजा मद्धे खेत्रपाल छे दरवाजा सामे चोमुख छे ते पासे जालि मयाली उवीयाली तिहा जक्ष नी चोकि छे ते सामा मरुदेवी माताना देवल छे ते पासे सतिनाथ जो रो देवल छे ते नी जमणी वाजु सीपावसी छे ते मद्धे देवल रीषभदेव रो छे देवली नेमनाथजी रो छे देवल १ शातिनाथजी रो छे भमती मां देरो ७ ते मद्धे पगला नि छत्रि १ शातिनाथजी का देरा आगले दरवाजो १ ते सामी पीर की दरघा तेनो नीकास की वाडी री हेठे जक्षनी चोकी ते हेठे हडुमान की चोकी छत्री मा फर हट्टे पार्श्वनाथजी रा पगल्या ते हेठे मुनीसर का पगल्या ते पासे कुड, कुड के सामने तलाई कुंड के हट्टे पाच पाड की छत्री ते हेट्टे साधुजी की छत्री ते हेठे श्रावक तपछी की छत्री ते सामने सरीजी की टुक ते मद्धे कुड १ ते ऊपर देरी ४ पार्श्वनाथ रीषभदेव जी रा पगला छे ते सामा जी रा पगला ऊपर देरी छे ते सामा माणभद्र जी रो चवूतरो छे ते हेट्ठे पार्श्वनाथजी रा पगला ते उपर देरी छे ते पास कुड छे ते हेठे मुनीश्वर ना पगल्या छे ते उपर देरी छे ते हट्ठ कुडुर पार्श्वनाथ ना पगला ऊपर देरी छे ते हेठे हीगलाज माता नो थानक छे ते हेठे कुड छे तिहा मुनीसर ना पगला ते ऊपर देरी छे ते सामी धर्मशाला छे ते ऊपर नेमनाथ जी रू पगल्या छे ते उपर देरी छे ते हेठे कुड छे कुड के पा धर्मशाला छे ते सामने खेत्रपाल छे ते हेट्टे रषबदेवजी रू पगल्या छे उपर देरी छे ते सामना पार्श्वनाथजी रा पगल्या छे ते उपर देरी छे ते पासे गौतमस्वामी रू पगल्या छे उपर देरी छे ते हेठे गौडी पार्श्वनाथजी रा पगल्या ते उपर देरी छे ते हेठे वर वाडी ते सामने वड वड निचे पोयानि की ते सामनि मुनीसर का पगल्या ते ऊपर देरी ते पासे वाडी मा आसो पालव ना वृक्ष तिहा साधु ल्योच करै पच महाव्रत उचरै जात्रु

दरगन करी उतर सरवत लेवै आर पाणी करे तिहाथी भूषण सानी वावडी है ते उपर ९ साधुनी देरी छे ते मध्ये पगल्या छे ते हेठे देरी पाच मध्ये पगल्या छे ते पास वाडी मध्ये माहादेवजी को देवल छे सामे वावडी छे मारग मे ते सामने दादाजी की खत्री छे ते पासे कुओ छे कुआ पास फुलवाड़ी छे ते हेट्ठ तरकाई छे माथे दो देरी छे ते माथे गाम पालीताणु छे ते मद्धे रीखवदेवजी रो देवल १ सीखरवद्ध छे। ते पासे उपासरो छे विजेदेवसूरि नो मद्धे माणभद्रजि छे। दिजोषड्तर नो उपासरो छे, त्रीजो अचलगछ ना छे। आणंदजी कल्याणजी नो भंडार छे। वीजु धरमगाला ५ वरडो १ संघ उतरवाने पांजरापोल १ सदावृत्त ८।

ऐतनी जात्रा धर्मचंदजी करमचंदजी मुक्षदावादका सघ की सादे आआ सा सीवलाल जात्रा करवा रहा, चउमुखजी को काम वनायो, महीना सवा चार रहा, जात्रा १२१ करी ने उपडा। मवे महावीर की जातरा करवा गया। देवल १ महावीरजी को भोआरा मद्धे उपर पदमावत्ती देवी, पछे गाम उनो तिहा देवरा ५ रखवदेवजी की अमीझरा पार्श्वनाथजी को १ सतनाथजी को १ नेमनाथजी को १ सीताउनाथजी को तिहाथी कोस १ आचारज उपाध्यानी देरी ७ मद्धे पगल्या छे। तिहाथी गाउ १ गाम छे त्या अझारा पार्श्वनाथजी को देवल छे, गाम मध्ये सिखरबद्ध त्याथी गाउ १ गाम छे त्याहा देवलचिंतामणि पार्ग्वनाथजी छे। त्याहा थी गाउ २ दरियाउ छे ते मध्ये दीवसेरे छे। ते मध्ये देवल त्रण छे। देवल १ नवखडा पार्ग्वनाथजी को १ नेमनाथजी को १ सुपार्श्वनाथजी १ महावीर स्वामी छे।

त्याथी वाण मे वैठा सा वीरचंद वेसाड्या, पोताना भाई नी वउ साथे, वेठी ने पाट्ण उतर्या। पाटण मध्ये ओली करी, त्या देवल १० छे ऋषभदेवजी को अजीतनाथजी को महावीरजी को

सभवनाथजी को चन्द्रप्रभुजी को दादा पार्श्वनाथजी को सातनाथ जी को नेमना (थ) जी को सासनदेवी को राजन देवी को त्याथी **वेरावल** बदीर छे ते मध्ये देवल त्रण छे १ चितामणी पार्श्वनाथजी को सीतलनाथजी को एक चद्राप्रभु जी को त्याथी गाउ सात **चोरवाड़** गाम छे त्या चितामण पार्श्वनाथजी को देवल छे सीखरवधु त्याथी गउ ४ **मागरोल** वदीर छे। ते मध्ये डेरा ४ छे नवपात्रव पार्श्वनाथजी एक चिन्तामण पार्श्र्वनाथजी एक सुपार्श्र्वनाथजी एक चौमुख जी छे। उपर, त्याथी गउ १० **बनथली** छे डेरो १ सीखरबद्ध छे, मनमोहन पार्श्र्वनाथजी छे। त्याथी गउ ५, **जीर्णगढ** गाम छे, ते गाम हेठलें देवल २ छे। १ नेमनाथ जी, १ चोमुखजी ते उपर गउ ३, चढीये त्यार **गिरनार** जी आवे त्या नेमनाथ जी का चरण हे, एक वावडी हे। त्याथी गउ २ उपर चढीये, त्या दरवाजे जक्ष जक्षणी नी चोकी छे, ते आगले सीपाई की डोढी है, ते आगलें **रतनपोल है** तेमा नेमनाथ जी के देरो छे, भमती छे केसरी चकेसरी देवी छे, चोवीसी छे, सिद्धचक्र जी ना पगला छे, सासनदेवी छे ति आगले अदवद जी को डेरो छे, सामने चौरासी गणधर का पगला छे, ते अगले क्षेमधर स्वामी को देवल छे, तीन अष्टापद जी को देवल छे, बाहूवल जी की देरो, जीवत्त स्वामी जी को देरो, रिषभनाथ जी को देरो, अमीझरा पार्श्वनाथ जी को देरो छे। गोडी पार्श्वनाथ जी को देवल छे, सतनाथ जी को २ वभनाथ जी को छे, चोमुख जी नेमी मनमी धर्मनाथ जी को राजुल की गुफा, सामलिया पार्श्वनाथ जी को सहस्र फण। पार्श्वनाथ जी को, सुधर्मा स्वामी, मेरु पर्वत, सहस्र कोट, त्याथो सेहसा वन मध्ये दीक्षा कल्याणक, केवल कल्याणक पगला, ते ऊपर छत्री छे, हेठल कुंड छे, तेमा नीझरण आवे छे, ते ऊपर गउमुखी छे, त्या गणधर जी का पगला छे, हेठे हनुमान छे, ऊपर चढ्या मा अम्बिका को देवल छे, ने

आगल चाल्या त्या मुनोसर का पगला छे, खेत्रपाल छे। ते आगल गउ १ पाचमी टुक छे। पाँच हजार त्रण से सतरे पावढीया छे, ते ऊपरे पाचमी टुक छे त्या पगला छे मोक्षकल्याणक थयु छे।

तिहाथी गाउ ७, धाराजि गाम छे। देरा त्रण एक ऊपर छे ऋषभदेव नो १, शांतिनाथनो १, सुपार्श्वनाथ चोमक जि, तिहाथी ७, गाऊ अमरेली देरी १, ऋपभदेव को, तिहाथी १८, गाऊ नवुनगर देरा ९, ऋपभदेवजो चन्द्रप्रभु जि सतीनाथ जि सामलीया पार्श्वनाथ जी सतिनाथ जी वासपूज जी नेमनाथ जी सीतलनाथ जी ऊपर गोडी पार्श्वनाथ जी ८। नवानगर थकि गाऊ १२ गाम भाड़वण देवल २, गोडी पार्श्वनाथ जी सतिनाथ जि, बासे गाम पोरबंदर गाउ १२ तेमे देरा ३, सतिनाथ को रिपभदेव जो चन्द्रप्रभु जि उपासरा मध्ये पद्मप्रभु जी वासुपूज्य जी, तिहसे विरचन्द्र जी का वाण मे चडा, दिन ४ मा उतरा, सेर मुंबाई वन्दर देवरा ३, गोड़ि पार्श्वनाथ जो, सतीनाथ जी का २।

तिहाथी चाल्या गाम पालड़ी मद्धे देवल १, चन्दाप्रभु जी को, तिहाथी गाम १, द्धनोइयो ते मद्धे देरो १, चतामण पास को, तिहा थोसूरत आव्या। ते मद्धे देवल १, सखेसर जी को ते मद्धे भमति ते ऊपर माहावीर जी का देवल २, अजितनाथ जी का देवल ३, गौडी पारसनाथ जी का देवल ३ फेर पार्श्वनाथ जी का ३, मन मोहननाथ जी का देवल १, अनतनाथ जी का देवल १, अनत-नाथ जी का देवल १, श्री रीहस रो देवल १, समतिनाथ रो देवल १, पद्मप्रभु रो देवल १, अभिनंदन जी रो देवल १, सुपार्श्व-नाथ जी रो देवल १, सतनाथ जी को देवल ७, सभवनाथ जी का देवल २, बभवनाथ जी का देवरा २, धरमनाथ जी का देवरा २, वासपूज जी का देवरा ३, ऋषभदेव जी का देवरा छे ८, सहस-फणा पार्श्वनाथ जी का देवल २, मुनिसुव्रत जी का २, वीलोकि

पार्श्वनाथ जी का देवल १, दादा पार्श्वनाथ जी को **दादाजी का पगल्या** उपर देरी जिनचन्दसूर, कुसलगुर थूलभद्र। फेर **कतार गाम** देवरो पार्श्वनाथ जी को शिखरवद्ध, तिहाथी तापी पार **गाम रानेर** देवरा ४ रिखवदेव जी रा २, सतिनाथ जी रो १, नेमनाथ जी रो अभिनन्दन जी का देवल २।

तिहाति गाम **भकअच** आव्या, गाउ १०, तिहा देवरा ९ शखेसर जी को १, उपर गोरी पार्श्वनाथ जी को, हेठे सामलीआ पार्श्वनाथ को, ते उपर मनमोहन पार्श्वनाथ जी को एक रीखव-देव जी को पुरा मे ८, सेर मा रीखवदेव जी रो १, सातिनाथ जी रो १, पार्श्वनाथजी रो १, सैसफणा पार्श्वनाथ जी रो, तिहा से **मीयागाम** तीहा देवरा ४, शातिनाथ जि रा २, रीखभदेवजी रो १, चन्दाप्रभुजी चोवीसी भायरा मा, तिहा से **पाद्दरो** ते मद्धे देवल २, सातिनाथ जी को १, चन्दाप्रभुजी रो १, तिहाथी चाल्या गाम **पदसरोत** मद्धे देवल २ सतनाथ जी रा, तिहा से **बरोदडो** ते मद्धे देवरा १३, दादा पार्श्वनाथ को १, उपर समेतशिखर जी को चौमुख धातु का सतनाथ जी का २, रीखभ देवल १, गोरी पार्श्वनाथ जी को १, मन मनोर पार्श्वनाथ रो १, सहसफणा पार्श्वनाथ जी रो, देवल १, चिंतामण पार्श्वनाथ जी रा देवल २, सभवनाथ रो १ चन्द्राप्रभु जी रो १, वासपूज जी रो १, सीतल नाथ जि रा १, तिहाथी गाऊ १, गाऊ ३ **नाथपुरो** तिहा देवरा २ संतनाथ जी का १, करला पार्श्वनाथ जी रो १, तिहाथी गाउ ९, **डाभोई** तिहा देवरा ९, वेढुका पार्श्वनाथ जी १, सतनाथ जी को १, अजितनाथ जी का २, रखवदेव जी का १, गोरी पार्श्व-नाथ जी का १, सामलिया पार्श्वनाथ जी को १, शीतलनाथ जी का १, चोउमुखजि धातु को १, तिहाथी चाल्या गाउ गाम १, पर **बादर** तिहा देवरा ७, सातनाथ जी रो १, रखवदेव जी रो १,

चन्द्राप्रभु जी रो १, वासपूज जी को १, मुनिसुव्रत स्वामी को १, सुपार्श्वनाथ जी को १, सहसफणा पार्श्वनाथ जी को १, गाम नदना वीदर मा देवरा ४, ऋषभदेव जी का २, नेमनाथ जी का १, शातनाथ जी का १, गाम १ पूरो तेमा देवरा २, गोडी पार्श्वनाथ जी को ऋषभदेव जी को, सेर खभात देवरा ६५ छे, तेंनी पूजा करी, सर्वमली ८४ छे। थभन्त पार्श्वनाथ मुनीसुव्रत, पदमप्रभु, खेरा पार्श्वनाथजी, चोमुखजी, ककीन सुपार्श्वनाथ, रत्न पार्श्वनाथ, सखेश्वरा पार्श्वनाथ, अठारमा अरनाथ जी का २, सहसफणा-पार्श्वनाथ जी का २, देवरा कुथनाथ जी का ४, मल्लिनाथ नू १, सम्भवनाथ जी को २, सीतलनाथना ९, ऋषभदेव जी का ७, मुनीसुव्रत जी का बे चन्द्रप्रभु जी का ५, सुमतिनाथ जी का ३, सामलीया पार्श्वनाथ जी का २, नेमनाथ जी को १, सुमतिनाथ जी का २, चामुख महावीर जी को १, हसनाथ जी को १, वासपूज जी को १, वभननाथ जी को १, धर्मनाथ जी को १, मन्दीर स्वामी का १, नामीनाथ को १, सामलीया चन्तामण ३, जीराउला पार्श्वनाथ जी को १, अभिनन्दन जी को २, अनन्तनाथ २, गाम सूनेद मा देवरा ४, शन्तनाथ जी को सहसफणा पार्श्वनाथ जी को सामलीया पार्श्वनाथ जी को श्रीयास जी को। गाम सीयोर मा देवरो १, वासपूज जी को। गाम १, वीरूँ तेमा कुन्थनाथ जी को देवरो १, गाम १, सुटनगर मे देहरा ३, अजितनाथ जी को १, ऋषभदेव जी का २, गाम सुराई चन्द्राप्रभु जी को देहरी १।

गाम १ सोपर जीरावला पार्श्वनाथ जी रो देहरो १, गाम १, बकायण सम्भवनाथ जी रो देहरो, गाम १, साचोर, तेहमे सन्तनाथ जी रा देहरा २, महावीर जी ना देहरा ३ पारसनाथ जी रो १ गाम १ मरेट नवाब की, तेहमे देहरा १८, ऋषभदेव जी को १, सन्तनाथ जी का २, अजितनाथ जी का १, सम्भवनाथ जी को १, अभिनन्दन जी को १, सुमत्तिनाथ जी को १, पदमप्रभु

जी को १, सुपार्श्वनाथ जी को १, चन्दाप्रभु जी को २, सीतलनाथ जी का २, नेमनाथ जी को १, वासपूज जी को १, विमलनाथ जी का २, गोडी पार्श्वनाथ जी का १, सेहर १, **अहमदाबाद** गुजरात-तिण मे देहरा १२१, ऋषभदेव जी का १६, देहरा सम्भवनाथ जी का ५, अजितनाथ जी का ५, धर्मनाथ जी का २, पञ्चासर पार्श्व-नाथ जी को १, जीरावला पार्श्वनाथ जी को १, सातनाथ जी का देहरा २५, सुवधनाथ जी रा देहरा ५, सीतलनाथ जी रा ४, गौडी पार्श्वनाथ जो का ३, महावीर जी का ७, सहसफणा पार्श्व-नाथ जी का ५, सखेश्वरा जी को १, सीमधर जी को १, चिंता-मण पार्श्वनाथ जी का ३, नाकोडा पार्श्वनाथ जी को १, जगचिंता-मणि पार्श्वनाथ १, मुनिसुव्रत पार्श्वनाथ २, रतन पार्श्वनाथ २, चन्दाप्रभु जी का ४, चिंतामणि पार्श्वनाथ जी का ५, सावल्यिा पार्श्वनाथ का ३, डण्डा पार्श्वनाथ का १, कोका पार्श्वनाथ जी को १, जीरावला पार्श्वनाथ जी का २, चोमुख जी ३, सीमधर स्वामी १, नेमनाथ जी को १, अमरनाथ जी को १, विमलनाथ जी का ३, पदमप्रभू जी का ३, मुनिसुव्रत जी को १, कल्याण पार्श्वनाथ जी का २, जमले देहरा १२१, **अहमदाबाद** मे छै।

गाम १, **मेसाणा** तिण मे देहरा १०, नेमनाथ जी को १, पार्श्वनाथ जी को १, चन्दाप्रभु जी का १, ऋषभदेव जी का २, सातनाथ जी को १, सीतलनाथ जी को १, चोमुख जी को १, नन्दीश्वर द्वीप को १, **दादाजी** का पादुका १। तिहाथी गाम १ **वटादरो** ते मद्धे देवल १, जीरावला पार्श्वनाथ जी रो तिहाथी गाम **सोजतरा**, ते मद्धे देवल ३, सन्तनाथजी को १, अजितनाथ जी को १, महावीर जी को १, तिहा थी आदेसर जी का पादुका पद्मावती माता।

तिहाँ थी गाम **मातर** ते मद्धे साचादेव देवरा चार ४, सुमति-

नाथ जी पाचमा चारा मा सतिनाथ चन्दाप्रभु सामलिया पार्श्वनाथ तिहा थी गाम खेडा, ते मद्धे देवरा १०, पल्वीया पार्श्वनाथ को देवल १, अमीझरा पार्श्वनाथ जी को १, भोअरा मा चन्दाप्रभु जी चोमुख जी १, अरनाथ जी १, समोसरण को दरा १, अष्टापद जी को देवल १, सभवनाथ जी को देवल १, सन्तनाथ जी को देवलो परा मा देवल ऋषभदेव जी को ।

तिहाँ से **ग्राम पाटण** मद्धे देवल ११, महसकोम जी १ सहस-फणा पार्श्वनाथ जी का देवल २, ऋपभदेव जी का देवल ९, मेरु-पर्वत १, अष्टापद जी १, समोगरण १, महावीर जी २, सुपार्श्व-नाथ का २, चन्दाप्रभु जी का ३, चिन्तामणि पार्श्वनाथ जी का ७, पञ्चासरा जी को १, भमत्ति मुनीसर को १, अजितनाय जी का देवल ४, शम्भुनाथ जी ३, गोरी पार्श्वनाथ जी २, वाडि पार्श्वनाथ जी को चोमुख १, नारगा पार्श्वनाथ जी को १, वासपूज्य जी का २, मन्दर स्वामी को १, सखेश्वर पार्श्वनाथ जो को कोका पार्श्वनाथ जी को १, जिरावला पार्श्वनाथ जी को १, अभिनन्दन जी को २, सुमत्तिनाथ जी को २, सुवधिनाथ जी को १, शीतलनाथ जी को ३, कुन्थुनाथ जी को १, नेमनाथ जी को १, नमिनाथ जी को १, मल्लिनाथ जी को १, सन्तिनाथ जी को ९, मुनि सुव्रत जी का २, धरमनाथ जी का २, विमलनाथ जी का २, अनन्तनाथ जी का १, पद्मचन्द्रप्रभु जी को ३, रतनपार्श्वनाथ जी का २, कल्याण पार्श्वनाथ १, मानमोहन पार्श्वनाथजी को १, भांडमोहन पार्श्वनाथजी को १, मुनि पार्श्वनाथ जी को १, भाद्रवा पार्श्वनाथ जी १, वास-पूज्य जी का १, टीका पार्श्वनाथ जी को १, सन्तिनाथजी को २।

तिहाति चाल्या गाउ ५, **ग्राम भटेवा** मद्धे देवल २, भटेरा पारापार्श्वनाथ जी रो १, ऋपभदेव जी उपर ।

तिहाथी **वीसनगर** आव्या ते मद्धे देवरा ४, कल्याण पार्श्वनाथ

जी को १, ते ऊपर सहसफणा पार्श्वनाथ जी, तीसरे मालगोडी पार्श्वनाथ जी तिहां से पुर ७ मे शातिनाथ जी, तिहां से चाटक गाउ ३, गाम **वड़नगर** ते मद्धे देवरा ६, ऋषभदेव जी रा २, महावीर जी का १, कुन्थुनाथ जी का १, सहसफणा पार्श्वनाथ जी का १, ते सामा पवप्रमेश्री १, तिहा थी चाल्या गाउ ७, गाम **श्रीपुर** मद्धे देवल १, मुनि सुव्रत वीसमा को, तिहां थी चाल्या गाउ ७, गाम **तारंगाजी** ने मद्धे देवल ७, धर्मशाला २, कुड २, तालाव १, देवल १, अजितनाथ जी को सहसकोट १, मेरु पर्वत १, समवशरण १, अष्टापद जी १, नन्दीश्वर बावन चोमुख गिरवर जी का पगल्या, तिहा दस हजार साधु समोसर्या, चोरासी गणधर का पगल्या, चोमुख। शान्तिनाथ जी को देवल १, सामलिया पार्श्वनाथ जी १, शासनदेवी १, आचारज उपाध्याय ता पगल्या जक्षदेवी की चोकी मुनीसर की टकरी ते ऊपर देरी छे मध्ये पगल्या छे, अनन्ता साधु सिद्धी गया। हेठे हडुमान जी छे।

तिहा से गाउ वारे गाम १, **जसोरात** मद्धे देवल १ सन्तिनाथ जी को, तिहा से गाउ ३ गा **पालाणपुर** सेर १ ते मद्धे देवल ८ पालविया पारसनाथ जी को, ऋषभदेव जी को २, भमति माँ गवडी पारसनाथ जी को १, शांतिनाथ जी को ३, सम्भवनाथ जी को १, नेमनाथ जी को १, महालक्ष्मी को १, तिहाथी चाल्या गाम **आबुजी** आवया ते मद्धे देवल १३, ऋषभदेव जी का ३, नेमनाथ जी को १, भमति माँ मुनिसुव्रत स्वामी को देवल १, तहाँ चौवीसी है। पार्श्वनाथ जी का चौमुख ३, तीजे खण्ड केसरी चकेसरी शासनदेवी चेतरपाल १, देवरानी-जेठानी गोखला २, जीके ऊपर चौमुख २, मिडल ऊपर देवल १, सन्तनाथ जी को नेमनाथ जी की भमत्ति माँ १२, पातशाह सामलिया पारसनाथ जो को चौमुख दरवाजा बाहर क्षेत्रपाल से हेठै नागजी दूदमजी ते

सामने विमलशाह पोतानो सर्व परिवार लेई ऊभा छै । खजानो समा साथै धर्मशाला मा छ., ते सामे अजितनाथ जी को डेरो छ., ते सामे सन्तनाथ जी को देरो छ । ते ऊपर सामलिया पारसनाथ जी रो देवल, ते ऊपर सिद्धाचल जी की चौवीसी, दरवाजा ४, धर्मशाला ४, फूल की वाड़ी कुण्ड १, देह (च) हुम्बड को १ ।

तिहाँ से चाल्या गौउ तीन अचलगढ़—तिहाँ देवरा ७, हेठे चौमुख जी १, नेमनाथ जी १, पारसनाथ जी को १, कुन्थुनाथ जी को १, ऋषभदेव जी को १, फिर हेठे गाम सामने सन्तनाथ जी को देरो १, गाम हेठे कुड १ धीनो, चाडावे घी पी गया । जरणना चौमुख जी कचन का, ते ऊपर चौमुख जी रो दोहरो वन्यौं छ. । तिसे गाऊ दो महावीर जी देरो १ गाम भा छ ।

तिहाँ से गाम सिरोई गाऊ २५ ते मद्धे देवल १४, देवरा जिरावला पारसनाथ जी को १ ऋषभदेव जी का चौमुख सुवा २ अचल पारसनाथ को १ मुनि सुव्रत को १ नेमनाथ जी को १ संभवनाथ जी को १, चिन्तामण पारसनाथ जी को १, शीतलनाथ जी को १ चन्द्रप्रभु जी को १ नन्दीसरद्वीपा १ महावीर जी १ श्रेयासनाथ जी १, गोडी पारसनाथ जी १ शान्तिनाथ जी को ।

तिहाँथि चाल्य गाम गऊ ४०, **वरकाना जी देवरो** १, **वरकाना**-पारसनाथ जो को १, तेनि मति ५२ देरी, सामि चौवीसी, वाहर जागदेव नो कुड केसर को हेठे कुंड १, धर्मशाला २, दरवाजा वार ।

तिहाँ से गाम सादरी गाऊ १२ ते मद्धे देवरो १, शान्तिनाथ जी को भमति देवरो १, ऋषभदेव जी १ ।

तिहाँ से गऊ ३, **राणपुर** भछे देवल १, मद्धे ऋषभदेव जी ना चौमुख ३, तीसरा माल तांई, ते हेठे महावीर जी, समोशरण जी मोक्ष वसि सांवलिया पारसनाथ, नेमनाथ जी, भुवँरा १४, अन छ ८४, मेरु पर्वत, नन्दीसरद्वीप सिद्धचक्र ८४, गवरना-

पगला, शेषफणा पारसनाथ जी, ते मा थम्भ ८४, ते मा थम्भ बे लाख ना वे तिने साहमां धनौ पोरवाड हाथ जोडि उमा छै सम्मेद-शिखर जी धरकोट स्वर्ग पाताल मृत्युलोक को छै अष्टापद जी, गरबर जी, क्षेत्रपाल जी, माता भवानी, २९ तामा छै। कोठा १, सोना रूपा की भरी तीन वार लुटाई सुपना १४, नो आकार छै। मुरादेवी माता धर्मशाला १, दरवाजा बारह दरवाजा ४ छै। कुंड १ मडल ८, अजीतनाथ जी को, गौड़ि पारसनाथ जी, वासपूज जी, चौमुख जी, सहसकूट, सहसदेव, णिद्धाचल जी, दादाजी का पगला, जमले सर्व मिली ४९, दर्शन करया छै।

तिहाँ थी चाल्या नंडालि मा देरा ५, सन्तनाथ जी, पद्मप्रभु जी, नेमनाथ जी, जगवाल पारसनाथ जी, शीतलनाथ। नाडलाइ मा देरा ११ छै ऋषभदेव जी ना देरा २, १, देवरो अपासरा मा अजीतनाथ जी को सुपार्श्वनाथ जी ऊपर जादवा जी को वासपूज जी को नेमनाथ जी को।

तिहाँ थी गाऊ ३, धानोरा छै ते माय देवरा ७, छै—गौड़ि पारसनाथ, ऋषभनाथ जी, धर्मनाथ जी, कुन्थुनाथ जी, देरासर १, उपासरा मा जिगवला पारसनाथ। तिहाँथि गाम टालिऊ ७, ते मद्धे देवल १, सन्तनाथ जी रो। तिहाँ मे गऊ ५ हिलोद—ते मद्धे देवल ५, उपासरामा देवल १, ऋषभदेव जी रो १, शान्तिनाथ जी रो १, पारसनाथ जी को १, गौडी पारसनाथ जी को १।

तिहाँ से १ उदयपुर गऊ ७, ते मद्धे देवल २४, ऋषभदेव जी रा ४, शेषफना पारसनाथ जी रा २, गौडी पारसनाथ रा २, शीतलनाथ जी का ३, चदाप्रभु जी का ३, सामलिया पारसनाथ जी का १, सुपार्श्वनाथ जी का १, दादा पारसनाथ जी का १, पद्मप्रभु जी को १, सन्तनाथ जी को २, चौमुख जी २, पारसनाथ जी को। तिहाँ से पुरा मे देवरा २, सन्तनाथ जी को १, पदमनाथ जी को १।

तिहाँ से २, **सिहोर**—तिहाँ देवल ३, ऋषभदेव जी रो १, सन्तनाथ जी रो १, नागेसर जी रो देरी। तिहाँ से गऊ १८, गाम **धुलेव जी**—तिहाँ देवल १, केसरियानाथ जी, ऋपभदेव जी, भमति १, ते मद्धे नेमनाथ जी, सन्तनाथ जी, शामनदेवी १, मानभद्र जी, महाराज, सामे ८८, गणधरना पगल्या, धर्मशाला ३, बावडी १।

तिहाथि गाऊ ७, **डूंगरपुर** छै ते मद्धे डेरा ४, छै ऋपभदेव जी रो १, कल्याण पारसनाथ जी, चिन्तामन, पारसनाथ जी को ३, सामलिया पारसनाथ जी को। तिहाँथि गाम १, **सरडार**, देवरो १, ऋषभदेव जी को। तिहाँथी गाम १, **सपदी** सन्तनाथ जी को देवरो १, गाम १, **अपेनगर** देवरो १, महावीर जी को, तिहाथि गाम **बीजापुर** मा देवरा ७, ऋषभदेव जी को चौमुख जी असनाथ जी, चिन्तामन पारसनाथ, नेमनाथ पदमावती की गाम १, **अटवाड़ो** देवरो १, शान्तिनाथ जी को गाम १, **बआन** ऋपभ-देव जी को १।

तिहाँमे गाम १ वर्द्धज्यो (वदरज्यो) देवल १, संभवनाथ का, तिहाँथि गाम १, **रतनपुर** ते मद्धे देवल १, ऋपभदेव जी को, तियाथि गाम १, **सुरो** ते मद्धे देवल १, सन्तनाथ जी को, गाम १, **वरावन** देवरो १, ऋपभदेव जो को, गाम १, **पाटरी** देरो १, शान्तिनाथ जी को गाम **बढ़वान** देरो १ सन्तनाथ जी को, गाम १ **दामरो** ते मद्धे देरो १, ऋषभदेव जी रो तिहाँ से गाम १, **पंचासरा** ते मद्धे देवल १, महावीर जी को, तिहाँ से शहर १, गाँऊ राधनपुर ते मद्धे देवल १८, अजीतनाथ जी को २, चिन्ता-मणि जी को २, प रसनाथ जी को १, ऋषभदेव जी का २, सन्त-नाथ जी ३, पारसनाथ जी का २, महावीर जी का २, सामलिया पारसनाथ जी को १, गौपफणा पारसनाथ जी को १, वासपूज जी को १, धर्मनाथ जी को चौमुखीडिया पारासनाथ जी को १, ऋपभ-

देव जी को चौमुख भूंरा मा धर्मनाथ जी १, तियासे गाम **मोरवाड़ो** सन्तनाथ जी को देवल १ ।

तिहासे **संघपलो** सघवीनाथु यात्राकरि, ७ सघ १, **पाटन** को गाडी ३५०, संघ १, **अहमदावाद** को गाडी २५० संघ १, **पलि** को गाडी ६०, सघ १ **राघनपुर** को गाडी १५०, संघ १ **वीसनगर** को गाडी २७, संघ १ **पालनपुर** गाडी १२५ सघ १ वीजापुर को गाडी ४६, सघ १ **इडर** गाडी ६०, संघ १ **सूरत** को गाडी ८० सघ १ **भावनगर** गाडी १५, सघ १ वडनगर नो गाडी २१, सघ १ **वड़ोदरानो** गाडी ७, सघ १ एकाखमातको गाडी ५५, सघ १ **माडवी** को गाडी ९००, श्री पूज्य **तपेगच्छ** को ठानु २५० (२॥) साथै, सघ १ **अजमेर** को गाडी १५०, खरतरगच्छना ठाणा ३५ सवेगी १७, सघ १ **समिको** गाडी ५०, सघ सर्वे श्रावक श्राविका साधू माध्वी मलीने सघ यात्रा ७१००० ग्राम मोरवाडे **बरखड़ी** हेठ यात्राकरि छै । सघ वीजो गाम **भांडिविनो** सगती पानाचन्द कच्छघुजये गाडी ५५० घोडा १०० नगाहा निशान समेत । सघ १ राघनपुर को गाडी ७५ सघ १ **पाटन** को गाडी ६०, सघ १ **वीसलनगर** गाडी ७, सघ १ समिको गाडी १७ सघ १ गामडा सर्वेगाडी ४०० साघूका था चाला **कीर्तिविजय लक्ष्मीविजय** रूपविजय आसकरण जी कुँवर विजय यात्रा ७ **बरखडो** यात्रा सर्वमलि हजार पन्द्रह १५००० यात्रा करिछे तिहाथि गाँव **घारमो** देवरो १ ते मद्धे धातुनो चौवीस सात, गाँव १ **काप्लमा** पारसनाथ थम्म ८४ तियासे गाम १ **पालि** ते मद्धे देवल ४ नौलखा पारसनाथ जी को १, शान्तिनाथ जी सुपार्श्वनाथ जी १ गौडिपारसनाथ जी को १, तिहासे गाँव १, **फलौदी** पारसनाथ जी को देवल १ धर्मशाला ४ तिहासे **शहर** १ **मेड़तो** देवरो १८ ऋषभदेवजीरा २ शान्तिनाथजीरा ३ चिन्तामणि पारसनाथजी २ गौडि पारसनाथ जी को १ पदमप्रभुजी १ सावलिया पारसनाथ जी का २ शैंषफणा पारसनाथजी का २ महावीर

स्वामी को त्रीसवा मुनिसुव्रत स्वामी को १, नेमनाथ जी का १। तिहासे गाम १, किशनगढ ते मद्धे देवल १ ते मधे चिन्तामणि पारसनाथ जी गाम १, जागानेर देवल २ चद्राप्रभु जी १ महावीर जी १ दादाजी की छत्री १, धर्मशाला ३। तियाथि सवाई जयपुर देवग २ सुपार्श्वनाथ जी को १ सुमतिनाथ जी को १ मून (मोहन) वाडी १ ऋषभदेवजी रा पगलया छै.।

श्री भावनगर का देहरा ४ ऋषभदेव जी को १ जिण मे विम्ब १४२, दुजो देहरो कुंथनाथ जी को जिनमे बिंब ६२, तीजी देहरो शान्तिनाथ जी को जिण मे विम्ब ५८, चोथो देहरो गौडी पार्श्वनाथ जी को जिण मे विंव २६ गोगा विन्दर मे देहरा ४ नवखंडा-पार्श्वनाथ जी को देहरो १ तिण मे बिंव ७३, शान्तनाथ जी को देहरो दुजो तिण मे विंव ३३, तीजो देहरो चद्रप्रभु जी को तिण मे ब्रिंव २१, चोथो देहरो जीरावला पारसनाथ जी को विंव ३१।

तलाजो गांव तिण मे देहरा ३ सावला पारसनाथ जी रो देहरो १ तिण मे विंव ३४ उपर चोमुख जी देहरो १ विम्व ८, उपासरा ऊपर देहरो १ शान्तनाथ जी को विम्व ३४। गाँव १ दाणो देहरो १ ऋषभदेव जी को १ विम्व ७। मंदिर जी देहरो १ विम्व १५८, गाँव १ पडमो देहरो १ ऋषभदेव जी को विम्व ७२, देहरो शान्तनाथ जी को विम्व ५१, देहरो १ अजितनाथ जी को विम्व ३६, देहरो १ गोडी पार्श्वनाथ जी का विम्व ६३। गाँव १, सुखेडो देहरो १ पदमप्रभुजी का विम्व ४२ गाँव १ रामसिरपुर देहरो १ पारसनाथ जी को विम्व ८२, देहरो १ सम्भवनाथ जी को विम्व १९ गाँव १ समतपुर देहरो १ वासपूज्य जी को विम्व ११६ भुहरा १ माहे प्रतिमा २२, देहरो १ पदमप्रभु जी को विम्व ६७। गावनोवड़ो तिण मे देहरा ३ एक तो शान्तनाथजी को विम्व १२१, सांवलीया पारसनाथ जी को विम्व ६४, सुपारसनाथ जी रो देहरो तिण मे विम्व ३९, पाणी मे मेहर का पुरा मे देहरो १

शान्तनाथजीको विम्ब ५१ । गाँव १ **गंडारी** देहरा २ तिण मे विम्ब ५८ । गाँव १ **तालरो** देहरो १ ऋषभदेव जी को बिम्ब ३ । गाँव १ **नांदीयो** देहरा ३ **जीवतस्वामी** को विम्ब ४७, पगल्या महावीर जी का १ काउसग रह्या डुगर को पथर हेठे पडतोथो, ओ पगल्यो १ काउसग्गऊभा था । उपवास मा हे देहरासर शान्तनाथ जी को, उहाँ से गाउ ३ देहरो १ गाँव **लोटाणो** श्रो ऋषभदेवजी बिम्ब ११ । **वाभण** नाडदेहरो १ श्रीमहावीर जी को विम्ब ७५, पगल्या २ उहाँ श्री भगवान पोते का उसग्ग रह्या **खरचेद**, उहाँ कासी नीखीली भगवान काढी, पाहाडफाटो, समुद्र जलफलीया, वेद रो जोव देवलोक गया, देहरा का दरवाजा ४ भमनी की देहरी ५२, मोटो सीखरवन्ध धरमशाला ३, पानडी २, एहको मोटो देहरो छै वरसो वरसी मेलो भरीजे छै, लोक जात्रा करण नै घणा आवै छै । गाँव **पडवाड** देहरा ३ एक तो महावीर स्वामी, एक पारसनाथ जी, एक गोडी पारसनाथ जी । उपासरा मोहे सर्वसख्या विम्ब १७ देवी ३ । गाँव १ **माकड़ो** देहरो १ बिम्ब ३ । गाँव १ **नांडोत** देहरो १, महावीर जी को विम्ब ६७ । गाँव १ **बीजापुर** देहरा २ महावीर जी राता **मुहडर** मे गाउ ३ देहरो १ पारसनाथ जी को पगल्या २४ । गाँव १, **साहवाड़ो** देहरा २ । १ रीखभदेव जी को दुजो १ उपासरा माहे बिम्ब संख्या २८ । गाँव १, **वाली** देहरा ३ एक महावीर जी को एक सान्तनाथजी को एक धरमनाथजी को, उपासरा माँहे विम्ब ४१ । गाव १ **खीमाणदो** देहरो १ शान्तनाथजी को विम्ब ३ ।

जोधपुर का देहरा ५ श्री सम्भवनाथजी को देहरो विम्ब १९, श्रीमहावीरजी को विम्ब २१, पाषाण का धातु का ४३ । देहरो १, शान्तिनाथजी को पाषाण का ११, धातु का ३ विम्ब । **मंडोवर** मे देहरो चिन्तामण पारसनाथजी का धातु का विम्ब ९, पाषाण का विम्ब १८ ऋषभदेवजी को देहरो बिम्ब २४ पाषाण का ।

गावतिवरी देहरो १, दादा पारसनाथजी को बिम्ब ६ धातु का पाषाण का २ देहरो १ टीका पारसनाथजी को बिम्ब २१ पाषाण का। गाँव १ **पोहकरण** देहरो श्री गौडी पारसनाथजी को विम्ब ४५। १५ पाषाण का धातु का ३० देहरो १ ऋषभदेव जी को बिम्ब १२ पाषाण का धातु का ५०।

जेसलमेर चिन्तामणि पार्श्वनाथ जी मुरत ८५, दरवाजा बारे १७, फीरती ४३१, गणधर की मूरत १७ पाट १००८४ पाट सीद्धाचल जी की, १०८ प्रातमा पाट २, १'०।१७० वीस वीस २० सव सख्या ५७७ पाट ४ सख्या ७३२ संख्या चितामणि जी की १३०९ **शीतलनाथ जी** को मिंदर १ देहरा मांहे विब २७ गुवारा वारे १०२ पाट १।१·८। सख्या २३७ **संभूनाथ** गु भारा मे तो नव दरवाजा वार ९६ भवती मे ८४ पाट २।५१ एक ६४ सख्या २९५। दरवाजा वार पाट १७०।१७० सव सख्या ६३५ देहरो १ **शातिनाथ जी** को १९६ बिव पाट ३२१७० तीर्थंकरा रो सेतुजा की जी रौ चौवीसी रो पाट पादुका २, **आचार्य** रो **श्री पुजकरायौ**, हाथो २, उपरै शातिनाथ जी की माता पिता छै वठा छै, देहरो १ नीचो **अष्टापद** जी रौ भमती माहे ५४ विव, पाट १।१७०। २, पाट १७० पाट ३।२४ तीन रा छै। बाहिरी भमती मे १२० विव छै देहरो १, **आदीसर जी** को धात का बिब ५, पाषाण का ९, सिद्धचक मूवा मूल गभारा मे माहीला भमती मे विव छोट माट १८२ वाहला भमती मे बिव ८१० पाट ३ चोवीसी का पाट २, भारी १७०।१७० तीर्थंकर सिद्धाचल जी रो पाट एक १०८ बिव। देहरो १, **चदाप्रभु जी** को चोमुखो विव २४, विव माहेली माही भमता वारला भमती ५१ विव पाट ६ देवी ग पाट २, चौवीसी पाट ४, शासन देवी रखवाली सासन जिन रो रखवाला पाट २। दूजी भूम १८० विव चौमुखा चदाप्रभु जी को मूल नायक छै, भमती २०, विव छै चौमुखा मे चंदाप्रभु जी छै।

देहरो १, **माहावीर स्वामी** रो छै जीन से विव ३८, सर्वघात पापाण का ८४ बिंव, पाट २४, देवी को छै।

सैहर मे देह रो १, सुपारसनाथ जी को छै। **जेसलमेर सैर** मे तपा रा उपासरा कनै सुपार्श्वनाथ जी विंव ४५, गौडीपार्श्वनाथ जी को देहरो १, विंव ५, छै। तपा रो छै दे हुदो है **देहरो थेरासा** रो विंव २१ छै। **सुपार्श्वनाथ जी** का देहरा मे भोमीयोजी रा पगलिया छै। **सुपार्श्वनाथ जी** का देहरा मे **माणभद्र जी हीर-विजयसूर जी** प्रतिभा छै।

कोस १, गगासागर तलाव छै, जठे माणभद्र जी छै, गौडी जी रा पगलीया छै, गोरा जक्ष पाषाण छै, सावलीयो छै, **दादा** पग-लीया छै, **कुसलगुर गटीसर** भायँ, गौडी जी रा पगलिया छै छत्री माहे धरमशाला छै। **दादा** रा पगलिया छै, क्षत्री छै कोस १, क्षत्री ३ **दादा** री छै माहे पगला छै, तलाव छै फूल की वाडी छै।

उपासरा तपा रा २, **खरतरां** रा २, **आचलीया** उपासरो १, **वेगडां** रो १ छै लुकडी नो उपासरो १ छै।

लोद्रवे देहरा ५, तपारा ३ छै, चिंतामण पारसनाथ जी का देहरा मे विंव ७ पाषाण का छै, धात का विंव १४, देवी ३ छै। सिद्धचक्र जी १ सहस्रफणो पारसनाथ विंव ३ पगल्या ८८ गणधरना ऋषभदेव जी रो देहरो १, विंव -, धातरी प्रतभा १, पगल्या सित्रुंजा का २४, देहरो १, अजितनाथ जी को मूलनायक १, सिं नाथ जी को १, देहरो १, मूलनायक १, अष्टापद जी को देहरो १, विंव २४। **दादा** रा पगला **तपा** रो उपासरो १, **खरतरा** १, धर्म-शाला ५ क्षेत्रपाल १।

गांव फलोधी देवरा ३, ऋषभदेव जी रो १, बिंव २१, पाषाण का धात की ७, श्री शातिनाथ जी को विंव २१, धात की ६३, शीतलनाथ जी को विंव ३, पापाण की धातु की ४। **बीकानेर** **देवरा १३, श्रीचिंतामण पार्श्वनाथ** विंव ३६, पाषाण की धातु की

३६, शातनाथ जी विंव ८०, ऋषभदेव जी विंव ३१, धात की ४०, गौडी पार्श्वनाथ जी विंब धातु का ९। चौमुख जी भाडासाह विंव २८, पाषाण का धात ४, अजितनाथ जी विंव ७५, पाषाण का धात का ५२। सावलिया पार्श्वनाथ विम्व ७, पाषाण धात का १०। वासपूज जी विंव ५, पाषाण धात का ९, महावीर जी विंव ४, पाषाण का धात का ११, चौदास सुपार्श्वनाथ जी महावीर जी रै देवरी भेलो विंव १, गौडी पार्श्वनाथ जी विंव १, धातु की ८७, पगल्या गणधर दादा जी ८४, दादा जिनदत्त सूरजी, जिनकुशल सूरजी का पगल्या ८४, महावीर जी विंव ३१, पाषाण धात ११, चदाप्रभुजी विंव ४, धात का २१।

गांव देशमोरु देवरा २, संभवनाथ जी विंव ३, धात की ११, उपासरै खरतरा रै ऋषभदेव जी विंव १, धात का ७। नागोर देवरा—ऋषभदेव जी विंव २२५ (पाषाण २१२ धात का १३), ऋषभदेव जी विंव ५२, अजितनाथ जी विंव ५, शातिनाथ जी सावलिया पार्श्वनाथ जी विंव १६, गोडी पार्श्वनाथ जी विंव ३ उपासरै मे खरतरारै विंब १४, पायचद्या रै उपाश्रय २१, खरतरै फेर दूजै उपाश्रै विंव २२।

मेडतै देवरा १३, महावीर जी विंब ४, धात १०, पापाण का चिंतामण पार्श्वनाथ जी विंब १५, पापाण धात ९, वासपूज जी विंब ७, अजितनाथ जी विंव ७, धात ४, अजितनाथ जी विंव ११, शातिनाथ जी विंव १७, पा० ऋषभदेव जी विंव ७, पा० धा० २०, नवो देवरो ऋषभदेव जी रो विंब ११, वाडी पार्श्वनाथ जी विंव ३, पाषाण धात ४५, शातिनाथ जी विंब १५, पाषाण धा० १३, धर्मनाथ जी विंव ७, पा० देरासर विंव ५, धात का वासपूज्य जी विंब २, कवला रै उपाश्रै विंव ४, पा० धा० की ७ देरासरा मे।

अजमेर मे देहरा ७, एक संभवनाथ जी जिसमे धात की

प्रतिमा ३४, पापाण की ५, उपासरै खरतरां कै माहि दह ा ऋभषदेव जी का पाषाण की प्रतिमा ७, धात की ७।

श्री किशनगढ़ में देहरा ३, पचायती श्री चिंतामण जी का धात की प्रतिमा ३१, पापाण की ७, जिमणी तरफ मनमोहन पार्श्वनाथ जी के बिंब धात ११, पापाण ९, वावी तरफ गौडी जी जिसमे बिंब धात के १३, पाषाण ७, पापाण की चौवीसी, खरतर गच्छ का देहर श्री ऋषभदेव जी बिब पापाण के ७, धात के ३२, चरण श्री दादाजी के है। बीजामतियो के देहरा श्री ऋपभदेव जी बिंव पाषाण के २२, धात के २५ है जी।

श्री याददासती

श्री सिद्धाचल जी महीना ४। सवाच्यार रह्या। श्री मवों महावीर जी कोस १०। सवाई जैनगर सू सिद्धाचल जी कोप ४५५ साढाच्यार में। गॉव उन्द मवा सू कोस पचीस २५ दिन पनरा रह्या। गाँव ऊना सै दिप बदर कोस पाँच ५। गाँव दीप से वेरावल पाटण कोस बैयालीस दिन। बारा रह्या १२। मांगरोल वंदर कोस दस १० दिन पनरा रह्या १५। श्री गिरनार जी कोस सतरा दिन ५ रह्या। श्री नवैनगर कोस पैंतीस ३५ दिन तेरा रह्या। पोरबंदर कोस बावीस २२ दिन च्यार रह्या। ममई वदर कास साठि ६० दिन पनरा रह्या १५। सूरत आया कोस इक्याणवै ९१, दिन पचीस रह्या। भुंरच कोस दस, दिन च्यार रह्या। बडोदडो कोस १० दिन तीस रह्या ३०। गॉव डबोई कोस १०, दिन च्यार रह्या। खमाच बदर कोस वीस २० दिन वीस रह्या। अबदाबाद कोस पच्यासी ८५ दिन पैंतीस रह्या ३५। गॉव मुसानो कोस १३ दिन पैंतीस ३५ रह्या। पीरपापहन कोस बतीस ३२ दिन बावीस रह्या। वीसनगर कोस १० दिन च्यार ४ रह्या।

श्री तारंगा जी कोस १२ बारा दिन पाँच ५ रह्या। पालनपुर कोस पचीस २५ दिन रह्या १२। श्री आबू जी कोस बतीस ३२ दिन बारा रह्या १२। सिरोही कोस पचीस २५ दिन छ ६। गाँव घणेंरो कोस पचीस २५ दिन आठ रह्या। उदैपुर कोस २० दिन बतीस रह्या। श्री धुलेवा केसरयानाथ कोस १६ दिन आठ ८। श्री मोडवासो कोस पच्याणवे ९५ दिन ५२ बावन। भावनगर बदर कोस पच्याणवे ९५ दिन बात्रीस रह्या। सिद्धाचलजी कोस बावीस २२ दिन २० रह्या। पीरपाहण कोस १२५ एक सौ पचीस, मास साडा ३॥ तीन रह्या। पालनपुर कोस पनरा १५ दिन तीस रह्या। गाँव नादियो सोरोई पासि पाली आया १०१ एक सौ एक दिन बतीस। जोधपुर कोस १८ अठारा दिन सात ७ रह्या। जेसलमेर कोस ९५ पच्याणवे, मास १। सवा एक। बीकानेर कोस ९० निबे दिन १५ पनरा। सवाई जैपुर कोस पच्याणवें ९५, दिन तीस रह्या ३०।

सवाई जैपुर की देहरा की याददास्ती—

१ प्रथम पचायती ७ मूलनायक सुपार्श्वनाथ जी धात के बिंब १९ पाषाण के बिंब ५, २ श्री महावीर जी के देहरा मे पाषाण के बिंब ५, धातके बिंब २, चूतरी ३ मे, ३ गौडीपार्श्वनाथ, च्यार पाषाण के धात के २०, चरबरी १ नेमनाथ पाषण की चौबीसी ५ बिंब ९ धातु के बिंब १५, जमली बिंब ७९, क्षेत्रपाल १, काठ का नदीश्वर देहरै ५२, देहरा १ आसवाल का तपैगछ मूलनायक ५ सुमतिनाथ बिंब पाषाण के ४, धातु के १८, धात के चौमुख २ चव ो १, ऋषभदेवजी की पाषाण के बिंब ४, धात के बिंब ११, पट १ का धात को सेत्रुजै जी को, परमेष्ठी नवकार को, सिंघासण १ तिस ऊपर पगले उपासरा विजामती का देहरासर मूलनायक ऋषभदेव जी पाषाण के बिंब ६ धात के बिंब १७। उपासरा

पायचंदया मूलनायक पार्श्वनाथ पाषाण के बिंब ३ धात के बिंब १०। उपासरा खरतरा **जिन सूरि** का, सिंघासण दादाजी का, पगला ७२। उपासरा खरतर का १ उपासरा १, **तपा** का उपासरा **जिस विजै** का १, सिंघासण १ जिसके ऊपर **दादाजी** का पगला २। उपासरा **लोकागछ** का १, **मोहन** वाडी मे पगलै ऋषभदेव जी का १ पगल्या दादाजी का।

१ **सांगानेर** मे देहरा चंदाप्रभु जी का बिंब ६ पाषाण के धात्त के ११। श्री महावीर जी बिंब ७, पाषाण के धात के ७, परमेष्ठी नवकार का सिंघासण १ **दादाजी** का पगल्यै २, भाई दोय देर कै सामनै हाथ जोड सामनै उभा छै।

गावै १ **आमेर** पुर चदाप्रभु मूलनायक बिंब पाषाण के ४ धात के ८, **आखोह** मे देहरो १ सुपार्श्वनाथ जी को पाषाणे बिंब १ धात के ३।

आगरो (१) चिंतामण पार्श्वनाथ बिंब १, पाषाण के धात के ७, चौमुखो पाषाण के १ बिंब पाषाण के २१। देहरा १ (२) सीमधर स्वामी जी का बिंब पाषाण के १० धात के ६।

भरतपुर देहरा १ धरमनाथ जी मूलनायक बिंब पाषाण के ८ धात के ११।

मथुरा मे देहरो १ पार्श्वनाथ चिंतामण बिंब पाषाण के ४ धात के ११, पगल्या जंबू स्वामी का सिंघासण ऊपर छत्री।

कंपल्यानगरी पारसनाथ का कल्याण ४ बिंब पाषाण के ७ धातु के ५।

फरकाबाद मे देहरो एक मूलनायक धर्मनाथजी बिंब पाषाण के ७ धात के सिद्धचक्र १७ धात के बिंब ११ दादाजी का पगल्या ४।

नखलेऊ मे देहरा ४ पार्श्वनाथ जी का मूलनायक बिंब पाषाण के १२ धात के बिंब २७। ऊपर चौमुख जी बिंब पाषाण के

१३ धात के १, माता चक्रेश्वरी पाषाण १ दादाजी का पगल्या १ क्षेत्रपाल १। **तपा को** उपासरो मूलनायक पदमप्रभु जी विंव पाषाण १५ धात के १२ रतन की प्रतिमा १ संभूनाथ जी, विंव पाषाण के ७ धात के २, (रस) उपरा **विजामती** का मूलनायक ऋषभदेव जी धात के विंव १, धात की देवी १ श्री शांतिनाथ जी देहरा मे विंव पाषाण के ३१ धात के ३५, रतन की प्रतिमा ३ सिद्धचक्र जी ३ उपर वीस तीर्थंकर के पगल्ये, ऋषभदेव जी के पगले चौवीसी के पगले **दादाजी** के पगल्ये १७ कुंथुनाथ विंव **पाषाण** के ६ धात के ३।

गाँव **नोलाई** देवरो १ चरण ५, आदी सरजी पारसनाथ जी माहावीर जी **दादाजी** गौतम स्वामी का ॥९०॥ **वंगलोसर** १ देहरो १ विंव पाषाणको १ छै धात का विंव ७।

वगलक से कोस १ **अयोध्या** छै। देहरो १ आदिनाथ जी रो छै नामै चरण १० आदि सर जी का १ पार्श्वनाथ जी का, महावीर स्वामी का ३, गौतम स्वामी का ४, श्रोमन्वर स्वामी का, गर्भ कल्याण जन्म कल्याण, तप कल्याण, ज्ञान कल्याण। **दादाजी** को चरण।

बनारस मे देवरो १ **भेलुपुर** मे नेमनाथ जी को, पाषाण का विंव ११ धात का विंव ९।

भदाणी जी रो देवरो १ विंव ३ पाषाण का धात का ७।

सिंगपुरी मे देवरो १ चरण ५ ऋषभदेव जी का गरभ कलाण जनम कल्याण चवदे सुपना केवल ज्ञान, देवरो **कुशलाजी** रो वणायो, पच तीरथ का सहस्रफणा पार्श्वनाथ पाट १ विंव ९६। पार्श्वनाथ विंव २७ सांवला पार्श्वनाथ विंव ५ सुपार्श्वनाथ जी विंव ५ चिंतामण पार्श्वनाथ जी बिंव १७, **मुनीलाल** क देवरो १, चिंतामण पार्श्वनाथ जी विंव १ पाषाण का धात का ११।

उपासरे **तपगछ** के बिंब धातु का ३ चोवीसी १ उपसारु **खरतरगछक रंगविजै** बिंब ३ पाषाण धातु का ५।

देवरा १ **केसरी** बजार मे पाषाण को बिंब १ धात की प्रतिमा १३।

सेरपटणा मध्ये सेठ सुदरसण, थूलभद्र जी, **दादा जी**, देवरो १, शातिनाथ जी को पारसनाथ जी को पाषाण का बिंब ११ धातु का २७, बिंव ३२, देवरो दिगम्बरी १, को।

ब्यार व्हार शरीफ मे देव ३, कुन्थुनाथ जी को बिंव ७, चद्र-प्रभ जी ने बिंब २१ धात का अजितनाथ जी बिंब, पाषाण का ३, चरण ३।

पावापुर मे देवराजल मे चरण महावीर स्वामी का।

नवरत्तन १, कलन ३, कुण्डी तलाब २, गाम बगीचो १, कुण्ड १।

जूनो समसरण जी, नवा सेमासरण जी, मुखर-उपर हेदेहरो महावीर जी को, गाम मे है। उस देहरो मे चरण महावीर का है। प्रतिमा तीन गौड़ी पार्श्वनाथ जी की है।

खत्रीकुंड का पगल्य, **दादा जी** का चरण हो उर चरण तेरे भमती का है।

उर गाम **राजग्रही** मे मदर तीन १, पार्श्वनाथ जी को बिंव पाषाण का ५, धात की चौंवीसी १, देवरो १, शातिनाथ जी को पाषाण बिंव ७, सिद्धचक्र जी १, **दिगंबरी** देहरो ५, धर्मशाला दो, सघ उतरणे कुन्ड बगीची १; कुओ १, पर्वत नीचे महावीर स्वामी का भडार पर्वत के ऊपर बना सालभद्र का क्षत्री है **स्नाटकखेलो** समोशरण चरणमुनीसर का क्षत्री १। वीर का चरण देहरो १ महा-वीर स्वामी को वन १, पाषाण को चरण च्यार मेदर १, पार्श्वनाथ जी प्रतमा ३, चरण ८, **रत्नगिर** टुक दोसरी सेहमफणा पार्श्वनाथ

को देहरो १, चोवीसी १, माहा स्वामी चरणा १, भमती मे च्यार चरण टुक तीसरी **वीपचल** (विपुलाचल) तदेहरो १, चरण ५, वीरचरन को देहरो १, टुक ४, **वीभारगिरि** देहरा २, प्रतमा ११ चोवीसी २, चरण ९ कोप १, गणधर ११, प्रतमा ११, चरण २७, **उदीयाचल** देवरो १, ऋषभदेव जी चरण महावीर का कुड २२, **बड़गाम** पापाण की प्रतिमा ७, गोतम गणधर का पगल्या २, **दादा जी** का पगल्या २, मदर १, **क्षत्री कुंड** गाम १, मदर ३, महावीर जी रो १, पार्श्वनाथ जी रो १, वासपूज्य जी रो १, धर्मशाला २, नदी २, तालाव २, गौ १२, **काकंदो** गाम मंदर १, पार्श्वनाथ जी को फूल की वारी ६।

शिखरजी मध्ये **मधुवन** मे देहरो १, विंब पाषाण ७, धातु का ३ सिद्धचक्र जी १, खाल १, कुड १, कूवो १, पाट १, वीस महाराज को, धर्मशाला १५, पक्की २, फूस की ३, भंडार १, सिंघ प्रोष १, नोवतखानो १, फूल की वागी ३, खेत्रपाल ४, **दादा जी** रो मदर १, चोक मासो १, मदर सामणे गाऊ १, क्षेत्रपाल गाऊ पीछे १, गधर्वनालो गाऊ १, सीतानालो क्षेत्रपाल हनूमान गाऊ १, पहिली टुक कुन्थुनाथ जी की, दूसरी टुकु शातिनाथ जी की, तीसरी टुक अजितनाथ जी की, चउथी टुंक पदमप्रभु जी का ४, पाचमी टुक सुपार्श्वनाथ जी को, छट्ठी टुक विमलनाथ जी की ६, सातमी टुक धर्मनाथ जी की, ८ मी टुक मल्लिनाथ जी की, ९ मी टुक मुनिसुव्रत जी की, १० मी टुक अनन्तनाथ जी की, ११ मी टुक पारसनाथ जी, १२ मी टुक श्रीयासनाथ जी, १३ मी टुक अरनाथ जी, १४ मी टुक नमीनाथ जी, १५ मी टुक सुमतिनाथ जी, १६ मी टुक सभूनाथ जी, १७ वी टुंक अभिनन्दन जी, १८ मी टुक चंदाप्रभु जी, १९ मी टुक सुविधनाथ जी की, २० मी टुंक श्री शीतलनाथ जी की, २१ वी टुक सावलिया जी को देहरो है।

(विंव ५ पगल्या २०) ते मध्ये २, गुसारा १ मे विंव १७ और एक म चउवीसी ४, देवी ६, प्रतिमा ११, कुंड १, झरणो १; धर्मशाला २, खेतपाल १, **दिगंबरीं** का मंदर २१, **दिगंबरीं का तेरा पंथी** का धर्मशाला २, नोवतखानो १, तलाव १।

पालगंज सेहर १, जिसमे राज **सुवर्ण सिंघ** जिसका कुवर **डकेत सिंघ** जिणके पास प्रतिमा १, सावलिया पार्श्वनाथ जी की रहती है, धातु की प्रतिमा ४, पुरा ३, तालाव १, धर्मशाला २।

चंपानगर देहरा ३, वासुपूज्य जी का १, पार्श्वनाथ को १, चौमुख को १, फेर १, **दादाजी** को खेत्रपाल ४, सासनदेवी १, दिगम्बरी को १।

मगसुदाबाद अजीमगंज मध्ये देहरा ३, शिखरबन्ध देहरो १, नेमिनाथ जी को पाषाण का विंब ११, धातु का २१, सिद्धचक्र जी ३, विलोड की प्रतिमा २। वासुपूज्य रो मंदर १, प्रतिमा ६, नवपद जी सिद्धचक्र जी १, देवी ४, ऊपर चौमुख च्यार प्रतिमा **दादाजी** का चरण २, खेत्रपाल ४, रामदेव १, हनुमान १, वगीचा २ फूल का, ते मध्ये कूयो १, रथगर १, घडीखाणो १, पोसाल वृहत् **खरतरगच्छ** की गगा किनारै है। चिन्तामणि पार्श्वनाथ प्रतिमा पाषाण की ७, धातु की १५, देवी १, माणभद्र १, उपर चोमुख १, सीमन्धर जी का पदमप्रभु ना मन्दर १, प्रतिमा पाषाण की ३, धातु की ७, देवी १, खेत्रपाल १, **दादाजी** रा पगल्या १, उपासरै **रंग विजयां** को पहिलै पार।

बालोचर मन्दर २, सभूनाथजी रो देहरो १, प्रतिमा पाषाण की ७, धातु की १८, सिद्धचक्र जी १, देवी २, दादाजी का पगल्या २, खेत्रपाल ३, मन्दर १, पार्श्वनाथ जी को पाषाण का विंव धातु का ११, देवी १, खेत्रपाल १, दादा जी रा पगल्या १।

माजनटोली देहरो १, विलोक की प्रतिमा ३, सिद्धचक्र जी १,

धातु की प्रतिमा ५, खेत्रपाल २, भदी कतरेखा। कीरतबाग को देहरो १, पारसनाथ जी १, वासुपूज्य जी चरण ४, खेत्रपाल ३, समोशरण जी महाजन टोली मे कीर्त्तचन्द धोकलचन्द जी उ। क्षमाकल्याण जी के उपदेश से शास्त्र मे कही विध तिण वध है। पहलो गढ रूपै को सोनै रा कागरा, दूसरो गढ सोने रो रतन का का कागरा, तीसरो गढ रतन कौ रतन का कांगरा, च्यार प्रतिमा पूर्व, पछम, दक्षण, उत्तर तीन छत्र, इकेक प्रतिमा के ऊपर अशोक वृक्ष, बारे परषदा को सरूप, पावड़ी बीस हजार को सरूप बावडी, प्रोलीया दरवाजा ४ इत्यादिक सरूप शास्त्र प्रमाणे छै। आठ प्रातिहारज सब सरूप छै। पहलै गढ मे असवारी रखै देवता मनुष्य दूसरै गढ मे, तिर्यंच सर्व सर्प गरुड, पास मे रहै, वेर-भाव नही, तीसरै गढ मे बार पर्षदा वाणी सुणै, देवता, देवी, मनुष्य, मनुष्यणी, साधु-साध्वी ए बारे पर्षदा।

जगत सेठजी रै देहरै में ११ विंब, ६ धात का दोय दादेजी बगीचा।

[यह ५ इन्च चौड़े, १९ फुट लम्बे वस्त्र पट पर लिखे हुए पिप्पणक Scroll की नकल है, एक तरफ चित्र से प्रारम्भ होकर पूरा अभिलेख है और दूसरी तरफ आंशिक लिखित है, सभवत. अपूर्ण लिखा गया है, लेखक का नाम व लेखन सवतादि नही है।]

[श्री जैन श्वे० पचायती मन्दिर कलकत्ता]

परिशिष्ट ३

तिरथकप्प का सार

भगवान् महावीर एक बार सोरठ देश पधार कर विमलगिरि पर समौसरे। उन्होने पुडरीक गिरि की महिमा बतलाते हुए कहा कि यहाँ अनत सिद्ध हुए हैं। भगवान् ऋषभदेव से अजितनाथ तीर्थङ्कर के पिता जितशत्रु तक असख्य सिद्ध हुए और असख्य उद्धार हुए। इक्ष्वाकु वश के कोटा-कोटि नरेश्वर सिद्ध हुए और 'सगर चक्रवर्त्ती' का उद्धार संपन्न हुआ। अर्हन्त सुविधिनाथ के अन्तरकाल मे तीर्थोच्छेद हुआ। चक्रवर्ती तीर्थंकर शान्तिनाथ ने स्वय उद्धार करा के ऋषभादि तीर्थङ्कर व पुण्डरीक प्रतिमा प्रतिष्ठापित कराने के साथ चैत्यगृह, जीवित स्वामी प्रतिमा व अमृत कुण्ड कराया। अरिष्टनेमि तीर्थंकर के निर्वाणकाल मे बीस कोटि मुनियो के साथ पाँच पाण्डव एव नौ लाख श्रमणियो सहित कुन्तीदेवी सिद्ध हुई। यहाँ शक्रादेश से वैशाखी पूर्णिमा के दिन पाण्डुपुत्र-गधार ने काष्ठमय जिनालय व लेप्यमय बिम्ब स्थापन किए थे।

काल क्रम से पाँच सौ (५००) वर्ष बाद मुरुण्ड देश निवासी के अभिषेक समय प्रतिमा गलित हो जाने से सघ के कोई ढढर नामक श्रावक ने चारो दिशाओ मे बारह योजन दीखने वाली ऋषभदेव प्रतिमा, शान्तिनाथ प्रतिमा व चैत्य वृक्ष के नीचे पुडरीक पादुकाएँ विराजमान की जो देवपूजित रही। कालान्तर मे महेश्वर नगर से दशपूर्वधर वज्रस्वामी आकर बहुतो को प्रतिबोध देगे। माहात्म्य श्रवणकर जावड सेठ का पुत्र भावड उपवास तप पूर्वक अभिग्रह लेगा। छ मास ताम्रलिप्ति मे आवास कर पर्वत शिखर

दर्शन से अष्टम करने पर वैश्रमण के आदेश से अम्बिकादेवी प्रत्यक्ष होगी। आदेश यह है—

दो मास भक्तोपवास से सहस्राम्र वन मे जीवितस्वामी-इच्छा से ऋषभ प्रतिमा ग्रहण करेगा। विमलपुर के गाथापति की पुत्री ऋषभदेव की अम्बधातृ विमलमती जो ऋषभतीर्थ मे मरुदेवी के निर्वाण-समय चक्रेश्वरी हुई थी, तुम्हे प्रतिमा देगी, उसे इस शिखर पर स्थापित करो। यह सुन कर वह प्रतिमा प्राप्त करने गया। चक्रेश्वरी ने उसे वज्रस्वामी के कायोत्सर्ग पूर्वक ऋषभ-प्रतिमा अर्पित की। दो हजार यान के साथ चतुर्विध सघ सह उत्सव पूर्वक सर्व चैत्यो की पूजा करते हुए पैठानपुर से भरोच आवेगा, ताम्रलिप्ति मे भी अठाइ (महोत्सव) करेगा। विधि पूर्वक उत्सवादि के साथ सघ निकालेगा और मेरे निर्वाण से ५७८ वर्ष बाद श्री वज्रस्वामी प्रतिष्ठा करेगे। चैत वदी ८ को विमलगिरि पर प्रतिष्ठा होगी।

मेरे निर्वाण से ५८४ वर्ष (वि० सं० ११४) पश्चात् चैत्र वदी ८ को आर्यरक्षित आकर ध्वजारोहण करेंगे। प्रभास क्षेत्र के मिथ्या दृष्टि यक्ष द्वारा जावड सेठ को उसकी पत्नी सीता सहित क्षीर-समुद्र के गगाहृद मे फेंकने पर वह काल करके महाविदेह के पुष्कलावती विजय मे विमल नरेन्द्र के पुत्र जिनपालित रूप मे उत्पन्न हो तेरहवें वर्ष मे सीमधर स्वामी के पास दीक्षित हो क्रमश केवल-ज्ञान पाकर विचरेगा। सीता भी धातकीखण्ड के अचलपुर मे दमघोष पुत्र कनककेतु ८३ लाख पूर्व तक चक्रवर्ती तुल्य राज्य करके निर्वाण प्राप्त करेगी।

इस प्रकार उद्धारो के प्रवर्त्तमान होने मे १६९० मे (वि० स० १२२२) वाहड का उद्धार होगा (प्रथम अध्ययन) तीर्थपति प्रतिमा अवसर्पिणी काल के छट्ठे आरे और उत्सर्पिणी के पहले आरे के ४२००० वर्ष-दमघोष विमल के यहाँ ४००० वर्ष, २००० वर्ष भानु,

१६००० विष्णु और २०००० वर्ष इन्द्रपूजित रहेगी। फिर यह पुण्डरीक तीर्थ उत्सर्पिणी मे क्षीरधारा, अमृतधारा, पुष्प फलोत्पत्ति, मेघ वृष्टि आदि से विकसित होकर पद्मोत्तर पुत्र पद्मनाभ तीर्थङ्कर के समय अनेक वनस्पति शोभित विमलगिरि तीर्थ होगा। रायण वन मे केवलज्ञानोत्पन्न आदिनाथ व २२ तीर्थङ्करो की यहाँ प्रतिमा स्थापित होगी।

यह पुण्डरीक अध्ययन का दूसरा उद्देश हुआ।

हे गौतम! तीर्थरक्षको के प्रमाद दोष से जावड को घोर उपसर्ग हुआ, पर विमलगिरि के जीर्णोद्धार से तीर्थङ्करत्व प्राप्त करता है या तृतीय भव मे मोक्षगामी होता है। यह सुनकर गौतम स्वामी ने चार-चार स्तुति—"युगादि पुरुषेन्द्राय" श्लोको से वन्दन किया, सौधर्माधिपति ने भी तीर्थ वन्दन और अनुमोदन किया।

फिर पूछने पर प्रभु ने कहा—जावड के उद्धार के पश्चात् इस तीर्थ के दाहिनी ओर केदार गाँव का कवड्डि गाथापति जो मद्यपानरत रहता था, अपना आसन्न मरण ज्ञात कर नवकार पूर्वक गठसी-मुट्ठिसी पच्चक्खाण कर तीर्थाभिमुख हुआ और मरके कुबेर यक्ष के सामाजिक 'कवड यक्ष' हुआ, उसकी भार्या भी मरके उसका वाहन हुई, इनकी पल्योपम की आयु है। इसके प्रभाव से सौराष्ट्र मे धर्म का उदय होगा। यह पुण्डरीक अध्ययन का तीसरा उद्देश हुआ।

हे देवानुप्रिय! इस विमलगिरि का उज्ज्वल शिखर भी अति पवित्र है। अनन्त काल की अपेक्षा से यह अनन्त तीर्थंकरो का दीक्षा, ज्ञान व निर्वाण स्थल है। अन्य स्थलो की अपेक्षा यहाँ की तपश्चर्यादि का परिणाम विशेष से अनन्तफल है। नमीश्वर, अनिल, यशोधर, कृतार्थ, शुद्धमति, जिनेश्वर, शिवकर और सुदर्शन—इन आठो के कल्याण सम्पन्न होने पर इस अवसर्पिणी मे जिस समय

केवलज्ञानी तीर्थंकर के पास ब्रह्मेन्द्र ने पूछा- मेरा निर्वाण कब होगा ? उन्होने कहा भावी अरिष्टनेमि तीर्थंकर के समय वरदिन्न गणधर होकर मोक्ष जाओगे। यह सुनकर उसने अरिष्ट रत्नमयी प्रभु-प्रतिमा बना कर ब्रह्मदेवलोक मे १९ कोडा-कोड़ि सागर पूजी और फिर भरतेश्वर को समर्पित की। उसने उज्ज्वलगिरि शिखर पर स्वर्ण-रौप्य मय अनेक चैत्यो के उद्धार कराये। २६-२०-१६-१०-२ योजन धनुष प्रमाणे अवसर्पिणी मे नेमिनाथ प्रभु की अरिष्टरत्न-मय प्रतिमा असख्य उद्धारो मे विराजमान हुई।

इस महातीर्थ के स्मरण मात्र से भव दुख से छुटकारा होता है। तीर्थवन्दन-स्तुति का महाफल है। देवता लोग भी पूजते हैं। 'गठसहिय' आदि साधारण तप का भी महान् तप अठाई-पक्षक्षमण मासक्षमण यावत् ८ मासक्षमण तक का फल पाता है। यहाँ काल करने वाला आराधक व निकटमेक होता है।

प्रतिष्ठानपुर से बलमित्र-भानुमित्र भिन्न-भिन्न उद्देश्य से निकले मार्ग मे पुलिद द्वारा लूटे जाकर भी तीर्थ भक्ति के प्रभाव से सर्वार्थसिद्धि विमान एकावतारित्व-सीमधर-युगमंधरत्व प्राप्त किया।

जो पुण्डरीक (गिरि) को वन्दन करता है, आराधना करता है, वैमानिक होता है और चतुर्विध सघ सहित वन्दना करने वाला इन्द्र-चक्रवर्ती व तीसरे भव मोक्ष जाता है। इस पुण्डरीक अध्ययन मे रैवतगिरि का जो ऊपर २६-२०-१६-१०-२ योजन-धनुष प्रमाण कहा है, वहाँ अनन्त तीर्थंकर सेवित-स्पर्शित उज्ज्वलगिरि का चतुर्थ उद्देश मे भगवान् अरिष्टनेमि के चरित्र सम्बन्धी बाते गौतम स्वामी के पूछने पर भगवान् ने इस प्रकार बतलाई।

अरिष्टनेमिमोक्ष—रेवतगिरि

धन धनवती के भव से लेकर नौ भवो तक सबध कहते हुए तीर्थंकर नेमिनाथ राजिमती दशवें भव मे हुए। सौरीपुर में हरिवश

मुक्ताफल समुद्रविजय की रानी शिवादेवी के पुत्र रूप मे भगवान् अरिष्टनेमि अपराजित विमान से कातीक वदी १२ को चतुर्दश स्वप्न सूचित सर्वारिष्ट नाशक अवतरित हुए। श्रावण सुदि ५ को चित्रा नक्षत्र मे भगवान् का जन्म हुआ। छप्पन दिशि कुमारियो ने आकर सूतिकर्म किया। चौसठ इन्द्रोने मेरुशिखर ले जाकर अभि-षेक किया। दिव्य वदन, वस्त्र, पुष्प, धूप, बलि, अष्टमगल आरती-दीपक-मंगल गीत नाटक युक्त उत्सव कर माता जी के गोद मे छोडा। उज्ज्वल गिरि पर भी नेमिनाथ प्रतिमा को वन्दन अट्ठाई महोत्सव किया और नन्दीश्वर द्वीप गए। सौरीपुर मे राजा के घर उत्सव हुए। दशवे दिन अरिष्टनेमि नामकरण हुआ।

अन्यदा कृष्ण वलभद्र ने नंद गोकुल से मथुरा आकर मल्लादि को मार कर कस का विध्वस कर डाला और उग्रसेन को राज्या-भिषिक्त किया। जरासध के भय से १८ कुल कोटि यादव सौराष्ट्र आ गए। अष्टम तप पूर्वक लवण समुद्र के ७ योजन भूमि प्राप्त की। रैवत वन मे एक भील त्रिकाल रैवत शिखर को वदन करता था वह मर के वैश्रमण हुआ, जो त्रिकाल पूजा करता है और भग-वान् अरिष्टनेमि के दर्शन कर हर्षित होता है। जहाँ समवशरण स्थान—पर्वत है और यादव-यादविया क्रीडा करते, वहां सत्यभामा के पुत्र युगल उत्पन्न हुआ। शक्रादेश से वैश्रमण ने स्वर्णमय १२ × ९ योजन विस्तार वाली १८ धनुष ऊँचे प्राकार की द्वारिका वसाई, जिसमे अठारह और वत्तीस भूमि वाले विमान जैसे प्रासाद, नदन-वन, वापी युक्त नगर मे यादव लोग रहने लगे। पूर्व मे अरिष्ट रत्नमय नेमिनाथ प्रतिमा युक्त रैवत शिखर, उत्तर मे वेणुवंत, पश्चिम मे गधमादन और दक्षिण मे तुग शिखरी था इस प्रकार की द्वारिका मे जरासध का वध करके वासुदेव वलदेव आनद पूर्वक रहने लगे। वसुदेव के ७२ हजार रानिया थी। दस दसार्हों का

विपुल परिवार युक्त छप्पन कुल कोटि यादव पुत्र पौत्रो के साथ क्रीडा करते थे। भगवान् अरिष्टनेमि विषय विरक्त थे, एक वार उन्होने शख वजा दिया तो लवणसमुद्र पर्यन्त तरगित हो गया, प्रति शब्द से द्वारिका भयभीत हो गई, त्रिभुवन विस्मित हो गया। कृष्णादि सोचने लगे क्या नया वासुदेव होगा ? जव अरिष्ट-नेमि आये तो वल परीक्षा के हेतु पसारी हुई वॉह को उन्होने मोड दिया। जव भगवान् ने वाह पसारी तो कृष्ण उस पर लटक गए पर मोड़ न सके। भगवन को वसतक्रीडा में ले जाकर सत्यभामा, रुक्मिणी आदि ने विवाह प्रश्नादि से निरुत्तर—मौन स्वीकृति मान कर द्वारिका के उग्रसेन को पुत्री राजिमती की माग की।

विवाहोत्सव प्रारभ हुआ। भगवान् को वस्त्रालकार से सुसज्जित किया गया। श्रावणसुदि ६ के दिन इन्द्र प्रेषित मातली सारथी युक्त रथपर विराजमान कोरटक छत्र चामर धारण किए वडे समारोह से बरातसह उग्रसेन-धारिणी के यहां तोरण पर पहुचे। राजिमती विवाह की प्रतीक्षा मे खडी थी। भगवान् ने जव पशु-वाटक के दीन शब्द सुने और सारथी से बारात के भोजनार्थ होने वाले विनाश की वार्ता ज्ञात कर वैराग्य रस रजित प्रभु ने रथ को लौटा लिया और सभी पशुपक्षियो को मुक्त करा के सवत्सरी दान पूर्वक यादवो को सबोधित किया। शुभमुहूर्त्त मे अभिषेक पूर्वक देवासुर मानव वाहक शिविका मे विराजमान होकर हजार राजाओ के साथ द्वारिका से रैवत गिरि की छत्र शिला पर आकर दीक्षित हुए। छट्ठ का पारणा द्वारिका मे राजा वरदिन्न के घर हुआ। उसने जातिस्मरण से अपना पूर्वभव जाना कि मैंने अरिष्ट-नेमि प्रतिमा का पूजन किया था। सभी यादव प्रतिमा की पूजा करने लगे, कृष्ण ने चैत्योद्धार किया। बीस कोडा कोडी वर्ष प्रतिमा को हो गए। राजिमती के इच्छुक रथनेमि को उसने क्षीर पान कर

वमन ग्रहण करने का आदेश देकर प्रतिवोध दिया, उसने भी भगवान् के साथ दीक्षा ली। यह पाचवाँ उद्देश हुआ।

भगवान् को केवलज्ञान होनेपर इन्द्र ने उज्ज्वलगिरि शिखर को वज्र से सस्कारित्त किया। दश धनुष परिमाण की अरिष्ट रत्नमय नेमि प्रतिमा वना कर स्थापित की। आसन्न मण्डप में रत्नाभरण विभूषित हजारो देविया नृत्य करती हैं। नीचे गजेन्द्र कुण्ड वनाया जिसका जल बडा प्रभावशाली है। वहा पर्वतिथि आदि मे नहाकर देव देविया नृत्य गीत पूर्वक आराधना करती है। इन्द्र (निर्मापित) प्रतिमा शक्रादेश से दुप्पसह पर्यन्त वैश्रमण पूजेगा।

गजेन्द्र कुण्ड के स्पर्श से भूत प्रेत वैताल आदि दुष्ट व्यतर वाधाए नही होती। वहुत सी सिद्ध प्रतिमाएँ स्थापित की गईं। सिद्ध यक्ष और कुबेरादेश से देवाचन मे कुसुम-क्रमलारोहण होता है। 'उज्जित' आदि गाथा त्रय गौतम ऋषि निर्मित है। यह कचनवालानक उद्देश हुआ।

जिस समय अर्हन्त अरिष्टनेमि के उज्जंयत पर केवलज्ञान हुआ, कोडी नगर मे सिसिरभट्ट की पुत्री सोमभट्ट की भार्या अवा कोहिडी ने अष्टम का पारणा कराया था। अन्यदा वरदिन्न के पारणे से प्रताडित्त वह अपने पुत्रो के साथ अरिष्टनेमि के ध्यान मे जहाँ १६ विद्यादेविया हैं, भुवनपति मे जम्वृद्वीप प्रमाण भुवन मे देवी हुई। अवधि ज्ञान से रैवतशिखर पर प्रभु को ज्ञात कर वदन किया। कृष्ण ने उसकी रौप्य हेममय प्रतिमा वनवाई, जिसे वरदिन्न स्वामी ने प्रतिष्ठा की। अम्विका शासनदेवी हुई। ब्रह्मेन्द्र ने रत्नमय प्रभु प्रतिमा कराई। चैत्यवदनावसर मे चार (४) थुई प्रवृत्त हुई। महा प्रभावी अम्विका तीसरे भव मोक्षगामिनी है, वीस हजार लक्ष वर्षायु है।

भगवान् को दीक्षा के ५४ दिन वाद आश्विन अमावस्या को केवलज्ञान हुआ। प्रभु ने रैवत गिरि के सहस्राम्रवन मे वहुतो को प्रतिवोध दिया। प्रभु के वरदत्तादि ११ गणधर, अठारह हजार साधु, राजिमती आदि ४४००० साध्विया हुईं। वहुत से जीव प्रतिवोध पाए।

ढढणकुमार ने दोक्षा ली, अतराय के उदय से उन्हे आठ मास तक द्वारिका मे भ्रमण करते आहार नही मिला। किसी सेठ के यहाँ प्रशसा से मोदक मिले, जिनकी आलोचना करते भगवान् के द्वारा कृष्ण की लब्धि बताने पर मोदक चूरते केवलज्ञान पाया। उस दिन रैवत शिखर पर लाखो प्रतिबोध पाये। भगवान् जब उज्ज्वल गिरि पर समवसरे दसो दसार युक्त सभी यादव दिव्य वाहनो मे भक्त्यर्थ आए। कनकवती आदि आठ हजार केवल पाई, तीन लाख यादवियाँ दीक्षित हुईं। राजीमती लाखो के साथ निर्वाण प्राप्त हुई। गजसुकुमाल दोक्षित होकर सोमिल के द्वारा मस्तक पर पाल वाँधकर अगारे डालने से अन्त कृत केवली हो मोक्ष गए। नौ दसार्ह प्रतिवोध पाए।

मद्यपान से क्रुद्ध द्वीपायन द्वारा द्वारिका विनाश प्रसग ज्ञात कर धर्म करने की घोषणा से बहत्तर करोड सडसठ लाख छ हजार यादव मुक्त हुए। उससे २७ गुणी यादवियाँ सिद्ध हुईं। यादव लोग प्रतिदिन अरिष्टनेमि प्रभु की पूजा करते थे। साव प्रद्युम्नादि रैवत गिरिशिखर पर अर्द्धमासोपवास पूर्वक मोक्ष गए। अनिरुद्ध नवकोटि के साथ सिद्ध हुआ, पाण्डव प्रतिबोध पाए।

हे गौतम! अठारह अक्षोहिणी और कौरवो के सहार के पश्चात् हस्तिनापुर मे राज्य करते हुए पाण्डवो ने जव द्वारिका दाह और जराकुमार के प्रसग से वलभद्र द्वारा कृष्ण को छ मास वहन करने आदि प्रसंग ज्ञात कर वैराग रग से अभिभूत होकर

आत्म शुद्धि के लिए नारद मुनि से पृच्छा की और शत्रुजय तीर्थ गए। **'सारावली सूत्र'** से प्रतिवोध पा, मोक्ष गए। भगवान् नेमिनाथ आषाढ सुदी ८ पूर्वाह्लि मे उज्ज्वलगिरि शिखर पर निर्माण प्राप्त हुए। शाश्वत अशाश्वत चैत्य युक्त गिरनार महातीर्थ हुआ। यहाँ पच शक्रस्तवचारस्तुति पूर्वक चैत्यवदन करने से तीसरे भव मोक्ष होता है। यह **नेमिनाथ का छट्ठा उदेश** है।

'सारावली गडिका' की वात सुनकर गौतम स्वामी ने शत्रुजय पधार कर मास कल्प किया। रैवत शिखर को वन्दन किया। द्वारिका के प्रलयकाल व भगवान् के निर्वाण के ३०० वर्ष वाद काष्ठसदीपनादि मिथ्यादृष्टियो द्वारा उपसर्ग हुआ। कचन गुफा मे भरत स्थापित ब्रह्मेन्द्र वाली प्रतिमा चार हजार वर्ष पूजी गई। भगवान् नेमिनाथ के निर्वाण के वाद पाण्डवो ने निर्वाण शिला पर चैत्य वनवा कर लेप्यमय प्रतिमा स्थापित की।

चार हजार वर्ष वाद गधार जनपद सरस्वती पत्तन मे मदन सार्थवाह उज्ज्वल गिरि का माहात्म्य सुन कर यात्रार्थ गया। मार्ग मे देवी ने रुदन करती हुई स्त्री के रूप मे हुताशन प्रवेश कराया। अग्नि का जल हो गया। देवी ने स्तुति-महिमा की। आगे अम्वा के वर से भील को जीत कर मथुरा स्तूप और चम्पा मे वासुपूज्य स्वामी की वदना पूजा की। सौराष्ट्र के मार्ग मे मिथ्यादृष्टि देवता ने स्त्री रूप मे मास की याचना की। सघपति छुरी लेकर स्वमास देने लगा। सघ रक्षक का पुत्र अपना मास देने को प्रस्तुत हुआ, माता भी देने लगी तो देवी ने सतुष्ट होकर जय-जयकार पूर्वक निर्विघ्न यात्रा करने को कहा। अठाई करके क्रमश रत्नपुर आये। कही फले हुए शालि क्षेत्र, कही अमृतयय नदियाँ और घडो दूध झरती गायें, सेना योद्धादि देखे। कम्पिलपुर आकर अट्ठाई की। शक्रादेश से वैश्रमण निर्दिष्ट अम्विका ने अहोरात्र मे

८४ योजन दूर सौराष्ट्र देश पहुँचा दिया। पक्षोपवासी मयण ने गिरिराज पर चढ कर गजेन्द्र कुण्ड मे नहाया और हर्ष पूर्वक प्रभु का अभिषेक किया। प्रतिमा गलित होने के उपसर्ग से सघ ने आहार का त्याग किया। अम्बिका ने वैश्रमण के निर्देश से प्रगट होकर पारणा कराया। हेम गुफा मे कपास बोकर एक प्रहर मे पुष्पित-फलित किया। कुमारी कन्या से कते हुए सूत की बतलाई विधि के अनुसार मयण बधुओ के साथ गजेन्द्र कुण्ड मे नहाया और सकेतानुसार जाते हुए २१ अष्टमंगल मडप, २१ तोरण युक्त छत्र शिला के अधोद्वार मे अरिष्टनेमि समवशरणो मे तीन प्रदक्षिणा पूर्वक कान्ति पूर्ण सुन्दर अरिष्टनेमि प्रतिमात्रय को वदना किया। भरत की प्रतिमा उदित सूर्य जैसी पुष्पारोहित दिव्य कुण्डलादि भूषित एव शत्रु की अरिष्टरत्न की सातिशय प्रतिमा के दर्शन से पाप बधन दूर हुए। "णमो भगवओ अरिट्ठनेमिस्सण" बोलते हुए जयजयकार पूर्वक आया, अगुली से ततु स्पर्शमात्र था। एक ने छत्र, दूसरे ने चामर और तीसरे ने धूपदान लिया। चैत्यके ऊपर लाकर दुदुभि बजाई, स्वर्ण-पुष्पो की वृष्टि की। मणिरत्नमय चैत्य बनवाया गया चारो प्रकार के देव मनुष्यो से युक्त यह **सोरठ देश का तीर्थ** हुआ। क्रमश अश्वसेन क्षत्रिय व नन्दिवर्द्धन ने उद्धार कराया। अस्सी हजार वर्ष पर्यन्त यह मणि रत्नमय चैत्य रहा, जिसका उद्धार जितशत्रु (२०००), दमघोष (६०००) नयवाहन (८०००), पद्म (१२०००), पुण्डरीक (१८०००), विमलवाहन (२००००) आदि निकट सिद्ध होने वालो ने कराया था।

मेरे निर्वाण के ८४५ वर्ष (वि० ३७५) बाद भुवनपति इन्द्र उद्धार करा देगा। दुषम काल प्रभाव से अधार्मिक लोगो के अपवित्र-आशातना से देवताओ का आवागमन कम हो जायगा। प्रतिष्ठान पति शालिवाहन सं० १३६० (८९०) मे कन्नौजपति आम सं० १६५० (११८०) मे गूर्जराधिपति का उद्धार 'सज्जन' करावेगा।

इक्कीस हजार वर्ष वाद १००० धनुष ऊँचा गिरिराज रहेगा और अणपत्री-पणपत्री देव चिरकाल पूजा करेंगे। यह पुडरीक अध्ययन है।

यह विमलगिरि शाश्वत सिद्ध क्षेत्र है। इसका नाम सिद्ध तीर्थ, भगीरथ, पु डरीक, शत्रुञ्जयादि अनेक नाम अवसर्पिणी मे हैं। यहाँ ५ कोडि से पुडरीक, दो-दो कोड़ि से नमि विनमि, ८ कोड़ि से द्राविड-वारिखिल्ल, १० कोडी से भरत, सागर प्रमुख, असख्य कोडा कोडी से, हरिवश के असख्य कोडा कोडी राम-सुग्रीव-विभीषणादि २० कोडी, वाली पाँच लाख से, सेलगाचार्य सिद्ध हुए। साम्ब प्रद्युम्नकोडी से, राजमति प्रमुख ९ करोड ७ लाख सात सौ यादव उज्ज्वलगिरि से सिद्ध हुए। इस प्रकार दिव्य प्रभाव वाला पु डरीक तीर्थ उज्ज्वल शिखर है।

पु डरीक अध्ययन का छट्ठा उद्देश पूर्ण हुआ।

अश्वाववोध भृगुपुर तीर्थ

दक्षिण के नर्मदा प्रदेश के श्रीपुर मे पहले अजितनाथ तीर्थंकर समौसरे। चातुर्मास करने से तीर्थ हुआ। फिर सरस्वती पीठ मे चन्द्रपुर है जहाँ चन्द्रप्रभ तीर्थ हुआ।

फिर भृगुपुर (भरौंच) के राजा जितशत्रु के अश्वरत्न को हनन करने के लिए नर्मदा मे स्नान कराया गया, वह जाति स्मरण से आर्त्तध्यान करने लगा। उसकी अनुकपा वश भगवान् मुनिसुव्रत स्वामी प्रतिष्ठानपुर से चलकर माघ सुदी १ को भरौच के कोरिंट वन मे सहकार वृक्ष के नीचे समौसरे। भगवान् ने अश्व और जितशत्रु राजा का पूर्वभव तथा अपना सवध वतलाकर प्रतिवोध दिया। अश्वरत्न अनशन करके सात अहोरात्र वाद मर के महर्द्धिक देव हुआ। उसने प्रत्यक्ष होकर तेरह कोटि उज्ज्वल रत्नो की वृष्टि की, सारा नगर प्रतिवोध पाया। स्वर्ण-रत्न मणि विभूपित हजार स्तभो वाला मुनिसुव्रत स्वामी का चैत्य निर्माण

कराया। माही पूर्णिमा को स्थापना हुई। उस समय तीन करोड़ पाँच लाख मनुष्य प्रतिबोध पाये। जितशत्रु ने माघ सुदी १५ को अपरान्ह मे लेप्यमय प्रतिमा स्थापित की जिसका रक्षक शक्र है। राजा अनशन पूर्वक नवहल्लपत्तन मे विद्याधर रूप मे उत्पन्न हुआ। अजित अपराजित सह रैवतगिरिशिखर पर बिम्ब स्थापना की। केवली होकर सिद्ध हुआ। अन्य भी स्नानादि करते हुए क्रमश सिद्ध हुए।

अश्वदेव जो इन्द्र का सामानिक देव हुआ, प्रतिदिन तीर्थ प्रभावना करने लगा। भृगुपुर महातीर्थ हो गया। स्वामी के निर्वाण के बारह हजार वर्ष पश्चात् अश्वावबोध तीर्थ का पद्मचक्री ने, फिर हरिषेण चक्री ने उद्धार किया। कृष्ण-बलदेव नरेन्द्र व ईश्वर सार्थवाह भी उद्धार कराया। इक्ष्वाकु वशी दशरथ राम आदि तथा हरिवंश के दशार यादव प्रतिवर्ष उद्धार करते थे। बारह हजार के परिवार से सूर राजा तथा तीन लाख से परिवृत पाडु राजा सिद्ध हुए। भ० अरिष्टनेमि भी यहाँ समवसरे। द्वारिका-दाह के समय प्रत्यासन्न जलधि मे मूर्च्छागत हरिवशोद्भव का उद्धार हुआ।

ग्यारह लाख (छ सौ) चौरासी हजार दो सौ वर्ष बाद अश्वाव-बोध क्षेत्र मे भाद्रव महीने मे सात अहोरात्रवर्ती वर्षा हुई, जिसमे रक्षा के लिए उडती हुई एक शकुनिका बाण विद्ध होकर गिरी। श्रमण चारुचन्द्र ने नवकार मत्र सुनाकर चैत्य के आगे रख दी। दो प्रहर के पश्चात् वह मर के सिहलद्वीप के राजा विजयबाहु की रानी सुमगला के यहाँ 'सुदर्शना कुमारी' रूप मे जन्मी। यौवन प्राप्त होने पर स्वयवर की आयोजना हुई, बहुत से राजा आये। भृगुपुर के सार्थवाह के "णमो अरिहताणं" शब्दोच्चारण से राज-कुमारी मूर्च्छित होकर जातिस्मरण को प्राप्त हुई। राजकुमारी

सुदर्शना ने वैराग्य प्राप्त होकर अश्वावबोध तीर्थ मे श्री मुनिसुव्रत स्वामी को वदनार्थ अभिग्रह किया। विवाह और राज्य से निष्प्रयोजन हो दृढ़प्रतिज्ञ राजकुमारी अपनी सखियो व १६ राजपुत्रो-अगरक्षको के साथ १८ जहाजो मे आरूढ़ होकर भृगुपुर की ओर चली। मार्ग मे शील प्रभाव से दानवराज का हनन किया। नवकार मत्र का जप करते भृगुपुर पहुँच कर प्रभु के दर्शन किए। अठाईमहोत्सवपूर्वक अश्वदेव का आराधन किया। **'शकुनिका विहार'** नामक नया मंदिर निर्माण कराया, जो १००८ ध्वजाओ से विभूषित था। सुदर्शना महादेवी ने बारह वर्ष तक तीर्थभक्ति करके अनशनपूर्वक १६ विद्यादेवियो के पास हजारो देवो और बाण व्यतरो की स्वामिनी, जबूद्वीप प्रमाण धवलगृह मे उत्पन्न हुई।

अपना पूर्वभव स्मरण कर स्नानपूर्वक भद्रसाल, नदन वन, पद्मद्रह से पद्मकमल और गोशीर्ष चन्दनादि ले जाकर अठाई महोत्सव किया फिर नंदीश्वरादि मे चैत्यवन्दना कर भगवान् महावीर को वंदन किया, नाटक किया। शक्रेन्द्र के प्रश्न पर प्रभु ने कहा—यह शकुनिका है, तीसरे भव मे सिद्ध होगी।

आर्य सुहस्तिसूरि के शिष्य सप्रति राजा ने इसका उद्धार कराया। कालिकाचार्य ने चातुर्मास कर उपसर्ग को दूर किया। सिद्धसेन सूरि प्रतिबोधित विक्रम राजा ने जीर्णोद्धार कराया। कालिकाचार्य के समय बनवायी हुई गोशीर्ष चन्दनमय सुदर्शना-प्रतिमा को सिद्धसेन ने प्रतिष्ठापित की। यहाँ भद्रगुप्ताचार्य के पास वज्रस्वामी ने दशपूर्व पूर्ण किये। आकाशगामिनी विद्या (महापरिज्ञा अध्ययन से) उद्धृत की। जृंभक देवो ने महिमा की।

भगवान् ने गौतम स्वामी के पूछने पर कहा कि मेरे निर्वाण से ४८४ (वि० स० १४) मे आर्य खपुटाचार्य मिथ्यादृष्टि देवों द्वारा की हुई रजवृष्टि वद करेंगे।

स० ८४५ मे वल्लभी भंग कर आते हुए अनार्यो को सुदर्शना निवारण करेगी।

स० ८४० मे मल्लवादी आचार्य मिथ्यात्वी देवो का उपद्रव दूर कर एक हजार आचार्यो सहित प्रभावना करेंगे। प्रतिष्ठानपुर का राजा शालिवाहन उद्धार करावेगा। एवं कृष्ण, नरवाहन, शिलादित्य चारो राजा महोत्सव करेंगे। कालकाचार्य और पादलिप्ताचार्य के समय सुदर्शना प्रत्यक्ष होकर नृत्यादि करेगी। इस प्रकार ११ लाख ८५ हजार ९८० वर्ष अनेक राजा सार्थवाहादि से पूजित व्यतीत होगे।

अंबड़, पाटलिपुत्र के दत्त कनक रत्न विभूषित करेंगे। दमघोष जितशत्रु, सुदर्शनादि से उद्धार होगा। बारह लाख पाँच हजार से अधिक वर्ष पूजित रहने वाले इस तीर्थ की दो हजार वर्ष बाद नर्मदा जल कल्लोल और घोरांधकार का मिथ्यादृष्टि देवियो का उपद्रव अश्वदेव दूर करेगा। भगवान् के अठारह हजार वर्ष बाद मुनिसुव्रत प्रतिमा को सुदर्शना स्वस्थान ले जाकर पूजेगी। वह आयु पूर्ण कर धातकी खंड की विजयकेतु राजा होगी फिर सर्वार्थसिद्धि जाकर सर्वानुभूति तीर्थंकर (के समय मुक्त) होगी!

इस तीर्थ की बड़ी महिमा है। कल्याणक पर्वादि मे पूजा का असख्यगुण फल है। इस प्रकार अश्वावबोध तीर्थ के १३२ उद्धार वज्रस्वामी ने बतलाया। पाँच हजार के परिवार से पांडुराजा और हरिवश के कोटि-सहस्र सिद्ध हुए।

चंदेरी-चन्द्रप्रभास

उस काल में चन्द्रप्रभ स्वामी अनेकश चन्देरी नगरी मे समोसरे। ज्वालामालिनी देवी ने वहाँ सिहकीर्ति राजा को अपने चैत्य की प्रतिमा दी, जिसे वहाँ स्थापित की। वह चन्द्रकान्त मणि की शशिभूषण नामक निरालंब प्रतिमा है। प्रभास यक्ष नित्य नाटक

पूजा आदि करता था। दश चक्रवर्ती, प्रतिवासुदेव, कृष्ण बलराम आदि नरेन्द्रो ने इसकी पूजा की। इनकी आराधना से कुन्ती के पाँच पुत्र—पाडव हुए जिन्होने चैत्योद्धार कराया। 'सदाशिव' कहलाये। शिवरात्रि प्रतिष्ठादिवस है। चौरासी हजार वर्ष बाद सिद्धार्थ नरेन्द्र ने उद्धार कराया। कालसदीप व पेढालपुत्र सुव्रत ने नित्य आराधना की। त्रैलोक्य स्वामिनी विद्या सिद्ध हुई।

भगवान् के निर्वाण के ६०० (वि० १३०) वर्ष बाद चदेरी मे वज्रसेन के शिष्य चन्दार्य शि० समन्तभद्र ने प्रतिष्ठा की। मिथ्यादृष्टियो का प्रभाव फैलने पर अतिशय से ईश्वर लिंग की प्रसिद्धि अधिक हुई। सिंहमण्डलाधिप ने द्वार स्थापित कर सिंहासन पर नागराज आरक्षक स्थापन किये। वसुमित्राचार्य अनशन करके काल प्राप्त हुए। इसके बाद ग्राम्य जनों से पूजित सोमलिंग कहलाए। बोटिकदृष्टि वालो ने सीता विहार ग्रहण किया। शालिवाहन को प्रतिबोध देकर पादलिप्ताचार्य ने गिरनार पर रहे दो क्षुल्लको को नागार्जुन प्रभावित चदेरी भेजकर बाद मे जीता। दुषमानुभाव से १४०० वर्ष बाद भस्मग्रह उतरने पर दत्त राजा के समय सम्यग्दृष्टि जन के अधीन हो दस हजार वर्ष श्रमण संघ वदित रह कर फिर रैवतगिरि शिखर पर पूजे जाएंगे, बीस हजार वर्ष त्रिभुवन स्वामिनी मनुष्योत्तर पर्वत पर पूजेगी।

भगवान् महावीर के ज्येष्ठ भ्राता नन्दिवर्द्धन ने पित्तलमय २२ प्रतिमाएँ बनवाई। ५८१ वर्ष पश्चात् अंबादेवी ने उठाकर **चदेरी** के **सिद्धमठ** मे रखी। मिथ्यादृष्टि देवो ने चद्रप्रभ प्रतिमा को अक्षुब्ध भाव से पूजा। 'ज्वालामालिनी' आदि देवियाँ पूजन करती हैं। विक्रम से ३७५ वर्ष अनार्यो ने तथा १०८१-१३८४-१४२९ यावत् दस हजार वर्ष और फिर उज्ज्वल शिखर पर पूजी जायगी। यह चतुर्दशां-पाँचवें **चंदेरी अध्ययन** का हुआ।

उस काल उस समय मे भगवान् चन्द्रप्रभ चदेरी मे समवसरे। लवणाधिपति ने उस स्थान पर सयमचद राजा के लिए तिलकपुर नगर वसाया। यह वारह योजन विस्तृत था। अरिहदत्त गणधर कोटि परिवृत माघ वदि १४ को निर्वाण प्राप्त हुए, जिससे शिवरात्रि प्रसिद्ध हुई। चद्रविमानोद्योत से चन्द्रप्रभास कहलाया। त्रिभुवन स्वामिनी देवी ने इस सिद्ध क्षेत्र पर भगवान् की प्रतिमा स्थापित की। यहाँ पशु-पक्षी आदि के भी कर्म निर्जरा होती है। रामचद्रजी ने यहाँ चातुर्मास किया, सीताविहार हुआ। रावण कैलाश पर चैत्य वदना करके त्रिभुवनस्वामिनी से चद्रप्रभ प्रभु की अमृतलिंग प्रतिमा प्राप्त कर लाया और यहाँ विराजमान की। यही कालक्रम से ज्योतिर्लिंग प्रसिद्ध हुआ।

भगवान् नेमिनाथ का समवशरण होने से यादवो का विद्याधरों का प्रिय मिलन हुआ। पांडव भी समुद्र-सरस्वती तट पर विद्या सिद्ध वारह वर्ष रहे। केवलज्ञान स्थान ब्रह्मकुंड समवशरण, चंद्र-सूर्य-राहु योगस्थान विद्यासिद्धि स्थान है। दुषमानुभाव से ज्योतिर्लिंग कुतीर्थिको ने ग्रहण कर लिया। यह चद्रप्रभास **अध्ययन हुआ।**

उस काल उस समय मे भगवान् चन्द्रप्रभ दक्षिणापथ मे विचरते हुए कलव वन मे समवसरे। नासिकपुर से राजा गोवर्द्धन वदनार्थ आया। हे गौतम! उस देव-मनुष्यो की सभा मे एक गाय ने आकर अपना पूर्व कर्म पूछा। भगवान् ने कहा—एक कागिणी का ऋण जो तुमने करके नौ भव पूर्व तिर्यंच गंथी वाँधी थी, उसी ऋण से दासत्व, भिखारीपना और तिर्यंचपना प्राप्त होता है। प्रतिवोध पाकर वह १८ दिनो के अनशन से वैमानिक देव हुई। राजा भी निष्क्रमण करके ब्रह्मेन्द्र हुआ। वह उस समय जहाँ क्रीडा करता था, ब्रह्मगिरि पर वनवाई हुई जीवितस्वामी की रत्नमय प्रतिमा थी, जहाँ गाय अमृत झरती थी। क्रमश अजना

ने आराधना की, जीर्णोद्धार हुआ। राम, लक्ष्मण, सीता ने चार वर्ष आराधना की। हस्तिनापुर मे पुत्रार्थ अग्नि प्रवेश करते कुती को नारद मुनि ने पूर्वभव बतलाया, उपवास पूर्वक आराधना से धर्मपुत्र युधिष्ठिर जन्मा। शील प्रभाव से सदा पूजा की, पाण्डवो ने बारहवे वर्ष जीर्णोद्धार किया। **ज्वालामालिनी** शासन देवी हुई। श्रमण सघ ने प्रतिष्ठा की तब से दिनोदिन **जीवित स्वामी** प्रतिमा का माहात्म्य बढा, अनेक उद्धार हुए। चक्रवर्त्ती बलदेव वासुदेवो से पूजित प्रतिमा और चैत्य का उद्धार हरिवश द्वारा हुआ। चेडा महाराजा ने भी उद्धार कराया।

कृष्णदेव के प्राप्त कर बीस हजार वर्ष व्यतिक्रान्त होने पर चन्द्रप्रभु प्रतिमा को देवी अपने भवन मे ग्रहण करेगी। करोड़ अडसठ लाख छत्तीस हजार वर्ष यह तीर्थ विद्याधर-चक्रवाल पूजा हेतु विजययक्ष पूजित **तीर्थ का उद्देश** है।

उस काल उस समय मे दक्षिण खण्ड मे पूर्ण नाटक द्वीप में चन्देरीपुर मे चन्द्रप्रभ स्वामी **जीवितस्वामी**की शक्र प्रतिष्ठित प्रतिमा सूर्य जैसी तेजस्वी अमृत वर्षाने वाली, देवपूज्य अठारह हजार वर्ष रहेगी, फिर भुवनपति देवो द्वारा पूजी जायगी। **चन्द्रावती उद्देश** हुआ।

जिस समय लंका मे मन्दोदरी अष्टमपूर्वक प्रौषध व्रत मे रही तो तीसरे दिन त्रिभुवन स्वामिनी ने अपनी चन्द्रप्रभ प्रतिमा दी। कालक्रम से अयोध्या मे लाकर सीता ने पूजी, फिर देवताओ ने ग्रहण कर ली। फिर **पण्डुमथुरा** मे पाण्डवो के मासक्षमण करने पर त्रिभुवन स्वामिनी ने उन्हे दी जिसे पट्टण मे स्थापित की वही सोलह हजार वर्ष बीतने पर यक्षराज पूजेगा।

नाहड़-साचोर तीर्थ

एक बार कन्नौज देश-हस्तिनापुर मे श्री **आर्य महागिरि** सम-

वसरे। गुरुमहाराज ने किसी विरूप देहवाले भिखारी की ओर बारबार देखा तो देवनन्दि सेठ ने समझ लिया कि अवश्य ही यह प्रभावक होगा। अत उसे अपने घर पर लाकर रख लिया। पूछने पर ज्ञात हुआ कि यह जितशत्रु-नन्दन नाहड है। क्रमश तरुण, हुआ, दुर्विनीत होने से कुछ नही सीखता पर केवल नवकार मन्त्र ग्रहण किया। उस प्रदेश मे एक सिद्धयोगीन्द्र सौ योगियो के साथ आया। उसने विद्या सिद्ध करने के हेतु नाहड को अपने वश में कर रात्रि के समय स्मशान में बुलाया। मृतक व वेताल के प्रयोग से मुझे मार कर स्वर्ण पुरुष बनाने मे योगी सचेष्ट है, ऐसा ज्ञात कर "णमो अरिहंताण" का जाप किया और परिव्राजक को ही अग्निकुण्ड मे फेंक दिया जिससे 'स्वर्णपुरुष' सिद्ध हो गया। उस नगरी का राजा यशोवर्म अपुत्रिया मर गया था जिसके उत्तराधिकारी नियुक्त करने के लिए पंच दिवा प्रगट हुआ और नाहड राज्याभिषिक्त हो गया। आकाशवाणी घोषणा भी हो गई जिससे दुष्ट जन अधीन हो गए। उसी दिन जातिस्मृति प्राप्त कर सार्थवाह-पिता के साथ वाराणसी जाकर आर्य महागिरि गुरु को वन्दन किया। उपदेश से प्रतिबोध पाया। विहार भूमि विस्तृत हुई।

वर्द्धमान तीर्थ की स्थापना के हेतु नैमित्तिक लोगो को भेजा गया। वे भूमि परीक्षा के लिए ग्रामानुग्राम देखते हुए छ मास मे मरुदेश पहुँचे। सच्चउर पट्टण पहुंचे, जहाँ चन्द्रप्रभ स्वामी के समवसरण होने से पवित्रित तीर्थभूमि थी। भगवान् वर्द्धमान स्वामी की जीवित स्वामी प्रतिमा स्थापनार्थ परीक्षित भूमि पर खात मुहूर्त्त किया गया।

उस नगरी मे जोगराय मडलिक था, महाराजा नाहड के निर्देश से अनुमति प्राप्त कर सूत्रधारो को नियुक्त कर दो चैत्य बनवाये। भगवान् महावीर की ओर ब्रह्मशान्ति यक्ष की स्वर्णमय-पित्तलमय प्रतिमाएँ ब्रह्मचारी सूत्रधारो द्वारा निर्मित हुईं। आर्य

सुहस्तीसूरि को प्रतिष्ठाहेतु प्रार्थना की गई। भगवान् महावीर के ३०० वर्ष वाद वैशाख सुदि पूर्णिमा के दिन शुभलग्न मे पच पूर्व-धर आचार्य **जज्जिगसूरि** के निर्देश देकर ५०० श्रमणो के साथ वाराणसी से भेजा। चक्री नाहड भी साचोर आया। अनेक राजा लोग साथ में आये। मार्ग मे अभयदान, अमारि उद्घोषणाएँ होती रही। जज्जगाचार्य श्रमण सघ सहित वैशाख सुदि १० को दुगासय गाँव पहुँचे। सघ के आदेश से भ० ऋषभदेव प्रतिमा प्रतिष्ठित की और **साचोर** पधार गये। सख नामक एक क्षुल्लक शिष्य ने कूप प्रदेश में छाणे से वासक्षेप किया।

वीतराग प्रतिष्ठा के लिए क्षेत्र विशुद्धि की गई। श्वेत सदस वस्त्र पर वासक्षेप, पुष्प धूपादि से तीन वार सूरि-मन्त्र अधिवासित किया। गगापति जल द्वारा इन्द्र-विद्या से अधिसिञ्चित कर जिनेन्द्र का १०८ अभिषेक पूर्वक न्हवण किया। रौप्य-रत्नमय चार पूर्ण कलशो पर चन्दन लेप और पुष्पमाला सहित एव घटिका, रत्न-मालिका, गुच्छक, मगलदीपक आदि किए, अनेक गुड घृतपूर्ण, इक्षुदण्ड, एक अक्षत पूर्ण घट, वस्तु रत्न-सुवर्ण-कुसुम-गधादि से युक्त विधि विधान पूर्वक करके चैत्यवन्दनादि से आराधना की। वैशाखी पूर्णिमा को विशाखा नक्षत्र योग मे ९ घडी ४५ पल ३५ अक्षर प्रमाण शुभ मुहूर्त मे प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई। **जज्जिगसूरि** ने शक्रेन्द्र को प्रत्यक्ष किया। उसने वैश्रमण को निर्देश कर सौधर्मावतशकविमान के उत्तर पश्चिम भाग मे सहस्राशु, महाचण्ड, पूर्णभद्र, मणिभद्र, चिन्तामणि प्रभृति परिवृत ब्रह्मशान्ति को आदेश दिया। वह प्रगट प्रभावी महाबली है। नाहड़ नरेन्द्र की विनती से यह प्रतिष्ठा दोनो चैत्यो की सुमुहूर्त मे हुई। देवेन्द्र असुरेन्द्र विद्याधरादि वहाँ वन्दन करते है। प्रथम मुहूर्त्त मे प्रथम प्रतिमा व दूसरे मे सुवर्णमय प्रतिमा प्रतिष्ठित हुई। सौधर्मकल्पवासी कुवेर यक्ष का अतुल वली **ब्रह्मशान्ति** महायक्ष है।

श्रीपद्मनाम तीर्थङ्कर के समय भी फिर प्रभु वीर पूजनीय होगे। शक्रादेश से यह तीर्थ अभंग हुआ। 'महापरिज्ञा विद्या' ने गगन तल से जाते वीर जिनालय उद्धार किया।

उज्जयिनी मे गर्दभिल्ल द्वारा सरस्वती महत्तरा को ग्रहण करने पर कालकाचार्य ने शको की सहायता से उसका विनाश किया। उसका पुत्र विक्रम हुआ, सत्यपुर मे योगीन्द्र मोहित राजा को नवकार मन्त्र से स्वर्ण पुरुष प्राप्त हुआ। उज्जयिनी मे राज्य करते हुए भी विक्रम वैशाखो पूर्णिमा को सांचोर आकर वीर प्रभु के वन्दन कर भक्तिपूर्वक उत्सव मनाता था। वहाँ भी वह विद्या सिद्ध विख्यात हुआ।

परचक्र के द्वारा सं० ५४१ (८४५) मे वल्लभी नगरी का भग हुआ। वल्लभी मे ३५७ मे शिलादित्य हुआ है। अनार्य देश के वगदादपुर के खलीफा राजा ने लाखो की सेना के साथ आकर युद्ध किया, सन्निवेश नष्ट कर दिए। मूलस्थान से विज्जनाह, चक्कपाणि सूलपाणि, सारगपाणि आदि ने दक्षिण दिशि की ओर जाकर खदेड दिया, असुराधिपति भाग छूटा। वल्लभी मे आश्विन-पूर्णिमा से छ मास रहा। रत्न-माणिक्य रथ समुद्र मे प्रविष्ट हो गए। स्वर्ण रथ श्रीमाल नगर चला गया। सम्यग्दृष्टि देव, जिनेश्वर प्रतिमादि भी गए। विमलगिरि तीर्थ से सम्यग्दृष्टि देवों ने निकाल दिया। चंदेरी भग्न हो गया। गिरनार के निकट कालमेह के पास मेघनाद ने निकाल दिया। गूर्जर देश स्थित स्वर्णप्रतिमा देवशक्ति से पाताल मे प्रविष्ट हो गई। अतुल बल पराक्रम से वर्द्धमान प्रतिमा को हटाने के लिए खलीफा राजा ने प्रयत्न किया। अवधिज्ञान से ब्रह्मशान्ति ने ज्ञात कर प्रताडित किया, जिससे लवणभूमि मे गिरे शेष नष्ट हो गए। उलखपुर अधिपति खुरासानी दश लाख घोडे प्राप्त कर तक्षशिला का भंग किया। महावीर

तीर्थ (साचोर) से तो सम्यग्दृष्टि जोगराय ने उन्हे निकाल दिया। स्वर्गीय देवो की सहायता से उपसर्ग दूर हुआ। तीनो प्रतिमाएँ स्थापित की। धनद आगमन और पुष्प वृष्टि हुई।

कारशर (?) देशाधिपति ने मथुरादि मध्यप्रदेश में जाकर राजाओ को दण्डित कर चार लाख ग्रहण किये। पर सोरठ देश को भग्न कर सांचोर आने पर सिंह गर्जना शब्द से भयभीत होकर भाग गया। गौड देशाधिपति ने छ मास की अवधि से पाटण पर सात सौ करोड़ स्वर्ण दण्डित किये। (साचोर की स्वर्ण प्रतिमा) ज्ञातकर चैत्य को खनन करने प्रस्तुत गजपति के दल को भग्न किया। सात दिन तक कोल दिया तो आठवे दिन भक्ति पूर्वक नमस्कार कर स्वस्थान को लौट गया। अनादि सिद्धायतन जाकर वीर प्रतिमा कराके पूजी।

इसके पश्चात् दक्षिण देश के कई राजा श्रीमाल पत्तन प्रस्थित हस्तिनापुर मे तिलग, चौड, लाट, राष्ट्र के तेजस्वी नमस्कार करके (गये) फिर कन्नौज नरेन्द्र सोम संभू अर्हन्त प्रतिमाओ की पूजा करता है। जिनशासन विरोधियो को श्री गोविन्दाचार्य ने साचोर स्थान से 'वर्द्धमान-विद्या' द्वारा निर्द्धाडित कर दिया। कन्नौज के स्वामी नाहड़ राय तो वैसे ही सम्यग् दृष्टि और तीर्थ की प्रभावना करने वाले के रूप में विख्यात है।

आम राजा का पुत्र धूमराय प्रमुख अनार्यत्व प्राप्त हो गए। वहुत आडवर से खुरासान, गजनी वाले दूषम काल के प्रभाव से अधिक वलवान हो गए, सारा जनपद अनार्य हो गया। चोर-डाकूओ से परिपूर्ण उपद्रव युक्त जनपद थे तो भी (भगवान्) स्वस्थान मे देवपूजित रहे।

फिर हस्तिनापुर से शक प्रत्यनीक प्रतिष्ठानपुर मे जिनशासन (के विपरीत) कृष्ण अमावस्या को होम करते थे जिसे आर्य खपुटाचार्य ने सांचोर से उद्धार किया।

विद्यासिद्ध भेरवानंद जालन्धर मे महा भैरवो विद्या से सम्यग्दृष्टि श्रावको को वाणव्यतर का उपसर्ग कराता था। बारह वर्ष बीत गए तब चतुर्विध सघ सह आर्य सिद्ध (सेन) श्रीमाल पुर से आकर अष्टान्हिका महिमा पूर्वक शाति उद्घोषित कर द्वार खोले। छ मास से विद्यासिद्ध भैरवानद को आदेशपूर्वक लाकर छोडा वाणव्यतर का भी निग्रह किया, फिर साचोर तीर्थ प्रभावशाली रहा।

फिर ·· नामक मुद्गर लेकर (स०) १३५० मे चैत्य मे आया जिसे प्रभु ने निर्व्रीड़ित किया। वि० स० ८६० मे यक्ष ने तीन दिन कील दिया, भयपूर्वक नमस्कार करके चला गया। दुष्ट चित्त जोगराय चावडा ने दहन काल मे बलहीन होकर विनय भाव से साचोर मडन वीर प्रभु को विनय भाव से नमस्कार किया।

काशी के अधिपति महिंद्रसिह बेताल के बल से फिर भारत मे भ्रमण करने लगा। वह मालव और गुजरात का भग करके सांचोर आकर उद्धार किया। यक्षराज ने अट्टहास पूर्वक अनायास ही कुद्दाल को असफल कर तीर्थ विरोधी, गुजरात भग कर (शिव) लिगादि को गाडो मे भर कर लाने वाले को साचोर के निकट आने पर अधा कर के करुण पुकार करा के यक्षराज ने छोडा।

अनेक प्रकार का छल प्रपच करने वाले राजा को हजारो देवो से परिवृत वीर ने विस्मित कर दिया, क्योकि लोकोत्तर जिन चैत्य को विध्वस करने के लिए (आये हुओ को) अग्नि और धुँआ व्याप्त दिखा दिया था।

कीर्त्ति नगरी का स्वामी उपबल जो सूर्य भक्त था और दुष्ट चित्त से गगन चक्र भग्न हेतु आया था, गर्जते हुए सिह युगल दिखा कर भगते हुए को वीर प्रभु का चरण अर्चक बना दिया।

कोल्हापुर के महा लक्ष्मी गण के सोम राजा तत्पुत्र नरसिह

देव राजा तत्पुत्र सिंह को मारने वाले सिंह विक्रमदेव एव छत्तीस लाख कन्नौज के परमार राजा मेघ भी तीर्थ साचौर के वर्द्धमान तीर्थ मे कुण्डलाभरण लौटाया। मगल तूर के शब्द ब्रह्माण्ड व्याप्त देख कर गूर्जर खण्ड भूपड को दे गया।

विक्रम के अन्य देशाधिप जो लाख घोडो के साथ रौद्र परिणाम वाला, गौडादि देश-तिलग देश अवगाहन कर भोगने वाला, चारो वर्ण का विध्वसक आकाश को रेणु से आच्छादित करता हुआ आया। यक्षराज ने उसे खदेड दिया, घोडो की पूँछ जलने लगी। हाथी और घोडो से भी प्रभु न चले, सुभट लोग भी असमर्थ हो गए, बैलो से थोडे सरके। अन्त मे वह प्रभु की अगुली लेकर स्वस्थान कडमाणपुर (? अपने पडाव मे लौटा) वहां घोर अन्धकार पूर्ण रात्रि मे ब्रह्मशान्ति यक्ष ने उसे दण्ड से प्रताडित किया। जो अगुली लेकर हम्मीर गया था, दडवत प्रणाम करता हुआ आया और वर्द्धमान स्वामी को नमन कर अपनी अगुली विदीर्ण करके गया। उसके पुत्र भी वैसा करते हैं। यदि न करे तो कडमाणपुर रजस्थल हो जाय।

श्रीमाल नगर को नाश करने के लिए जाते हुए वाराणसी और मालवा के राजा भगवान् वर्द्धमान को आशातना करने से निविड बंधन मे वध गए और जोर जोर से चिल्लाने लगे। अन्त मे वे भगवान् को नमस्कार करके लौट गए। मालवा के राजा गुजरात के प्रत्यनीक होने पर भी साचोर प्रदेश मे शत्रुता नष्ट करके समय विताचगे।

दुर्लभराज ने भी श्रीमालपुर मे देवराज को मार और जाते समय साचोर मे वर्द्धमान स्वामी को नमस्कार करके गया।

विक्रमाब्द १०२९ और १३४७ मे उत्तर मे आये अश्वपति-बादशाहों को चारो दिशाओं से खदेड़ दिया। (वीराब्द) १४९६-

१४३२ मे मालवा का राजा पलायन करेगा। १५१८ मे अश्वपति का भग होगा। १५७० मे उस सर्व देशो के विध्वसक को यक्षराज ब्रह्मशाति निर्द्धाडित करेगा। इतर सर्वतीर्थों का प्रत्यनीक विरोधी और प्रमाण न करने वाला होने पर भी भ० महावीर को पूजेगा।

१६१९ या १९१६ मे पाटलीपुत्र नगर मे मगधराज की चांडाल कुली रानी के यहा चैत्र वदि ८ को कलकी का जन्म होगा। उसी दिन मथुरा मे मधुमदन (मधु-सूदन) कृष्ण का भग होगा। द्वारिका मे ईश्वर लिग और श्रमणो के भात-पाणी का अपवित्रत्व यक्ष-देवादि के प्रत्यनीक द्वारा होगा। विमल गिरि, रैवत-गिरनार, **सांचोर** और मगधतीर्थ सम्यक् दृष्टि देवो के प्रभाव से अभग रहेगे और पूजित अर्चित होगे।

कल्कि अपने पापानुबन्धी पुण्य के उदय से आर्य-अनार्यो को साध करके पाटलिपुत्र मे ३६ वर्ष एकछत्र राज्य करेगा। वह सभी दर्शनो का विरोधी, उत्पीडक और लोभी-सग्रहशील होगा। अर्हत्-प्रवचन की निष्कारण शत्रुता से शक्रेन्द्र की सभा मे कुण्डल चलित होगे। सर्वायु ८४ वर्ष चै० सुदी ८ को भस्म राशि पर्यन्त रहेगा। गाय रूप मे भीति करेगी।

राजा डमर दलित नाममात्र के गाव रहेगे। फिर वह घूमता हुआ नद के निधान स्तूपो को खुदवा कर प्राप्त करेगा। साधुओ से भिक्षा का भाग मागने आदि पापो की वृद्धि के कारण प्रतिपदाचार्य के काउसग्ग द्वारा शक्रेन्द्र आकर कल्कि को दण्डित करेगा। उसका सम्यग्दृष्टि पुत्र दत्त राजा होकर .जिनशासन की प्रभावना करेगा। प्रतिदिन नया जिनचैत्य बनवायेगा। सर्वतीर्थों मे प्रभावशाली **वर्द्धमान साचोर तीर्थ** होगा। बहुत से मिथ्यादृष्टि भी धर्म के महत्त्व को समझेंगे, जिनेश्वर व साधुओ के भक्त होकर पूजा करेगे।

दत्त महाराजा आदिजिन भुवन मडित करावेगा। उसके समय मे स्वर्ण जटित आभरण युक्त हेममय जिनप्रतिमा प्रगट होगी व पूजित भी होगी। वीर जिनेन्द्र के तीर्थ **साचोर** मे धर्म मुकुट दश श्रेष्ठी होगे, जो आठ चैत्य तीर्थायतन विख्यात होगे, जीर्णोद्धार करेगे। २०५४ मे नौ व्यक्तियो के सहकार से विवर्ण तीर्थ को शुद्ध सौष्ठवपूर्ण करेगा। विमलदत्त व चारुदत्त भी वैसा करेंगे। दत्त का पुत्र जितशत्रु होगा, वह भी नियम पूर्वक इस तीर्थ का पोषण करेगा। इस प्रकार **साचोर मे वीर जिनेन्द्र की नियम भक्ति** होगी।

८१९ वर्ष व्यतीत होने पर मगधाधिप इस प्रदेश मे पूजा भक्ति करेगा। २१६० मे पाटलिपुत्र मे पद्म नामक राजा एकचित्त होकर इसकी अर्चना करेगा। वह यहाँ दुष्टो को शान्त करेगा। ४ हजार वर्ष बीत जाने पर जितशत्रु राजा भो दुष्टों को दण्ड देगा और यक्ष के द्वारा सब देशो मे उन्हे शीघ्र प्रताड़ित करेगा। १२ हजार वर्ष वीत जाने पर सुवृद्धि होने पर आणपन्ने पाणपन्ने आदि जभक देवो द्वारा प्रातिहार्य रचना की जाने पर नित्य मगल गान होगे। प्रतिदिन महोत्सव होगे।

उत्सर्पिणी काल चक्र के दुषम सुषमा काल वीत जाने पर तथा दुषम काल व्यतीत हो जाने पर सुषम दुषम काल आने पर श्री पद्मनाम तीर्थंकर के तीर्थ मे सम्यग्दृष्टि देवो के अभियोग से धर्म प्रवृत्ति होगी। विशेषत **पुडल तीर्थ** मे धर्म का उच्छेद होगा। वहाँ अनार्यो की पूजा होगी। अनार्य तीर्थ हो जाने पर भी मिथ्या दृष्टि इसे वन्दन-नमस्कार कर के जाएंगे। सम्यग्दृष्टि यक्ष के द्वारा उत्कृष्ट पूजा होगी। तीर्थेश्वर सोमनाण (?) के निर्वाण के वाद तीर्थ विच्छेद हो जायगा। अनार्यो की पूजा होगी। सुव्रत तीर्थंकर अमम तीर्थंकर के समय सुख पूर्वक पूजित होगें। किन्तु इन सब से वर्द्धमान स्वामी का प्रभुत्व विशेष होगा।

यह सुन कर **नाहड़** राजा अत्यन्त हर्षित होकर अपने स्थान पर गया। तब से वह त्रिकाल पूजा परायण रहने लगा। अन्य तीर्थों की भी वह यात्रा करता था। जिनशासन प्रभावक नाहड अन्तिम समय श्री **गुणसुन्दर सूरि** के समक्ष अनशन करके तीर्थ के माहात्म्य से मुक्ति पद पावेगा। यह प्रथमानुयोग के अन्तर्गत है। इस प्रकार **सोलहवाँ अध्ययन** पूर्ण हुआ।

●

विशेष नामसूची
(मूल तीर्थ कल्प के अनुवाद मात्र की)

— ध —

—प—

—म—

—ल—

—व—

■

शुद्धाशुद्धि पत्र

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४	१०	पू०	पृ०
७	४	तीर्थंते	तीर्यंते
१०	१२	शीलविजय	शीलविजय
११	१७	शर्मतिलक	शुभतिलक
११	२५	तीनर्थों	तीर्थों
१३	१४	विविव	विधि
१९	५	आर्हच्छत्रा	अहिच्छत्रा
२२	१७	लूणिगवसहो	लूणिगवसही
२३	१०	इल्प	कल्प
२३	१४	°परिवेप	'°परिशेष'
२४	६	शिहाबुद्दीन	सहाबुद्दीन
२७	१२	रथपति	रयपति
२४	९	मोहवा	महोबा
२६	६	खलजी	खिलजी
२७	१०	खलजी	खिलजी
३२	२३	हमारा	हमारा
३३	१३	पट्टघर	पट्टधर
३४	८	अनुरंजित	अनुरंजन
२	२३	ओर	और
२	२१	[illegible]	कार्णिका
५	१६	स्नान	स्नात्र
६	९	सप्तमी	[illegible]

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५४	१५	कोरा	कोश
५५	२०	को	के
५६	६	भौ	भी
६३	१०	दुग्घ	दुग्ध
६३	११	यहाँ	वहाँ
६५	८	देवशर्मा	इन्द्रशर्मा
६५	९	आस्तिक	अस्थि
६७	१२	प्रवल का फिर	प्रवल काफिर
६७	२३	आसावाल्ली	आसावल्ली
७०	२३	की हो	की जय हो
७२	१	मञ्जुला	मञ्जुल
७६	१८	नमर	नगर
८१	२१–२२	दुर्विग्घ	दुर्विदग्ध
८१	२६	श्राद्ध	श्रद्धा
८३	१९	सामन्ताद	सामन्तादि
९०	५	कद्र	रुद्र
९२	१७	अपौत्र	प्रपौत्र
९४	१	मन्त्र	मल्ल
९४	७	७ श्रीसोम	D (अधिक है)
९४	१५	जयन्तर	जयन्त
९५	२३	भवोद्योत	भावोद्योत
९९	२७	ताम्वूर्लाद	ताम्वूलादि
१००	१४	ध्रौव्य	ध्रौव्य
१०१	१३	मुक्ल	शुक्ल
१०१	१७	अनकवाला	
१०२	४	दाहिन	दाहिम

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६६	१७	अगारक	सागारक
१६८	२६	मृगघूर्त	मृगधूर्त
१७०	१४	धी	की
१७०	२१	पण्डित	मण्डित
१७१	२५	आयुभूति	वायुभूति
१७२	२	प्रभात	प्रभास
१७३	२३	महान सत्व	महानसत्व
१७६	२३	धडी	घडी
१७९	६	कोटि पर्यन्त	कटिपर्यन्त
१८१	०२	द्रव्य	द्रव्य व्यय
१८६	१७	निभेदन	निवेदन
१८७	७	निकलने	निकालने
१८७	२५	पार्श्ननाथ	पार्श्वनाथ
२०८	०२	वत्स देग	वज्ज्र देश
२१०	१५	गगादत्त	गंगदत्त
२१५	९	उत्तदश	उत्तम दश
२१६	२७	द्रश्य व्यय	द्रव्य व्यय
२१७	३	के	को
२२१	२०	मुरगल	उरंगल
२२२	११	अस्तालकार	हस्तालकार
२२४	१५	पोल्लराज	प्रोल्लराज
२२५	८	अपराध	आराधन
२२९	८	°की	°को
२३२	२	°तूर्वक	°पूव
२३४	५	पूर्व काल मे	पूर्वकाल मे लका-पुरी से

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२४०	१२	प्रमाण	प्रणाम
२४६	२३	अक्षर	अक्षर ५
२५४	२०	पारण	पाटण
२५५	७	कमी	कभी
२५६	१६	वनाया	वन गया
२५८	२५	आवेगा	जावेगा
२६१	१०	पृथ्यी	पृथ्वी
२६३	१७	(शीर्षक होगा)—	अवन्ती देशस्थ अभिनदन देव
२६७	६	तथा गणधर	तथा ८४ गणधर
२६७	८	शान्तिजी	शान्तिनाथ जी
२६७	२५	पाठ छूटा—हवे चौथा दरवाजा वाहरें श्रीरामपोल छे तिहा मुनि जाली मयाली उवयाली छै पर्वतमाही कोरी छे तिहां देवो की चौकी छै।	
२६८	५	माडवा	भाडवा
२६८	८	छेटी	घेटी
२६८	९	नही	नदी
२६८	१८	को रेंशामलीया	कोरे शामलीया
२६९	६	जमगी	जमणी
२६९	७	देवली	देवल १
२६९	२२	रू	रा
२६९	२५	वरवाडी	वावाडी
२६९	२५	पोयानि	पो पानी
२७०	४	खत्री	छत्री
२७०	१२	सादे	साये

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२७०	१७	सीताउनाथ	सीतलनाथ
२७०	२१	दीवसेरे	दीवसेर
२७१	६	०वधु	०बंध
२७१	७	नवपात्रव	नवपल्लव
२७१	१७	क्षेमधर	श्रीमधर
२७१	२६	नीझरण	नीझरणा
२७२	२	पावढीया	पावठीया
२७२	४	धाराजि	धोराजि
२७२	१०	भाडवण	भाणवड
२७२	२०	अनतनाथ जी का देवल १ (पाठ डबल है D)	
२७३	६	भकअच	भरुअच
२७६	७	देवल ११	देवत्व ९१
२७६	२०	पद्मचद्रप्रभु	पद्मप्रभु
२७७	२	चाटक	चाल्या
२७८	८	किर	फेर
२७८	९	चाडावे	पाडा बे
२७८	९	जरणना	जखना
२७८	१०	दोहरो	देहरो
२७८	१९	मति	भमती
२७८	२४	भछे	मध्ये
२७८	२६	मोक्षवसि	मोक्ष बारी
२७९	४	२९ लामा	रस्ता मा
२७९	८	णिद्धाचल	सिद्धाचल
२७९	२६	पदमनाथ	पद्मनाभ
२८०	१०	सपदी	रूपदी
२८०	२१	दामरो	दायरो

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२८०	२७	पारासनाथ	पार्श्वनाथ
२८१	९	एक सभातको	सभानको
२८१	१४	भांडिवि	माडवी
२८१	१४	सगती	सगवी
२८१	१४	°घुजय	भुजको
२८१	१५	नगाहा	नगारा
२८१	१८	चाला	पाला
२८१	१९	यात्रा	यात्रालु
२८१	२०	चौवीस	चौत्रोमवटा
२८१	२१	तियासे	तिहासे
२८१	२१	काप्लमा	कापल्या
२८१	२१	थम्म	थभ
२८२	३	जागानेर	चागानेर
२८२	१७	मदिर जी	गाँव १ मंदिजी
२८२	२७	पाणी	पाली
२८३	५	उपवास	उपासरा
२८३	१५	माकडो	माडको
२८३	१०	भमनी	भमती
२८४	८	वीस वीम	विंव वीस
२८५	१	सर्वघात	सर्वधात
२८५	५	दे हुदो	देहरो
२८५	८,१९	प्रतिभा	प्रतिमा
२८६	६	चीदास	चंदाप्रभु
२८६	११	देशमोरु	देशनोक
२८६	१४	शातिनाथ जी	°विंब १४
२८६	२६	घात	धात

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२८७	२४	पीरपापहन	°पट्टन
२८८	५	घुलेवा	धुलेवा
२८८	८	पीरपाहन	°पाट्टण
२८५	११	गटीसर भार्यै	गढीसर माथै
२८५	१२	क्षत्री	छत्री
२८९	२	जिन सूर	जिनरंग सूरि
२९०	२१	कलान	कल्याण
२९१	१	उपसारु	उपासरो
२९१	१४	मुखर	पुखर
२९१	१४	समसरण सोमासरण	समोसरण
२९३	२६	विलोक	विलोड
२९४	१	भदीकत रेखा	नदी कनारे
२९४	१८	पिप्पणक Seroll	टिप्पणक Scroll
३०१	१८	कोहिडी	कोहडी
३०६	६	स्नानादि	स्नात्रादि
३०६	१२	सार्थवाह	सार्थवाह ने
३११	२	कुती	कुन्ती
३१२	१३	दिवा	दिव्य
३१४	१	पद्मनाम	पद्मनाभ
३१७	४	भूपड	भूयड़
३१७	२२	वितावगे	वितावेंगे
३१९	२०	पद्मनाम	पद्मनाभ
३३२	८	द्रविण	द्राविड
३३५	१२	पद्यनाभ	पद्मनाभ
३३६	२१	साघ्पी	साध्वी